TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS
FESTIVAL
विश्व रंग
BHOPAL (INDIA)

पंजीयन क्रमांक MPHIN 37775

वनमाली कथा

वर्ष-2, अंक-21, अक्टूबर, 2023

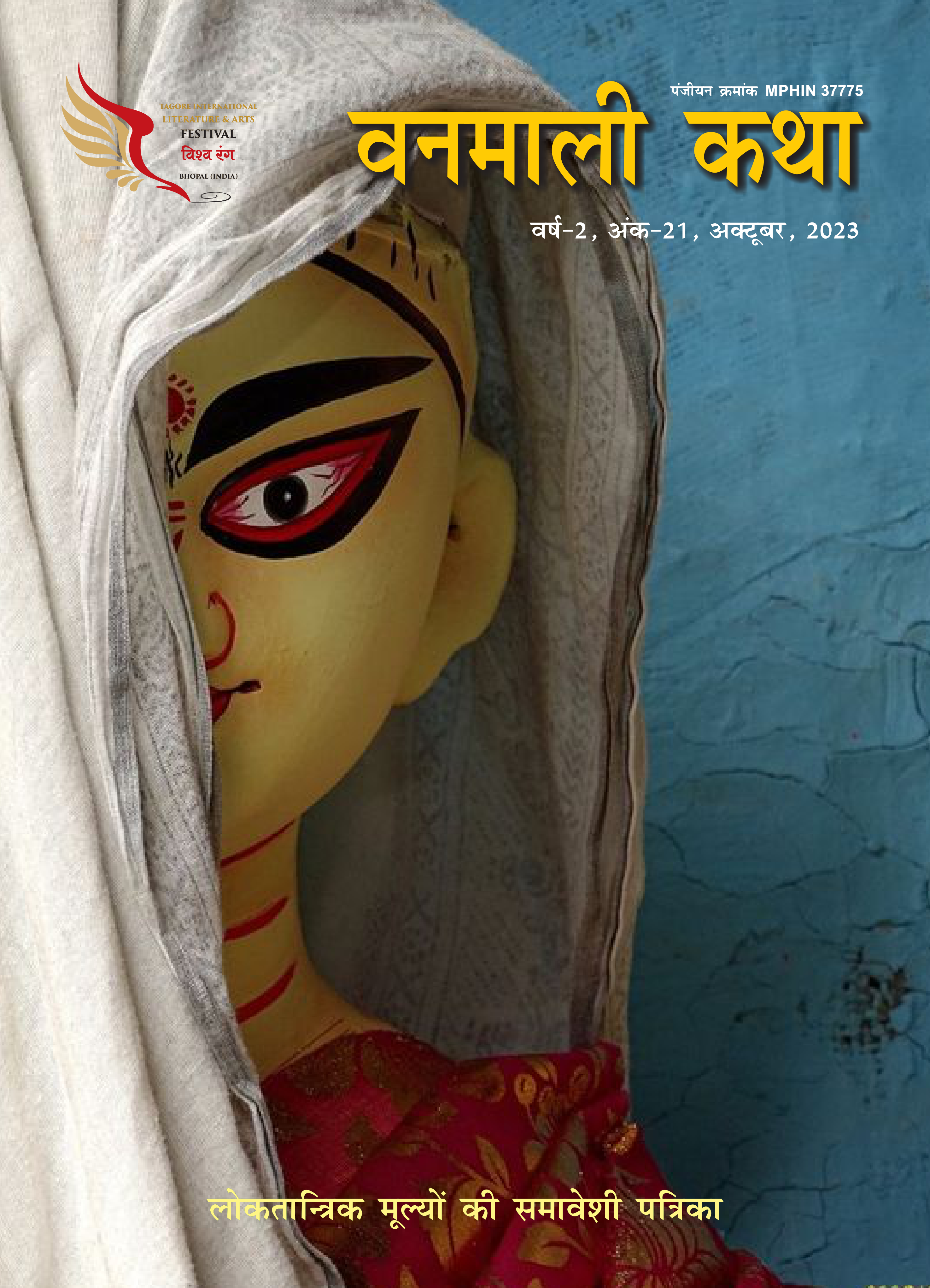

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

www.cvrump.ac.in | Follow us On :

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Madhya Pradesh, Khandwa AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Recognized by : UGC Approved by : M.P. Govt.

ACCELERATING

With changing times.

Unlimited access to eLearning materials with Learning Management System (LMS)

- 10,000+ Student registered
- 500+ Faculties Conducting Online Classes
- 4500+ Classes Conducted

Reach the heights of success

Programmes Offered

Arts | Paramedical | Science | Agriculture | Commerce
Management | Computer Science & Information Technology
Education | Bachelor of Vocational (B.Voc)
Master Vocational Studies (M.Voc)

Integrated future-ready courses in association with

AISECT Future Skills ACADEMY | coursera education for everyone | Red Hat | Micro Focus Software University

Prominent Features

- Best Infrastructure
- Scholarship On Merit Basis
- Features Like Online teaching, LCD Projectors and E-Learning
- Effective placement and training support
- Optional Skills Course
- International academic research and cultural partnership
- Quality Education & Meaningful research

Our Top Recruiters

Reliance Infocomm, 3i Infotech, AIS, Hexaware Technologies, AITCB, IBM, ICICI, ORACLE, ASTHA, airtel, Patni, L&T Infotech, Satyam, BSNL Connecting India, HCL

ADMISSION OPEN 7000456427, 9907037693, 07320-247700/01

SCAN TO VISIT THE WEBSITE

For enquiries & other information, contact us at:

University Campus: Village Balkhadsura, Post - Chhaigaon Makhan, Khandwa, Madhya Pradesh, 450771 **Email:** admission@cvrump.ac.in

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका
वर्ष-2, अंक-21, अक्तूबर, 2023

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी

सम्पादकीय सम्पर्क
वनमाली कथा
वनमाली भवन
ई-7/22, एसबीआई, अरेरा कॉलोनी
भोपाल-462016 (म.प्र.)
फोन : 91-755-4851056
मो. 09875370979 (सम्पादन)
09893100979 / 09826493844 (प्रसार)
ईमेल : vanmali@aisect.org

प्रबन्धक : महीप निगम
शब्द संयोजन : रवि चौहान, मुकेश रघुवंशी

मूल्य : 50 रुपये
वार्षिक : रजिस्टर्ड डाक शुल्क समेत 740 रुपये
त्रैवार्षिक : रजिस्टर्ड डाक शुल्क समेत 1900 रुपये
Online Transaction
Benificary Name : **VANMALI**,
State Bank of India, Mahavir Nagar Branch, Bhopal.
Bank A/c 40865384472, IFSC Code SBIN0003867
ध्यान रहे, शुल्क जमा करने के बाद भुगतान प्रपत्रक को 9893100979 पर जरूर ह्वाट्सऐप करें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों/विचारों का उत्तरदायित्व सम्पादक का होगा। वनमाली कथा से सम्बन्धित सभी विवादास्पद मामले केवल भोपाल न्यायालय के अधीन होंगे।

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक : डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट लिमिटेड (आईसेक्ट पब्लिकेशन), प्लॉट नं. 10, सेक्टर-सी, इंडस्ट्रियल एरिया, बगरोदा, जिला-भोपाल से मुद्रित एवं वनमाली भवन, ई-7/22, एसबीआई, अरेरा कॉलोनी, जिला-भोपाल-462016 से प्रकाशित। **सम्पादक :** कुणाल सिंह

संरक्षक
संतोष चौबे

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा

सम्पादक
कुणाल सिंह

सहायक सम्पादक
ज्योति रघुवंशी

कथादेश

भारत के हिन्दी कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोश

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग
BHOPAL (INDIA)

प्रधान संपादक **संतोष चौबे**
संपादक **मुकेश वर्मा**

आईसेक्ट पब्लिकेशन

'कथादेश' के सम्पूर्ण सेट का मूल्य 17,820 रु. है।
जिस पर निर्धारित छूट देय होगी।

कथादेश के खंड निम्न समूहों के अनुसार भी क्रय किये जा सकते हैं :

धरोहर
(धरोहर, प्रेमचंदोत्तर कहानी-1 व 2)
तीनों खंड एक साथ 2970 रु. (छूट के साथ 2200 रु.)

नई व साठोत्तरी कहानी
(नई कहानी-1 व 2 तथा साठोत्तरी कहानी-1 व 2)
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

समकालीन कहानी
(समकालीन कहानी-1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7)
सातों खंड एक साथ 6930 रु. (छूट के साथ 5200 रु.)

युवा कहानी
(युवा कहानी-1, 2, 3 व 4)
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

डाक से मँगाने पर डाक खर्च अलग से देय होगा।

'कथादेश' प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन
ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-4851056, 8818883165
E-mail : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

आईसेक्ट लिमिटेड
स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047
फोन : 0755-2432801, 2432830

'कथादेश'
अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध है

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका
वर्ष-2, अंक-21, अक्तूबर, 2023

तरतीब

सम्पादकीय / 5
इनबॉक्स / 7
देशकाल / 104
लिखा-पढ़ी / 110

तापक्रम
संतोष चौबे : डिजिटल समय में साहित्य और कलाएँ / 10
आईनाघर
शशिकला त्रिपाठी : मन्नू भंडारी- अकृत्रिम व्यक्तित्व की धनी / 12
शम्पा शाह : ज्योत्स्ना मिलन- आसमान माँ / 18
दस कविताएँ
नीलेश रघुवंशी, आभा बोधिसत्व, विनीता चौबे, मालिनी गौतम,
आरती, प्रिया वर्मा, माधुरी, पन्ना त्रिवेदी, वन्दना मिश्र, चित्रा पंवार की दस कविताएँ / 24
दस कहानियाँ
क्षमा शर्मा : टु हैल विद इट / 30
रजनी गुप्त : लेट इट बी / 42
विभा रानी : कोल्ड ब्लडेड मर्डर / 48
इन्दिरा दाँगी : नाच / 52
जमुना बीनी : सड़क / 56
सविता पाठक : साहिल फिर से कहो / 60
सपना सिंह : साहिब-बीबी की कहानी में होना एक गुलाम का / 69
प्रीति चौधरी : चिराइँध
कल्पना मनोरमा : गुनिता की गुड़िया
इति सामन्त : आँचल (कथाभारत- ओड़िया)/ 87

गुडबुक

चन्द्रकला त्रिपाठी : वेणुओं का देस-परदेस / 98
(कौन देस को वासी : सूर्यबाला)

श्रीकृष्ण नीरज : प्रीति की आध्यात्मिकता / 101
(गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : अलका सरावगी)

वस्तुपरक

विनोद तिवारी : दृष्टिकोण-2– या आलम आईना है उस यारे-खुदनुमा का / 90

आवरण

आईसेक्ट कला प्रभाग

भीतरी रेखांकन

कबीर राजोरिया : जन्म: 18 जनवरी 2001, अशोकनगर (म.प्र.) चित्रकला, संगीत, रंगकर्म, फिल्म और आकल्पन में गहरी रुचि। इप्टा, अशोकनगर के दो दर्जन से ज्यादा नाटकों में अभिनय। एकाध नाटकों का संगीत निर्देशन। एक नाटक का निर्देशन भी। 'फेमस' फिल्म में बतौर चाइल्ड आर्टिस्ट अभिनय। एनआईएफटी, चेन्नई से टेक्सटाइल डिजाइन में स्नातक। मो. 9685686777

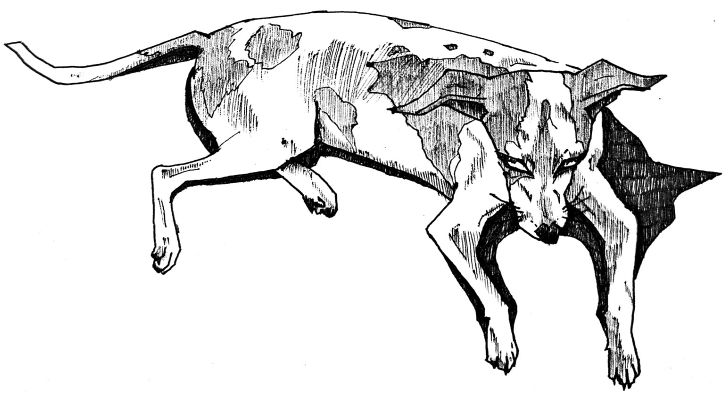

सम्पादकीय

'वनमाली कथा' का यह विशेष अंक महिलाओं की उस पूरी कौम को समर्पित है जिन्हें सदियों से पुरुष समाज बार-बार धोखा देता आया है और कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाति के दाँव पर, कभी राजनीति की बिसात पर, कभी बाजार की शर्तों में, कभी शारीरिक क्षमता के आधार पर तो कभी प्रेम और उसकी सोची-समझी मजबूरियों में उलझाकर उन्हें हर मोर्चे पर हर किस्म के शोषण, दमन और उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता रहा है। अनन्त काल से स्त्रियों के उत्पीड़न की सत्य-कथाओं से पुरातन ग्रन्थों और इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। दगाबाजी और फरेब के फन्दों से रचे-बसे-बुने वृत्तान्तों को रसमयता से पढ़-लिखकर पीढ़ियाँ पार उतरती रही हैं। अन्याय और अनाचार की हद तो यह है कि जिस पुरुष जाति ने उसकी कोख से जन्म लिया, उसी ने उसे दासी का दर्जा दिया तथा उन्हें नर्क का द्वार कहते हुए मोक्ष के अयोग्य सार्वजनिक रूप से घोषित किया।

समय बदल रहा है, इस साफ झूठ को लगातार बोला गया और हरचन्द कोशिश कर वह समय नहीं आने दिया गया जिसकी वे हकदार हैं। वे तमाम ख्वाहिशें, सपने और उम्मीदें वक्त की ताक पर धरी रह गयीं जिन्हें उनकी विरासत भोगती पीढ़ियों ने भीगी आँखों से देखा और जिनकी किरचें आज भी हर औरत के कोरों में गड़ी पायी जाती हैं।

वे हमेशा इस भ्रम में रहीं कि उनके हमसफर, हमकदम, हमदर्द और हमनवा, उनके पिता, पति, पुत्र, उनके दोस्त और खैरख्वाह उन्हें इस जिल्लत, अहसासे-कमतरी और अवमानना से मुक्त कर समता तथा भरोसे की जमीन पर चलने-निकलने का हरा-भरा-खुला माहौल देंगे लेकिन यह सब फिजूल रहा। लाखों किताबें लिखी गयीं। हजारों नग्मे गाये गये। अनगिनत समाज-सुधारक, पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक आये और सुमधुर आलाप देर तक लगाकर फिर कभी सम तक नहीं पहुँच सके। जमीन उसी तरह बर्बर रही जिस तरह आसमान चुप रहा।

धरती दो हिस्सों में बँटी रही। एक शोषक, दूसरा शोषित। कभी इस फर्क को मिटाने के लिए कारगर कदम नहीं उठाये गये, क्योंकि न तो नीति थी और न नीयत। कई विचारधाराएँ आयीं। पुष्पित-पल्लवित-विकसित हुईं। प्राथमिक स्कूल से संसद तक जिनकी धूम रही। उनके एजेंडे में भी समता के दर्शन को रखा गया और शोभा की वस्तु की तरह सहेजा गया, लेकिन उनके मन्तव्य केवल राजनीतिक और सत्ता की छीन-झपट थे और हर बार की तरह हर बार इस मुद्दे को भुलाया गया और अगले एजेंडे में याद रखा गया ताकि फिर-फिर भूलने की आदत बनी रहे। समाजवाद के विचार ने तो नर-नारी समता के नारे को बुलन्दियों से उछाला और अपनी पोथियों के पहले पृष्ठ पर खुशखत से इतना और इतनी बार लिखा कि उसकी स्याही भी अब धुँधली और धूसरित हो गयी कि उसके अनुयायी भी समझने की हद से काफी पीछे छूट गये।

सृष्टि के यथार्थ का सम्यक् बोध कराने में अद्वैत के महत्त्वपूर्ण दर्शन की बड़ी महत्ता है जिसने मनुष्य को जीवन और जगत् के बारे में नये सिरे से सोचने की वैचारिकी की ओर उन्मुख किया लेकिन उसके शब्दकोश में केवल आत्मा-परमात्मा, सत्-असत्, प्रकृति-पुरुष, जीवन-मृत्यु आदि की आध्यात्मिक शब्दावलि के अलावा प्रेम-घृणा, मिलन-वियोग, धूप-छाँह, धारा-किनारा, पीड़ा-आनन्द जैसे कुछ भावात्मक विषयों को ही कन्द्र में जगह मिली। जिस सामाजिक-आर्थिक विषमताओं और विद्रूपों की तकलीफों में फँसा यह संसार एक निरन्तर हाहाकार में जी रहा है, उसमें भी ऐसे शब्द-युग्म हैं जैसे अमीरी-गरीबी, ऊँच-नीच, शक्तिशाली-कमजोर, आराम-अभाव और निस्सन्देह स्त्री-पुरुष जो काल के चक्र में पिसते हुए एक नरक से दूसरे नरक में स्थानान्तरित किये जा रहे हैं।

ऐतिहासिक जरूरत इस बात की रही कि एक सामान्य आदमी को उसके वास्तविक कष्टों से निजात दिलाने के लिए इन शब्द-युग्मों के निराकरण का मार्ग भी ऐसे गुरु-गम्भीर दर्शन से प्रशस्त कराया जाता। जिस तरह आत्मा और परमात्मा के बीच के द्वैत-भाव को समाप्त कर एकमेव आनन्द की सृष्टि की व्यवस्था देकर मनुष्य जाति के जीवन का मुख्य और चरम लक्ष्य निर्धारित किया गया, जिस तरह दुःख और सुख को एक रंग-रूप में परिणित कर मन का नया विधान रचा गया, क्या उसी तरह अमीर और गरीब के द्वैत को मिटाकर एक मुकम्मिल सामाजिक इंसान को प्रस्तुत नहीं किया

जा सकता जिसे अपनी आम जरूरतों को पूरा करने के लिए समुचित संसाधन सुविधा से मयस्सर हों और जो इंसानियत की कतार में बराबरी से खड़ा हो सके? क्या उसी तरह समाज में ऊँच और नीच के भेद को हटाकर एक स्वस्थ और समान समाज की संरचना की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती, तो ठीक उसी तरह क्या स्त्री और पुरुष के बीच निर्धारित की गयी असमानताओं को व्यावहारिक अर्थों में गिराकर उन्हें बराबरी का दर्जा नहीं दिया जा सकता? हमारी संस्कृति में अर्धनारीश्वर की परिकल्पना में स्वस्थ और परिपक्व स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को एक सम्पूर्ण राग में अपना सौन्दर्य पाता है। सारे विश्व में सम्बन्धों का इतना उदात्त, प्रासंगिक और परम आत्मिक प्रसंग कहीं मूर्तिमान नहीं है तो जो भारतीय संस्कृति को प्रेम और आदर देते हैं, उन्हें अपने निजी और सामाजिक जीवन में इस अमूल्य मूल्य को मन और आचरण में ग्रहण करना चाहिए, ऐसा माना जाता है।

लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ और न ही होने की सम्भावना बनती है क्योंकि हमारे आदर्श अलग हैं और आचरण बिलकुल अलग। हमारा अपना ही एक विचार दूसरे विचार से मेल नहीं खाता हालाँकि हम दोनों को बराबरी से तथा श्रद्धा और आस्था से पालते-पोसते रहते हैं इस कौशल के साथ कि न जाने कौन सी बात कब किस काम आ जाए! यकीनन हम बहुत ईमानदारी से फुरसत में विचारों को सोचते रहते हैं अब यह उनका दुर्भाग्य कि वे पाठशाला में रटाये गये दोहा-चौपाइयों की तरह आधे-अधूरे कहीं किसी ठौर छूट जाते हैं लेकिन कोई-कोई याद भी आ जाते हैं। ऐसे छूटे विचार हमेशा आदर्शवादी भावनाओं से लबालब होते हैं। ऐसा ही एक छूटा हुआ विचार नर-नारी समता का है जो सिर्फ सोचने में अच्छा लगता है, दूसरे के बोलने में अच्छा लगता है। इस विचार का तमाशा सरे-आम चलता रहता है और अब इसे आमफहम बैठकों, बारातों आदि में सामान्य चुटकुलों की फेहरिस्त में शामिल कर लिया गया है जिस पर मुश्किल से हँसी आती है, जबकि असमानता की यह पुरातन परम्परा ऐसा भीषण अपराध है जिसके फरियादी दुनिया के कोने-कोने में अपना वाजिब हक माँगने के लिए जब-तब खड़े होते रहते हैं।

कहते हैं कि यह एक लम्बी लड़ाई है और उम्मीद जताई जाती है कि लम्बी ही चलेगी। यहाँ 'उम्मीद' शब्द के इस्तेमाल पर गौर करना होगा। 'आशंका' या 'दुर्भाग्य' नहीं कहा गया है। 'उम्मीद' में हल्की-सी आशा की किरण और उतने ही पतले विश्वास की झलक कौंधती है जैसे लड़ाई के लम्बे होने की इच्छा उनके मन की तहों में पैठी हो। हम कुछ भी असावधानी में नहीं कहते। जो अप्रत्याशित तौर पर कह दिया जाता है, वह कतई अप्रत्याशित नहीं होता बल्कि हमारे अन्तर्मन में बरसों से उमड़-घुमड़ रही बातें होती हैं जिन्हें सामान्य रूप से सार्वजनिक कहने में हम बचते हैं। इसलिए जो लोग इस तरह लम्बी लड़ाई कहते हैं, वस्तुत: वे उसके लम्बे रहने की कामना ही करते हैं।

खेद सहित कहा जा सकता है कि महिलाओं का एक बड़ा वर्ग भी इसी श्रेणी में आता है और उससे बड़ा वर्ग भी है जो समता के विचार का विरोध करता आ रहा है। कारण उनकी परम्परागत सोच है जो सदियों से आपराधिक निजामों के चलते सामाजिक असुरक्षा और आर्थिक अक्षमता की स्थितियों से मनोवैज्ञानिक रूप से इतनी आक्रान्त और भयभीत बना दी गयी है कि वह मंडी में बैठने से बेहतर किसी एक पुरुष की दासी होना मानती हैं। यानी बड़े नरक से छोटा नरक स्वीकार। बचपन से मन को इस तरह कुचल देने से मानसिकता पर इतना बुरा असर पड़ता है कि आज भी एक पढ़ी-लिखी, कामकाजी और सक्षम महिला, महानगर हो या गाँव, शाम के बाद घर से अकेले निकलने में डरती है, विडम्बना यह कि एक छह-आठ साल का बालक सहारे के लिए उसके साथ कर दिया जाता है। आजाद देश के एक नागरिक की इससे बुरी नियति क्या हो सकती है! उदाहरण करोड़ों-अरबों में हैं, उन्हें कहकर कितना शर्मिन्दा होइयेगा?

लेकिन उससे ज्यादा खुशी से यह भी कहा जा रहा है कि महिलाओं का आनुपातिक रूप से एक छोटा वर्ग अब तेजी से बडा, दिनों-दिन और अधिक बड़ा होता जा रहा है। पुराने समय की तुलना में स्त्रियाँ अब हर क्षेत्र में प्रभावी रूप से आगे बढ़ रही हैं और सार्वजनिक जीवन में उनकी महत्ता और भागीदारी महत्त्वपूर्ण रूप से काबिले-तारीफ है। यह जो गैर-बराबरी से बराबर का दर्जा हासिल करने का उद्यम किया गया है और जिन्दगी के तमाम पहलुओं पर तेजस्विता से कलम चलाई है, उसकी बानगी इस बार कहानियों में शिद्दत से देखने को मिल रही है।

महिला-लेखकों की रचनाओं के इस विषिष्ट अंक में सभी रचनाकारों का अभिवादन।

—मुकेश वर्मा

मो. 9425014166

इनबॉक्स

तीन दिन में पूरा अंक पढ़ गया

'वनमाली कथा' के अगस्त अंक की कहानियाँ तो अद्भुत हैं। एक ही अंक में दस भाषाओं का श्रेष्ठ! पहली बार तीन दिन में पूरा अंक पढ़ गया। एक साथ इन्हें उपलब्ध कराने के लिए धन्यवाद! निश्चय ही आगामी नवम्बर-दिसम्बर के संयुक्तांक का संयोजन भी उल्लेखनीय और संग्रहणीय बनेगा।

– *शिवमूर्ति, लखनऊ (उ.प्र.)*

साहित्य की उम्र का राज

'वनमाली कथा' का अगस्त अंक वास्तव में संग्रहणीय है। डी. जयकान्तन की कहानी 'दाम्पत्य', रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'पत्नी का पत्र' और विजयदान देथा की कहानी 'आशा अमरधन', तीनों कहानियों ने अन्तस को छू लिया। और फिर एक मलयालम से अनूदित कहानी पढ़ी– 'बाल्यसखी'। वाइकम मुहम्मद बशीर द्वारा लिखित कहानी। अगर एक पूरी जीवनगाथा महाकाव्य है तो ये कहानी है। बस महाकाव्य का राजा और राजसिंहासन विषय नहीं हैं। बड़ी सहजता से यह कहानी जिन्दगी के उतार-चढ़ाव से गुजारती है। और अन्त में एक बेहद क्रूर, निर्दयी दुश्मन जीत जाता है, जो अक्सर जीत ही जाता है। वो कौन है? ...बाकी आप खुद पढ़िये।

साहित्य जो नहीं बोल पाते, उनकी आवाज है। जो क्षीण होता स्वर है, उसकी संवेदना है, चाहे वो किसी व्यक्ति की कथा कह रहा हो या किसी समाज की। इसी में उसकी उम्र का राज है।

– *सविता पाठक, नयी दिल्ली*

अगस्त का यादगार अंक

'वनमाली कथा' का नया अंक इस बार कुछ खास है। भारतीय कथा-साहित्य से दस चुनी हुई कहानियाँ और कविताओं ने अपनी खूबसूरत उपस्थिति से इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। तमिल लेखक डी जयकान्तन की कहानी 'दाम्पत्य' बेघर युवा दम्पती के प्रेम का सामना कानून की चौहद्दी में खड़े हृदयहीन रक्षकों से होता है। गरीब, बेघर लोगों के लिए इस समाज में अपना कोई कोना नहीं होता, जहाँ बैठकर, सोकर अपने होने का अहसास कर सकें। अभी-अभी किसी तरह से कतरब्योंत कर फुटपाथ पर जीने वाले दो प्राणियों ने जिन्दगी की नयी राह पर दो कदम साथ-साथ चलने का प्रयास किया ही था कि सामाजिक कानून उनके नितान्त निजी क्षणों को, नेह नीड़ को उखाड़ फेंकने चले आते हैं। भले ही वह प्रतीकस्वरूप अपने गले में पड़े पीले धागे की गवाही देते रहे, लेकिन कानून की बाड़ के अन्दर खड़े पुलिस वाले ने आँख उठाकर भी उस पीली डोर को देखने की परवाह नहीं की। उसके कानून ने उसे यही सिखाया था कि बेटे, अँधेरे को चीरकर अपराध का पर्दाफाश करो, उसने यह नहीं सिखाया था कि मन को चीरकर संवेदनाओं का पता लगाओ। उसने जिसे ढूँढ़ निकाला उसका नाम है कसूर, अपराध। कसूरवार को जिसके तहत कैद किया जाना है, उसका नाम है कानून और कानून की वारिस है पुलिस। वह न तो सदाचार का प्रतिनिधि है, न ही सचाई का मसीहा। तमिल लेखक डी. जयकान्तन की यह कहानी दुनिया के किसी भी कोने में रहने वाले गरीब लोगों की कहानी है और रिवाज, कानून, नैतिकता के तथाकथित दावेदारी में मौजूद हृदयहीनता का उद्घाटन करती मार्मिक कहानी है।

राजस्थानी लेखक विजयदान देथा की कहानी 'आशा अमरधन' लोककथा शैली में उम्मीद, बेगानापन और रिश्तों में पैठ चुकी संकुचित दृष्टि को बेपर्दा करती अपने पाठकों से मुखातिब है। विमाता से स्नेह की उम्मीद पाले बच्चों की गाथा का विज्जी अपनी ही शैली में हमसे इस तरह साझा करते हैं मानो पूरी प्रकृति ऐसी अनहोनी पर उखड़ी हुई है। उम्मीद के

भीषण पहाड़ का सामना करती शिशु निगाहें बरसों बरस से उस शाम का इन्तजार कर रही हैं जब उसकी तथाकथित माँ और पिता स्नेह से गले लगा लेंगे। लेकिन ऐसा होता कहाँ है? भूख से, कष्ट से मौत नहीं होती, उससे यह शरीर महज निष्पन्द हो जाता होगा। असली मौत तब होती है जब ममतालु निगाहें मुँह मोड़ लेती हैं। भारतीय कथा-साहित्य में ऐसी मार्मिक कहानियाँ सचमुच क्लासिक की जगह रखती हैं। लेकिन उस दुख, उस तकलीफ का क्या करें जो देश देशान्तर बदस्तूर अपनी स्वार्थी बाँहें फैलाये झूठ-मूठ में प्रेम करने से भी बचती नजर आती है।

एक दूसरी तरह से एक 'माँ' का आर्त्तनाद यू. आर. अनन्तमूर्ति की कहानी में भी उपस्थित है। कोई अपने जाये को कैसे समझाये कि जीवन की आवश्यकता कितने रूपों में हमारा पीछा करती है। एक स्त्री जिसका पति युवाकाल में ही उसका संगसाथ छोड़कर बहुत दूर चला गया। अपने नन्हे से बच्चे को लेकर वह अपने नये जीवनसाथी को अपना हमसफर बनाती है। माँ और पुत्र के बीच उठे तनाव के बीच एक दिन दुर्घटनावश वह बालक नहीं रहता है। नये बच्चों के साथ 'माँ' अपने खोते हुए पुत्र को सपनों, बातों में और कहानियों में बार-बार खोजती भटकती है।

मौत के कितने चेहरे हैं, हो सकते हैं और हमारे जो बहुत निकट हैं, उनके कितने चेहरे हैं। उन तमाम चेहरों के बीच बची जा रही थोड़ी-सी संवेदनशील तपिश की कहानी है मराठी लेखक गंगाधर गाडगील की 'ऐसा और वैसा'। अपनी कहानी में एक मामूली-सी लगने वाली चीज को व्यापक सामाजिक-राजनीतिक प्रसंग का हिस्सा कैसे बनाया जाए, यह चीज इस कहानी में देखने लायक है।

'वनमाली कथा' का यह अंक चौथे दशक के महत्त्वपूर्ण, लेकिन लगभग अचर्चित कहानीकार जगन्नाथप्रसाद चौबे 'वनमाली' की स्मृति को समर्पित है। उनकी कहानी 'जिल्दसाज' को इस अंक में हिन्दी कहानी के तौर पर जगह दी गयी है। उनकी कहानी-यात्रा पर अरुण होता, नीरज खरे, आशुतोष, मनोजकुमार पांडेय जैसे अनेक लेखकों ने अपना अभिमत दर्ज किया है। बांग्ला कहानी के तौर पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी 'पत्नी का पत्र' है, ओड़िया लेखक फकीरमोहन सेनापति की 'रेवती' है, मलयालम कथाकार वाइकम मुहम्मद बशीर की कहानी 'बाल्यसखी' है, पंजाबी कथा के तौर पर अमृता प्रीतम की कहानी 'शाह की कंजरी' और उर्दू कहानी

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016

मोबा.: 8269593844, 9893100979

ई-मेल: vanmali@aisect.org, kunal.singh@aisect.org

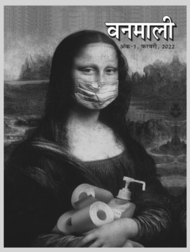

सदस्यता संख्या .... **सदस्यता फार्म** दिनांक ....

नाम : ....

पता : ....

पोस्ट.......................................जिला/राज्य...पिन..

फोन/मोबाइल : ....ई-मेल: ....

मैं 'वनमाली कथा' का वार्षिक सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ।

माह..................से प्रारंभ वार्षिक सदस्यता शुल्क......................./- (मात्र) ड्रॉफ्ट/चेक द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पत्रिका उपरोक्त पते पर भेजें।
(भुगतान 'वनमाली' नाम से देय होगा।)
Bank A/c No. 40865384472, IFSC Code: SBIN0003867
Bank Name: State Bank of India, Branch: Mahavir Nagar, Bhopal (M.P.)

हस्ताक्षर

वार्षिक शुल्क- ₹740

रजिस्टर्ड डाक शुल्क सहित

प्राप्ति प्रत्रक दिनांक..............................

नाम : ....पता: ....

प्राप्ति का विवरण : माह... से प्रारंभ वार्षिक सदस्यता शुल्क................ /- (मात्र)

विक्रय अधिकारी

के तौर पर वाजिदा तबस्सुम की 'उतरन' कहानी को जगह मिली है। इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर चुने हुए दस कवियों की कविताओं को इस अंक में खास जगह दी गयी है। हिन्दी के कवि कुँवर नारायण की कविता 'अबकी बार लौटा तो' यहाँ उपस्थित है। अंक में रेखांकन रक्षा दुबे के हैं जो इस अंक में उपस्थित होकर अपनी अलग कहानी कहती दिखती हैं।

एक लम्बे अरसे के बाद एक साथ कुछ अच्छी कहानियों को पढ़ने का मौका मिला, इसलिए 'वनमाली कथा' की सम्पादकीय टीम बधाई की पात्र है। बस एक चीज खटक रही थी, हर लेखक का एक छोटा-सा लेखकीय परिचय भी होता तो यह अंक और अच्छा हो जाता। क्योंकि कोई पाठक कहानी पढ़ने के बाद एक बार अपने लेखक की छवि और जीवन की ओर सहज ही उत्सुक होने लगता है। फिर भी भारतीय साहित्य के अलग-अलग पुष्पों को एक गुलदस्ते के रूप में पाठकों को समर्पित यह अंक यादगार अंक के तौर पर स्मृति कोटर में दर्ज रहेगा।

– आशीष सिंह, लखनऊ (उ.प्र.)

भारतीय भाषा साहित्य का अद्भुत बगीचा

वैसे तो 'वनमाली कथा' पत्रिका का हर अंक सँजोकर रखने योग्य होता है, लेकिन अगस्त 2023 के अंक की बात ही कुछ अलग है। अगस्त का यह अंक साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रतिष्ठानके प्रेरणा पुरुष स्व. जगन्नाथप्रसाद चौबे 'वनमाली' को स्मरण करते हुए उनकी कुछ प्रतिनिधि कहानियों की समीक्षा प्रस्तुत करता है। मुकेश वर्मा, रमेश दवे, बृजेश कृष्ण, पंकज पराशर, कैलाश बनवासी, मनोजकुमार पांडेय, आशुतोष, नीरज खरे, अनुराधा सिंह, जय कौशल व अंजन कुमार की समीक्षाएँ इन कहानियों के लेखक से पाठकों को गहरे जोड़ देती हैं। ये समीक्षाएँ कहानियाँ पढ़ने के लिए उत्प्रेरित करती हुई महसूस होती हैं।

कथाकार वनमाली अपनी कहानियों और अपने विचारों में कुछ इस तरह खुलकर सामने आते हैं कि उनकी सृजनात्मकता नैतिकतावादी सांस्कृतिक मूल्यों से सम्पृक्त नजर आती है। अपनी कहानियों के माध्यम से वे एक ऐसे समाज के स्वरूप को गढ़ रहे थे जो कि यथार्थ के बेहद निकट रह सके। अपनी इन कालजयी कहानियों में शिल्प के नवीन प्रयोग, संवेदनशील भाषा और भिन्न अन्दाज के कारण वनमाली जी अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल होते हैं।

प्रखर कथाकार और उद्भट विचारक वनमाली जी के स्मरण के साथ-साथ इस अंक में देशभर के प्रसिद्ध साहित्यकारों की प्रसिद्ध कहानियों, कविताओं को प्रकाशित किया गया है। भारतीय भाषा साहित्य के अद्भुत बगीचे की तरह यह अंक इतना मनमोहक बन पड़ा है कि पाठक बार-बार पढ़ने को मजबूर हो जाता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की बांग्ला कहानी 'पत्नी का पत्र', फकीर मोहन सेनापति की उड़िया कहानी 'रेवती', जगन्नाथप्रसाद चौबे वनमाली की हिन्दी कहानी 'जिल्दसाज', वाइकम मुहम्मद बशीर की मलयालम कहानी 'बाल्यसखी', अमृता प्रीतम की पंजाबी कहानी 'शाह की कंजरी', गंगाधर गाडगीळ की मराठी कहानी 'ऐसा और वैसा', वाजिदा तबस्सुम की उर्दू कहानी 'उतरन', विजयदान देथा की राजस्थानी कहानी 'आशा अमरधन', यू.आर. अनन्तमूर्ति की कन्नड़ कहानी 'माँ', और डी. जयकान्तन की तमिल कहानी 'दाम्पत्य' के साथ-साथ अक्कितम (मलयालम), राजेन्द्र शाह (गुजराती), रहमान राही (कश्मीरी), सीताकान्त महापात्र (उड़िया), नीलमणि फुकन (असमिया), कुप्पली (कन्नड़), सी. नारायण रेड्डी (तेलुगु), भालचन्द्र नेमाड़े (मराठी) और कुँवर नारायण (हिन्दी) की कविताओं को अंक में स्थान देकर पत्रिका का गौरव और बढ़ा है। पाठक एक बार पत्रिका को हाथ में लेकर इतना भावुक होता है मानो इन पत्रों में जैसे सम्पूर्ण भारत प्रदर्शित हो रहा है। सम्पूर्ण भारत के चुनिन्दा साहित्य से सुवासित अगस्त 2023 का यह अंक एक खुशबूदार अंक बन गया है जो अपनी महक से अपने पाठकों को भारतीय साहित्य की समृद्धि से अवगत कराता है। 'वनमाली कथा' पत्रिका अपने पहले अंक से ही अनूदित साहित्य के माध्यम से एक अभियान के तौर पर ऐसे प्रयास कर रही है कि एक हिन्दी का पाठक सम्पूर्ण भारत के साहित्य से अवगत हो सके। साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक पत्रिका 'वनमाली कथा' को इन दिनों बेहद श्रद्धा के साथ देखा जा रहा है जो कि अपने पाठकों में आत्मीय बन गयी है।

हर अंक की तरह अगस्त 2023 का अंक भी हिन्दी जगत में एक सार्थक हस्तक्षेप है। 'लिखा-पढ़ी' में पत्रिका के सम्पादक कुणाल सिंह ने अपने प्रिय लेखक मिलान कुन्देरा को रचनात्मक श्रद्धांजलि दी है। कालजयी कहानियों और कविताओं के शानदार चयन के लिए 'वनमाली कथा' परिवार बधाई का पात्र है। इस अंक में शामिल सभी कविताएँ और कहानियाँ भारतीय साहित्य परिदृश्य में अनमोल हैं। अत्यन्त आकर्षक साज-सज्जा और कलात्मक चयन की वजह से अल्प समय में प्रसिद्धि-प्राप्त यह पत्रिका अपने गम्भीर पाठकों के लिए प्रतिबद्ध है, यह महसूस होता है।

– डॉ. उर्वशी, राँची (झारखंड)

❑

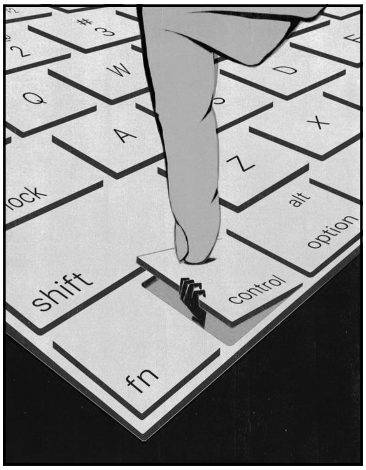

डिजिटल समय में साहित्य और कलाएँ

संतोष चौबे

फिलहाल जब मैं डिजिटल समय में साहित्य और कलाओं की स्थिति पर विचार कर रहा हूँ तो बरबस ही चालीस के दशक में वॉल्टर बेंजामिन द्वारा लिखित लम्बे आलेख 'आर्ट इन द इरा ऑफ मैकेनिकल रिप्रॉडक्शन',(यान्त्रिक पुनर्उत्पादन के समय में कलाएँ) की याद आ गयी है। प्रिंटिंग प्रेस तब तक व्यापक रूप से प्रचलन में आ गयी थी जिसने पेंटिंग्स का बड़े पैमाने पर मुद्रण सम्भव बना दिया था। जिस कला का आस्वाद पहले संग्रहालयों में या चित्रकार के निवास पर जाकर घंटों उसे निहारते हुए किया जाता था, अब वह प्रिंटेड स्वरूप में आस्वादक के घर तक पहुँच गयी थी और शायद उसके ड्राइंग रूम की शोभा बढ़ा रही थी। वह उसे कभी भी देख सकता था, उसके आस्वाद का समय और तरीका अब निश्चित नहीं रहा था। बेंजामिन का मानना था कि इससे कलात्मक आस्वाद की जनतान्त्रिकता तो बढ़ी थी, लेकिन उसकी गुणवत्ता का ह्रास हुआ था।

आगे चलकर यही संगीत के साथ हुआ। ऑडियो टेक्नॉलॉजी के आने के बाद संगीत के आस्वाद का तरीका बदल गया। भारतीय शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भ में कहा जाये तो लम्बी-लम्बी बैठकों का प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। रिकॉर्ड्स जब तक डिस्क पर थे तब तक भी वे उच्च वर्ग की ही पहुँच में आते थे। पर फिर उनके कैसेट्स पर और वहाँ से सी.डी. पर और फिर वहाँ से पेन ड्राइव पर और उससे भी आगे बढ़कर अब क्लाउड पर आने के बाद संगीत की उपलब्धता सर्वसुलभ हो गयी है। आप घर पर कमरे में अँधेरा करने के बाद आराम से पैर फैलाकर, अपनी पसन्द का संगीत सुन सकते हैं। कलाकार को सामने रहने की कोई जरूरत नहीं। समाज के लगभग सभी तबकों की अभिरुचियों के लिए संगीत आपको डिजिटल स्वरूप में मिल जायेगा। आपको बस चुनना-भर है। पर फिर भी क्या आप संगीत का वैसा ही मजा ले पाते हैं जैसा रात-भर चलने वाली किसी बैठक से आपको मिलता था?

वीडियो टेक्नोलॉजी के अत्यधिक विस्तार और सर्वसुलभता के कारण लिखे हुए शब्द की प्रभावशीलता और आस्वाद पर भी प्रभाव पड़ा है। पहले के तरह की चित्रात्मकता और दृश्यमयता अब कविताओं में देखने नहीं मिलती और अगर मिलती भी है, तो वैसा प्रभाव नहीं डालती। कहानियों और उपन्यासों की गति में परिवर्तन हुआ है, वहाँ घटनाएँ अब तेजी से घटित होती हैं और फोटोग्राफिक चमक के साथ आपके सामने से गुजरती हैं। कैमरा किसी स्थान या घटना पर पैन होता

है और पूरी डिटेलिंग के साथ आपको उस स्थान या घटना का विवरण देता है। कई छोटी-छोटी चीजें आपको बड़ी या विस्तारित नजर आती हैं और कई बड़ी चीजें या घटनाएँ अचानक तुच्छ लगने लगती हैं।

डिजिटल टेक्नोलॉजी ने ऑडियो, वीडियो और टेक्स्ट को अभिसरित कराया, उसने प्रोसेसिंग और सम्प्रेषण की गतियाँ बदलीं, हमारे मानसिक ढाँचे पर धीरे-धीरे प्रभाव डाला। उसे टुकड़ों-टुकड़ों में सोचने और आस्वाद लेने के लिए तैयार किया और इस तरह, आस्वाद के धरातल को ही पूरी तरह बदल दिया। कलात्मक स्तर पर क्या इस प्रक्रिया के कुछ प्रभाव पहचाने जा सकते हैं और वे मनुष्य के आन्तरिक विश्व को प्रकाशित करने और उसका विस्तार करने में सक्षम हैं? आइये, देखते हैं।

डिजिटल टेक्नोलॉजी, जिसमें ऑडियो और वीडियो टेक्नोलॉजी शामिल हैं, का कलाओं पर पहला प्रभाव ये पड़ा है कि उनमें एक सतही फोटोग्राफिक चमक पैदा हुई है लेकिन उनमें से गहराई का लोप होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में गति और चमक तो है पर गहराई, जो गहरे मानवीय गुणों जैसे करुणा, दया या सहानुभूति से प्राप्त होती थी, गायब है। हम दृश्य देखते हैं पर दिल में कोई हरकत नहीं होती। एक सपाट बियाबान की तरह रचना निकल जाती है जिसमें कहीं भी करुणा या किसी उच्चतर मानवीय गुण का सोता बहता नहीं दिखाई पड़ता। इसका दूसरा प्रभाव यह पड़ा है कि रचना या नरेटिव जिसमें पेंटिंग तथा संगीत के नरेटिव भी शामिल हैं, की गति बढ़ गयी है। कलाएँ, जो एक शीतल छाँव की तरह हुआ करती थीं, जहाँ ठहर कर थोड़ा विश्राम किया जा सकता था, अब एक अनवरत गति में बदल गयी हैं जो या तो मनुष्य के मानस से मेल नहीं खातीं या उसे अवांछित रूप से बदले दे रही हैं। गति का ही एक और पक्ष है तापक्रम। क्योंकि सामान्य और सहज तापक्रम पर रहते हुए वह गतिशीलता प्राप्त नहीं की जा सकती, तो रचनाएँ एक ऊँचे लेकिन कृत्रिम तापक्रम पर जाकर लिखी जा रही हैं, जहाँ मनुष्य अपने आपको भागते हुए भाप के कमरे में पाता है। वहाँ उसे आश्रय तो क्या मिलेगा?

अब चैट जी.पी.टी. ने, जो आभासी विश्व में उपस्थित सामग्री का बहुत तेजी से (सेकेंड्स में) एकीकरण कर देता है, एक नयी तरह की कृत्रिमता पैदा की है, जिसमें कंटेंट का निर्माण तो बहुत तेजी से किया जा सकता है पर मानवीय संवेदना और कलात्मक निर्माण की अन्त:प्रेरणा जिसमें से गायब है जिसके कारण किसी रचना में कलात्मक गहराई प्राप्त होती है। मैंने चैट जी.पी.टी. के माध्यम से निर्मित कहानियाँ और कविताएँ देखी हैं जो अपने रूप में तो कहानी और कविता दिखती हैं पर जिनमें आपके मर्म को छूने की विशेषता नहीं है, जो किसी भी कला का प्राथमिक गुण होता है।

अब चैट जी.पी.टी. ने, जो आभासी विश्व में उपस्थित सामग्री का बहुत तेजी से (सेकेंड्स में) एकीकरण कर देता है, एक नयी तरह की कृत्रिमता पैदा की है, जिसमें कंटेंट का निर्माण तो बहुत तेजी से किया जा सकता है पर मानवीय संवेदना और कलात्मक निर्माण की अन्त:प्रेरणा जिसमें से गायब है जिसके कारण किसी रचना में कलात्मक गहराई प्राप्त होती है। मैंने चैट जी.पी.टी. के माध्यम से निर्मित कहानियाँ और कविताएँ देखी हैं जो अपने रूप में तो कहानी और कविता दिखती हैं पर जिनमें आपके मर्म को छूने की विशेषता नहीं है, जो किसी भी कला का प्राथमिक गुण होता है।

तो क्या ये सब मनुष्य के लिए उचित है? हम सब ये बात अनुभव से और अवलोकन से भी जानते हैं कि प्रत्येक जीवित वस्तु (अस्तित्व) त्रिआयामी होती है। लम्बाई और चौड़ाई के अलावा उसमें एक गहराई भी होती है, जो उसके आन्तरिक विश्व का निधारण करती है। जबकि जड़ पदार्थ अधिकतर एक आयामी या द्विआयामी होता है। कितना भी प्रयास करें, बिन्दु बिन्दु ही रहेगा या रेखा एक आयामी रेखा ही रहेगी। सतह का निर्माण रेखाओं के माध्यम से हो सकता है पर उसमें कोई गहराई, कोई भीतरी पक्ष, कोई आन्तरिक तल नहीं होगा। वह समतल ही रहेगी। यदि हमें जड़ पदार्थ, या बाहरी दिखने वाले विश्व के विवरण से आगे बढ़कर जीवित वस्तुओं के बारे में लिखना है या कलात्मक निर्माण करना है तो हमें तीसरे आयाम का प्रवेश कराना ही होगा, जो उसमें गहराई लाने से सम्भव होगा। मानवीय सन्दर्भ में ये गहराई मानवीय गुणों से आती है जिनका जिक्र मैंने ऊपर किया है।

डिजिटल समय में साहित्य और कलाओं की बहस को सिर्फ टेक्नोलॉजी के सन्दर्भों से आगे बढ़कर, प्रभावशीलता और आस्वाद के धरातल तथा मानवीय गुणों के विकास तक आना होगा, जो साहित्य तथा कलाओं का मूल काम था। उपरोक्त आधारों पर इस समय की कला आलोचना भी विकसित की जा सकती है।

मो. 9826256733

❑

आईनाघर

मन्नू भंडारी : अकृत्रिम व्यक्तित्व की धनी

शशिकला त्रिपाठी

सन् पचास के बाद की कहानियों को पढ़ते हुए जो विशेषताएँ मानस-पटल पर रेखांकित होती हैं, उनमें आधुनिकताबोध, अकेलापन, सन्त्रास, टूटन और अलगाव जैसे भावबोध के गहरे अक्स होते हैं। ये प्रवृत्तियाँ पश्चिमी दर्शन के प्रभाववश भारतीय व्यक्ति की शिराओं में भी रक्तधारा की भाँति प्रवाहित होने लगीं। 18वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति, बौद्धिकता, वैज्ञानिक सोच, तार्किकता और प्रश्नाकुलता जैसी विशेषताएँ भारत में दो सौ वर्षों के पश्चात् 20वीं शताब्दी के समाज-संस्कृति और कला-साहित्य में स्पष्ट दिखाई देने लगीं। मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद जैसी विचारधाराओं ने स्वयं भारतीय बाना धारण कर लिया। फलतः उनके ही आलोक में स्वातन्त्र्योत्तर रचनाकारों ने भारतीय भूमि, परिवेश और परिस्थितियों की नयी संरचना की और जो चरित्र गढ़े, उनसे सामाजिकता के तन्तु टूट-छूट रहे थे। उनका व्यवहार न मर्यादित था और न ही नैतिक; मगर उनके वजूद को खारिज करना भी आसान नहीं था, कथापात्र स्त्री हो या पुरुष। आजादी का स्वप्न, विभाजन और रक्तरंजित स्वतन्त्रता के चेहरे से भी स्थितियाँ जटिल होती गयीं जिनसे जीवन सहज नहीं रहा। खासतौर से शिक्षित स्त्रियों के समक्ष चुनौतियाँ अधिक थीं जिनमें अस्मिताबोध था और अस्तित्व के लिए वे संघर्षशील थीं। इन बदलावों को स्त्री रचनाकारों ने अधिक शिद्दत से महसूस किया। एवमस्तु, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा अग्निहोत्री जैसी लेखिकाएँ उस दौर में महिला लेखन का परचम फहराती हुई दिखाई देती हैं। सौभाग्य से मुझे मन्नू जी का नैकट्य कुछ ज्यादा मिला और उनसे संवाद के अवसर भी। फलस्वरूप, उनके व्यक्तित्व का सम्मोहन, सादगी और बेबाक बातचीत का प्रभाव मेरे हृदयपटल पर अधिक अमिट रहा। अतएव, उनकी यादों के गलियारे से गुजरने का सुख साझा करना मेरी अनिवार्यता है, अभिव्यक्ति का सन्तोष है तो उनकी विरासत को सहेजने की एक कोशिश भी। फिर भी, स्पष्ट कहना चाहूँगी कि लब्धप्रतिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव के बहाने ही मेरे लिए मन्नूजी का आवास हौजखास एक पुण्यदायी तीर्थस्थल बना।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से 'कथाकार राजेन्द्र यादव : संवेदना और शिल्प' विषय पर शोध करने के दरम्यान राजेन्द्र यादव से साक्षात्कार हेतु कभी मेरा दिल्ली जाना नहीं हुआ। संवाद के अवसर लैंडलाइन पर जरूर मिलते रहे। उन दिनों मोबाइल का प्रचलन था भी नहीं। राजेन्द्र और मन्नू भंडारी दोनों बहुत बड़े लेखक हैं, लेखन के जरिए ही उनमें निकटता आयी और वे विवाह संस्था में बँधे; इस वस्तुस्थिति से मैं परिचित थी जहाँ-तहाँ कुछ-कुछ पढ़कर। उनके समकालीन रचनाकारों की नयी कहानियों को भी पढ़ रही थी कहानी के नयेपन को परखने के लिए। तत्कालीन उनके बहुचर्चित उपन्यासों को पढ़ना भी आवश्यक लगता। परन्तु, मन्नू जी की कृतियों के प्रति मेरी रुझान अधिक थी, मेरे लिए यह स्वाभाविक भी था। उनकी कुछेक कहानियों और बहुचर्चित उपन्यास 'आपका बंटी' से मैं प्रभावित हुई थी। प्रायोगिक उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' को तो दोनों रचनाकार दम्पती ने संयुक्त रूप से लिखा है; उसे भी पढ़ना था, पढ़ा भी। पुरुष पात्रों का चरित्र विकास राजेन्द्र यादव ने किया है और स्त्री पात्रों का निरूपण मन्नू भंडारी ने। लेखकीय जुड़ाव के बावजूद उनके वैयक्तिक मतभेद या पारिवारिक जीवन के बारे में वैसे मुझे कुछ खास जानकारी नहीं थी। उनके सम्बन्धों की दीवार पर दरारों के फटने की बात तो मुझे तब मालूम हुई, जब जनवरी-फरवरी 1995 में मैं रिफ्रेशर कोर्स करने जेएनयू पहुँची थी और वहाँ एक माह रहते हुए दिल्ली की कई बहुचर्चित लेखिकाओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ

और उनसे संवाद का आनन्द भी। सचमुच, उनकी सुर्खियों की चर्चाओं से मैं हैरान हुई और परेशान भी। अत: श्रद्धा के चट्टान रह-रह कर टूटने लगे थे। कालान्तर में मन्नूजी के अस्वस्थ होने और प्राथमिकताओं में परिवर्तन होते रहने से उनसे भेंट का फिर संयोग न बना।

शोधकार्य की पूर्णता के बावजूद राजेन्द्र जी से फोन पर बातचीत का सिलसिला बना रहा। प्राय: सम्पादकीय पर चर्चा करती और वे एक गुरु की भाँति वे चिन्तनधाराओं को सटीक समझने हेतु श्रेष्ठ पुस्तकों के नाम बताते, कहते इन सबको तुम्हें जरूर पढ़ना चाहिए। मुझे दिल्ली आने के लिए उत्साहित भी करते– महानगर की कहानियों पर लिखा है इसलिए महानगर को स्वयं समझने-परखने की कोशिश करो, लेखन में परिपक्वता तो 'आँखन देखी' से आती है। उन्हें आश्चर्य होता कि मैंने अभी तक किसी महानगर का भ्रमण नहीं किया है। जिस प्रकार, नदी की सतह पर कंकड़ फेंकने से हलचल होती है, उसी प्रकार उनकी प्रेरणा से मेरे भीतर सोयी हुई महत्त्वाकांक्षा की कुंडलनी जाग गयी और साँप के फण की भाँति जब-तब फुँफकार मारती। सत्ता की केन्द्र दिल्ली भी मुझे पुकारने लगी, अत: वहाँ जाने का मैंने पक्का निश्चय किया और बड़े भाई श्री कृष्णकान्त त्रिपाठी के साथ दिल्ली पहुँच गयी। भाई साहब, साहित्य के घनघोर पाठक रहे हैं और एक जिम्मेदार भाई भी। ऐसे भाई, बहनों को भटकने के लिए कभी अकेला नहीं छोड़ते। राजेन्द्र जी जेएनयू के गोमती गेस्ट हाउस में हमारे ठहरने की व्यवस्था पहले ही सुनिश्चित कर दिये थे। यह सुविधा किसी विश्वविद्यालयी मित्र के जरिए ही उन्होंने उपलब्ध कराया होगा क्योंकि ऐसी सुविधा का अधिकारी नियमत: बाहरी व्यक्ति नहीं होता। कहना न होगा कि ऐसी उदारता या उपकार की भावनाएँ महान लेखकों के हृदय में प्राय: नहीं उफनतीं। जबकि, एक नवांकुर लेखक के शुभचिन्तक बनने में राजेन्द्र जी तनिक भी गुरेज न करते; इस विशेषता की गवाही अनेक लेखकों ने दिया भी है। शायद, उन्हीं की वजह से यात्राओं के प्रति मेरी रुझान जगी और कालान्तर में दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, बेंगलुरू, अहमदाबाद, हैदराबाद जैसे तमाम महानगरों के भ्रमण संगोष्ठियों के बहाने मैंने अनुभव-विस्तार के लिए किये। यह भी सोच रही कि कभी न कभी इनके सन्दर्भ लेखन में आएँगे ही। हर शहर का अपना एक खास चेहरा जो होता है।

'हंस' के पुनर्प्रकाशन से राजेन्द्र जी की प्रसिद्धि में चार चाँद लग गया था। इस वजह से भी देशभर के साहित्यकार जब दिल्ली जाते, उनसे भेंट करने अक्षर प्रकाशन अवश्य पहुँचते और वहाँ विमर्शों की ज्ञानगंगा से तरोताजा होकर लौटते। 'हंस' पत्रिका मेरी भी जरूरत बन चुकी थी। कहना गलत न होगा कि 'हंस' के जरिए ही मेरे जैसे विभिन्न शहरों के पाठक-लेखक अनेकानेक सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैचारिक गतिविधियों से परिचित ही नहीं हुए; सोचने गुनने और समझने की उन्हें दिशा भी मिली। मेरे लिए भी 'अक्षर प्रकाशन' ज्ञानकेन्द्र ही साबित हुआ। वहाँ, पहली बार मैं गौतम नवलखा और एडवोकेट अरविन्द जैन से परिचित हुई और प्रसिद्ध कथाकार शैलेश मटियानी से साक्षात्कार का सुखद आनन्द हुआ। वर्तमान के घोषित अरबन नक्सलवादी नवलखा अपने नाम के अनुरूप उस समय 'हंस' के अर्थ प्रबन्धन का कार्य किया करते थे। वहाँ, बौद्धिक दुनिया की एक झाँकी देखने से उत्साहित मैं अन्य साहित्यकारों से भी मिलने हेतु उत्कंठित हुई। अतएव सर्वप्रथम मैंने मन्नू भंडारी से भेंट करने की इच्छा राजेन्द्र जी से जाहिर की। 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशित उनके लोकप्रिय उपन्यास– 'आपका बंटी' को हमारे समय का साहित्य प्रेमी भला कैसे भूल सकता है? उसे पढ़कर मैं भी अति विभोर हुई थी और बंटी के द्वन्द्व से विचलित होकर उपन्यास की अहंग्रस्त नायिका शकुन से खिन्न भी हुई कि वह सिर्फ निजी व्यक्तित्व/स्त्रीत्व के लिए संघर्षशील है, बच्चे की फिक्र नहीं। जाहिर है, आधुनिकता से स्त्री को उड़ने के लिए पंख तो मिले, मगर उनके लिए धरती ठोस न रही, अपितु चुनौतियों के चहुँतरफा कँटीले तार का विस्तार हुआ।

अगले दिन पूर्वाह्न 12 बजे हम लोग हौजखास पहुँचे थे, शायद, रविवार था उस दिन। राजेन्द्र जी ने हमारा स्वागत किया और फिर कहीं चले गये, शायद किसी मित्र के घर। ''राजेन्द्र जी गोष्ठियों में खूब जाते हैं, आप क्यों नहीं?'' मैने सहज जिज्ञासावश मन्नू जी से पूछ लिया था। ''राजेन्द्र जी का अपना एक सुनिश्चित विचार-चिन्तन है जिसे साझा करने वे गोष्ठियों में जाते हैं। मगर, मैं क्या बोलूँगी?'' जाहिर है, उनका यह सरल निष्कपट उत्तर उनके पारदर्शी, सहज और निर्कुंठ व्यक्तित्व का ही उद्घोष था। यही सहजाभिव्यक्ति उनकी कहानियों की ताकत रही है। लेखन, उनके अन्तस का दर्पण है तो आन्तरिक और बाह्यजगत के मध्य सामंजस्य हेतु एक संवाद भी। इसी सकारात्मक सोच से हिन्दी कथालेखन में उनकी विशिष्ट पहचान बनी। रचनात्मक लेखन तो उनके लिए साँस लेने जैसी अनिवार्यता थी, इसीलिए लेखन भी एकदम सहज था। रचना-प्रक्रिया की अनुभूति उनके लिए शीर्षासन करने या प्रसव-पीड़ा जैसी पीड़ादायी कभी नहीं रही; जबकि राजेन्द्र यादव की रचना-प्रक्रिया की यही खासियत थी; ऐसा वे स्वयं कहते और मन्नूजी ने भी कई स्थलों पर ऐसा लिखा भी है।

डॉक्टरेट की उपाधि-प्राप्ति के पश्चात् शोधप्रबन्ध की एक प्रति मैंने राजेन्द्र जी के अवलोकनार्थ अक्षर प्रकाशन भेज दिया। उनका पत्र मिला– ''तुमने बढ़िया काम किया है, इसे प्रकाशित भी कराना चाहिए।'' इस निमित्त उन्होंने मुझे कई सुझाव दिये। मेरे भी अनुभव का यही निष्कर्ष है कि जितनी बार अपने लिखे को पढ़ा जाए, उतनी बार उसमें सुधार की सम्भावना प्रतीत होती है; कहन को कुछ नये अन्दाज में लिखा जाए तो बेहतर होगा। नतीजतन, संशोधन की प्रक्रिया से शोध प्रबन्ध की परिणति एक नयी पांडुलिपि में हो गयी और प्रकाश्य पुस्तक का नामकरण हुआ– 'राजेन्द्र यादव : कथ्य और दृष्टि'। उन दिनों, प्रसिद्ध स्त्रीवादी लेखिका अर्चना वर्मा 'हंस' में सम्पादन सहयोग दे रही थीं; उन्होंने भी पांडुलिपि को परखकर उसके प्रकाशनार्थ हरी झंडी दिखायी। अन्ततः दिल्ली के नीलकंठ प्रकाशन से सन् 1993 में मेरी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई जिसकी एक प्रति मैंने मन्नूजी को भी भेंटस्वरूप प्रेषित किया। उस समय तक लेखन का भूत मेरे पीछे लग गया था और तमाम कठिनाइयों में भी उसने मेरा साथ नहीं छोड़ा। इसका श्रेय राजेन्द्र जी और मन्नू जी को देना शायद गलत न होगा। वैसे बनारस में कथाकार शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिह, चौथीराम यादव, चन्द्रकला त्रिपाठी, वशिष्ठनारायण त्रिपाठी, अवधेश प्रधान, बलिराज पांडेय जैसे प्रतिष्ठित लेखक-प्राध्यापकों के आशीर्वाद और सान्निध्य के प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता और न ही मिर्जापुर के भवदेव पांडेय, अमर गोस्वामी, शिवमूर्ति, कुमारसम्भव, गीतकार गुलाबसिंह, कृष्णकान्त त्रिपाठी आदि के प्रभामंडल की छाया को। उन सबको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सुनना भी मुझे खूब भाता। नतीजतन, वसन्त महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापन और गृहस्थी को साधते हुए अधिकाधिक पत्रिकाओं को पढ़ना और लिखना मेरे लिए नशे की लत जैसा हो गया जिसकी तसदीक पत्रिकाएँ और पुस्तकें जरूर देती हैं। इस पथ पर पत्राचार, दूरभाष और फिर चलभाष माध्यमों से साहित्यिक मित्र भी बनते और बिछुड़ते रहे, लेकिन राहें कभी बन्द नहीं हुईं।

राजेन्द्र जी, पत्र लिखने में कभी आलस्य न करते। मेरा उनसे पत्राचार तब अधिक हुआ, जब मुझे करियर के अगले दरवाजे की चिन्ता हुई। उनके हस्तलिखित पत्रों को मैंने आज तक सँजोकर रखा है। फिलहाल, सन् 1988 में रिसर्च एसोसिएट पद के निमित्त मुझे साक्षात्कार देने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नयी दिल्ली पहुँचना था। तब, मेरे लिए मिर्जापुर से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आना-जाना तो आसान था, मगर दिल्ली तब दूर थी। मेरे असमंजस की स्थिति मे एक शुभचिन्तक की भाँति राजेन्द्र जी ने हिम्मत बँधाते हुए पत्र लिखा था– ''गोमती गेस्ट हाउस, यूजीसी और रेलवे स्टेशन दोनों के निकट है, तुम्हे कोई दिक्कत नहीं होगी। मेरी बेटी टिंकू ने तो छह वर्ष में ही कलकत्ता से दिल्ली तक की हवाई यात्रा अकेले की थी।'' मेरी स्मृति का सच यही है कि उन दिनों राजेन्द्र जी आईआईटी कानपुर किसी प्रयोजनवश गये हुए थे। अतएव, अक्षर प्रकाशन न जाकर हम मन्नू जी से आशीर्वाद लेने हौजखास पहुँचे। कॉलबेल बजाने पर जब उन्होंने दरवाजा खोला तो उस वक्त उनका परिधान गाउन था। सोफा की ओर बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने कहा– ''दस मिनट पहले ही मैं कॉलेज से लौटी हूँ।'' तब वे दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस में प्राध्यापक थीं। परिणामस्वरूप, मुझे अपराधबोध हुआ और रंज भी कि यह तो उनके आराम का समय है। लेकिन जल्द ही मैं सुखद एहसास से सराबोर हो गयी, जब देखा कि पाँच-सात मिनट बाद वे हल्के आसमानी रंग की साड़ी में लिपटी हुई प्रकट हुई और सामने के सोफे पर बैठती हुई अपने नेपाली सेवक से चाय आदि लाने का आदेश दिया। मैं अचम्भित होकर सोच रही थी– इन्हें हम जैसे आगन्तुक युवक-युवतियों की भी इतनी परवाह? यह इनका भारतीय पाम्परिक संस्कार है या ड्रेस कोड सेंस? आज भी उस दृश्य को याद करती हूँ तो यही विचार कौंधता है– लोक और सामाजिक सरोकारों की गहरी संसक्ति की परिणति ही रही होगी उनकी वह सजगता। इसलिए, हम मीरजापुरियों की परवाह करते हुए उन्होंने वस्त्रविन्यास में बदलाव किया। मैंने उनसे बार-बार विनती की, आप भोजन कर लें तब मुझे संवाद करने में संकोच न होगा और हम तो बाकायदा भोजन करके आये हैं।

रिसर्च एसोसिएट के लिए गुरुजनों की प्रेरणा से मैंने 'मार्क्सवादी स्थापनाओं के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानियों का मूल्यांकन' विषय का चयन किया था। तब, मार्क्सवादी विचारधारा का आकर्षण प्रायः उन सभी शोधार्थियों में होता जो 'लेखन' में अपना पाँव जमाना चाहते थे क्योंकि उसी विचारधारा का बहाव और प्रवाह चारों दिशाओं में परिलक्षित होता; प्रतिष्ठित विद्वानों की वह लेखनी हो या तेज-तर्रार प्राध्यापकों का वक्तव्य। तब, मैंने भी 'कैपिटल' का रहस्य सुलझाने हेतु कमर कस लिया। अध्ययनोपरान्त जो गुत्थियाँ रह जातीं, उन्हें विद्वानों से संवाद कर सुलझाने का यत्न करती। आलोचना के शिखरपुरुष नामवर सिंह को मैंने भरसक पढ़ा और बनारस के आयोजनों में उन्हें सुनने की हरसम्भव कोशिश भी करती। इसी प्रयत्न में शिवदानसिंह चौहान, रामविलास शर्मा जैसे विद्वान आलोचकों को भी पढ़ा। बहरहाल उन्हें सुनने का अवसर मयस्सर नहीं हुआ। इसीलिए,

भोजनोपरान्त मन्नू जी से मैंने इसी विचारधारा पर प्रकाश डालने का आग्रह किया। मेरा पहला प्रश्न था– ''मार्क्सवादी स्थापनाएँ क्या हैं?'' मन्नूजी ने तपाक से बोला, ''शशि, मैं विदुषी आलोचक नहीं, रचनाकार हूँ। इस विषय पर संवाद करना हो तो नामवर सिंह जी से मिलना बेहतर होगा। कहो तो मैं उनसे बात करूँ?'' सुखद आश्चर्य कि मेरे हामी भरने पर उन्होंने तत्काल नामवर जी से फोन पर अगले दिन भेंट का समय सुनिश्चित कर दिया। सहयोग का ऐसा उज्ज्वल पक्ष किसी निरभिमान व्यक्तित्व में ही परिलक्षित हो सकता है। मैं विभोर-सी उन्हें अपलक निहारती रही जैसे कोई देवी वरदान हेतु मेरे समक्ष प्रकट हुई हों। सुखद यह कि बातचीत में वे लगातार मेरी जिज्ञासा को दूर भी करती रहीं।

'नयी कहानी' के रचनाकारों द्वारा 'सम्बन्ध' केन्द्रित कहानियाँ अधिक लिखी गयीं। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, बलिदान, विभाजन और खंडित आजादी के जख्म से कराहते भारतवासियों के पारस्परिक सम्बन्धों पर आई आँच को उन्होंने गहराई से महसूस किया। मन्नू जी की भी कहानियों में संवेदना के स्रोत परिवार या वैयक्तिक सम्बन्धों के इर्द-गिर्द अधिक फूटते हैं। भौगोलिक विघटन, निराशाजनक परिस्थितियाँ, पश्चिमी दर्शन और भारतीय आधुनिकता से उत्प्रेरित कहानियों में विश्वास की नौका के हिचकोले लेने से सम्बन्धों के समीकरण गड़बड़ाते हैं। इसीलिए, एक भेंट में जब मैंने मन्नू जी से नये कहानीकारों द्वारा विवाह-संस्था पर प्रश्नचिह्न लगाने की बाबत पूछा तो उनके उत्तर में स्पष्ट उत्तेजना लक्षित हुई– ''पत्नी वस्त्र नहीं कि रोज-रोज उसे बदला जाए। निस्सन्देह, मोहन राकेश बहुत अच्छे रचनाकार हैं, किन्तु उनके निजी जीवन की मैं कटु आलोचक हूँ। एक-एक कर चार स्त्रियों से विवाह किये; स्त्री तो ऐसा नहीं करती। सच यही है कि हमारे समय के पुरुषों की मानसिकता सामन्ती है, भले ही वे अपने को आधुनिक कहें।'' मैंने महसूस किया; मन्नू जी के लिए आधुनिकता का तात्पर्य पश्चिमी विचारों को ओढ़ना-बिछौना की तरह इस्तेमाल करना नहीं है। उन पर भारतीयता के भी रंग चटख चढ़े हुए हैं। मैंने दूसरा सवाल किया– ''आपका बंटी उपन्यास में पति-पत्नी के अहं की टकराहट में बच्चों की उपेक्षा, अन्याय और उसके कोमल मन के होते हजार टुकड़ों को रेखांकित कर आपने पारिवारिक-सामाजिक संरचना की मान्यताओं का ही प्रतिपादन नहीं किया है?'' मन्नू जी का जवाब था– ''देखो शशि! दाम्पत्य जीवन के मूल में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध बेशक बुनियादी हैं किन्तु बच्चों की जिम्मेदारी भी माता-पिता के लिए अहमियत रखती है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी रहा है कि परिवार चलाने में स्त्रियों ने ही स्वयं को होम किया है। परन्तु वर्तमान समाज में शिक्षित और स्वावलम्बी स्त्रियों के भीतर अहं का जागरण होने से वे स्वयं अपने स्त्रीत्व के लिए भी जगह बनाना चाहती हैं। इस मुद्दे पर हमारे समय में खूब लिखा गया। मगर, मैंने तब महसूस किया कि स्त्री-पुरुष के टकराव से उत्पन्न बच्चे की त्रासदी पर किसी ने अब तक नहीं लिखा है; इसलिए बंटी को केन्द्र में रखते हुए मैंने 'आपका बंटी' उपन्यास लिखा जिसमें शकुन कभी एक स्त्री होकर जीना चाहती है तो दूसरे क्षण माँ बनकर वह बंटी के लिए भी चिन्तित होती है।'' मेरा प्रतिप्रश्न था– ''इसका मतलब है– विवाह संस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए 'अहं' का त्याग जरूरी है? भारतीय संस्कृति का भी तो एक स्वर है– तेन त्यक्तेन भुंजीथा:।'' प्रत्युत्तर में मन्नू जी का कहना था– ''तुम ठीक कह रही हो। इसका अमल पारिवारिक सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए। परन्तु, पति-पत्नी के मध्य अगर विश्वास-निष्ठा के चुम्बकीय आकर्षण शेष न रह जाएँ तो अलगाव का रास्ता ही श्रेयस्कर है।'' जाहिर है, मन्नू जी का निजी जीवन भी यही पाठ देता है। उन्होंने अपने जीवन और लेखन दोनों में ईमानदारी बरती है।

मन्नू भंडारी के कहानी संग्रहों– एक प्लेट सैलाब, मैं हार गयी, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, नायक खलनायक विदूषक, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ और पाँच लम्बी कहानियाँ की प्रमुख कहानियों– 'त्रिशंकु', 'अभिनेता', 'तीसरा आदमी', 'मै हार गयी', 'एक प्लेट सैलाब', 'अकेली', 'रजनी', 'सयानी बुआ', 'स्त्री सुबोधिनी', 'मुक्ति' और 'यही सच है' के पाठ-संवाद और विवेचन-विश्लेषण द्वारा भी मन्नू जी की वैचारिकी व संवेदना-धुरी को चिह्नित किया जा सकता है। इन कहानियों के द्वारा ही कथालेखन की प्रमुख स्तम्भ के रूप में उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई। 'नयी कहानी' आन्दोलन में 'अनुभव की प्रामाणिकता' और 'आनुभूतिक ईमानदारी' पर बल अधिक था। अतएव, कथाविन्यास में बदलते जीवन-मूल्य, सम्बन्धों का खोखलापन, पीढ़ियों के अन्र्द्वन्द्व, विरोधाभासी सम्बन्ध, अन्तर्विरोध की जटिलता, स्त्री-स्वतन्त्रता की जद्दोजहद, नैतिकता बनाम मनोवैज्ञानिकता जैसे सन्दर्भों की त्रासद विडम्बनाओं को उन्होंने वर्णित किया है जो उनके इर्द-गिर्द घटित हो रही थी। इस तरह, मन्नू जी ने साहसिक लेखन भी किया। नारी-मन के चितेरे कथाकार जैनेन्द जब अपने उपन्यास-कहानियों में स्त्री पात्रों के अन्तर्मन को कुरेदते हैं तो उसके परिणामस्वरूप सामाजिक नैतिकता की श्रृंखलाएँ टूटती हैं। मनोजगत का सत्य समाजिक व्यवस्था और उसके आदर्श के अनुरूप कभी नहीं होता। उनकी पहल पर फ्रायडीय विचारधारा को समझने और

कृतियों में स्त्री-मन के उत्खनन का प्रयास अन्य रचनाकारों ने भी किया। हालाँकि, स्त्री-मन का पाठ और उसके अनछुए भावों की अभिव्यक्ति पितृसत्ता के लिए एक बड़ी चुनौती थी तो साहित्य जगत के लिए 'काव्य-न्याय'। वस्तुत: मन, पाषाण की भाँति नहीं, जल-जैसा प्रवाहमान होता है। जहाँ उसे रास्ता मिलता है, उधर ही उसकी धारा मुड़ जाती है; 'यही सच है' कहानी का कथ्य यही है। मन्नू जी से मैंने एक बार पूछा था- ''यही सच है कहानी के जरिये स्त्री के अस्थिर मन की अभिव्यक्ति का जोखिम आपने क्यों उठाना चाहा?'' उनका उत्तर था- ''फिल्म निर्माता बासु चटर्जी कुछ हटकर एक फिल्म बनाना चाहते थे। उनके ही प्रस्ताव पर मैंने यह कहानी लिखी थी। बेशक, स्त्री-मन की चंचलता/अस्थिरता की प्रस्तुति समाज के लिए आदर्शपरक स्थिति नहीं होती परन्तु मनोवैज्ञानिक सचाई तो हो सकती है। कथावस्तु के इस नयेपन के कारण ही बासु चटर्जी ने इस पर 'रजनीगन्धा' फिल्म बनायी। इससे पारम्परिक समाज को ऐतराज हो सकता है मगर बदलते यथार्थ का साक्षात्कार करना भी रचनाकार का दायित्व है।''

उन दिनों हौजखास भी हमारे लिए ज्ञानगढ़ हुआ करता था। कथाकार-द्वय से भेंट करना हर बार सुखद लगता। उनसे मुलाकात होने के बाद ही दिल्ली-यात्रा की पूर्णता का बोध होता। उन दोनों के सान्निध्य से साहित्य, समाज और संस्कृति के तन्तुओं से मैं बँधती गयी, मानो मेरी ज्ञान-पिपासा अमिट हो गयी हो। अत: जब भी दिल्ली जाती, मन्नू जी से भी भेंट का अवसर सुनियोजित करती। फिर भी, फोन पर बातचीत का सिलसिला उनसे मेरा कभी नहीं रहा। जब भी हौजखास पहुँची, उनके लिए मेरा आगमन अकस्मात होता। एक बार, दोपहर एक बजे के आसपास मैं उनके घर पहुँची थी। किसी अतिथि के आतिथ्य की प्रतीक्षा में उनके डाइनिंग टेबल पर डोंगे, प्लेट्स और गिलास वगैरह सजे हुए थे। पकवान की खूशबू ऐसी कि कोई भी भूखा व्याकुल हो जाय। मन्नू जी कुछ अन्यमनस्क-सी प्रतीत हो रही थीं। फिर भी 'अतिथि देवो भव' का भाव लिये हुए उन्होंने पूछा- ''दिल्ली कब आना हुआ?'' सामान्य बातचीत के क्रम में ही उन्होंने किसी रिश्तेदार के सपरिवार भोजन पर आने की सूचना दी। उस समय वे एक कथाकार नहीं, गृहस्थ महिला मुझे अधिक प्रतीत हो रही थीं। एकाध घंटा बीतने पर उन्होंने कहा; जिसको आना था, वे तो नहीं आये; अब असली अतिथि शशि तुम्हीं हो, आओ मेरे साथ बैठो, भोजन करो। मैं बेहद सकुचा उठी, लेकिन मना भी न कर सकी, व्यंजन की सुगन्ध से क्षुधापूर्ति की आवश्यकता तीव्र हो गयी थी। उन्होंने हरेक व्यंजन लेने की जिद कर मनोयोग से खिलाया। मुझे ऐसा महसूस हुआ, मानो हमारे समक्ष अन्नपूर्णा प्रकट हो गयी हों। दूसरे क्षण, ऐसा भी लगा कि मैं अपनी मौसी के घर सुरुचिपूर्ण भोजन का आनन्द ले रही हूँ।

जेएनयू प्रवास का एक माह हम प्रतिभागियों के लिए बहुत उर्वर रहा। हिन्दी कहानी पर केन्द्रित दो सत्रों के व्याख्यान, शनिवार-रविवार की महानगरीय संगोष्ठियों में शिरकत और प्रतिष्ठित साहित्यकारों से साक्षात्कार के सुअवसर मिलने से साहित्यिक गर्मी का पारा चढ़ गया। पुनश्चर्या पाठयक्रम के संयोजक प्रो. मैनजर पांडेय ने देश-भर के प्रतिष्ठित साहित्यकार प्राध्यापकों को व्याख्यान हेतु आमन्त्रित किया था। हम उनके वक्तव्य सुनते, सवाल-जवाब होते और अवकाश के दिन किसी प्रतिभागी संग स्थापित रचनाकारों के आवास पर पहुँच जाते। मैंने दो-तीन दिन मन्नू जी के सान्निध्य में भी गुजारे। उनके उपन्यास 'महाभोज' की कथावस्तु उन्हें अन्य लेखिकाओं से विशिष्ट घोषित करता है। अत: उसी रचना पर मैंने एक भेंट में अपना प्रश्न केन्द्रित किया- ''मन्नू जी! राजनीति में तो आप रही नहीं फिर आपराधिक-राजनीतिक कुचक्र पर आधारित आपने इतना अच्छा उपन्यास कैसे लिखा? महिला रचनाकारों के अनुभवों के आसपास का इलाका तो प्राय: घर-परिवार ही होता है। कामकाजी होने पर भी उनके लेखन का परिवेश बहुत विस्तृत नहीं होता।

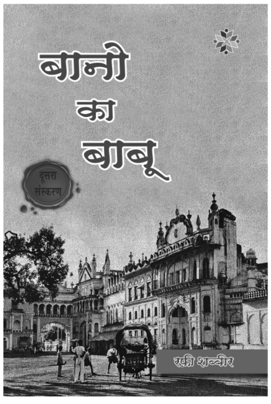

आईसेक्ट पब्लिकेशन

बानो का बाबू

रफी शब्बीर

मूल्य 250 रु.

दुनिया की पहली महिला कव्वाल शकीला बानो भोपाली को दुनिया के नामवर लोगों ने उसके फन और शख्सियत की वजह से जाना... मगर एक ऐसा शख्स भी है जिसने शकीला बानो को मेहबूब की नजर से देखा और उस पर अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी। यह किताब शकीला बानो के हमदम रहे और आज भी भोपाल की तंग गलियों में अपनी जिन्दगी बसर कर रहे बाबू की जुबानी लिखी गयी है। इस मोहब्बत की दास्ताँ को बयाँ करते हुए बाबू आज भी यह कहते हैं-
इश्क जिन्दा भी छोड़ देता है / तुमको अपनी मिसाल देता हूँ।

गृहस्थी और बच्चों की जिम्मेदारी उन्हीं के कन्धे पर होती है तथा उनके कर्मक्षेत्र भी सीमित होते हैं। यह यथार्थ आपके समय का तो रहा ही है। तुर्रा यह कि आपके समकालीन लेखक 'भोगा हुआ सत्य' और 'अनुभूति की ईमानदारी' की दुहाई भी देते हैं?'' उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा था– ''मैं इसी धारणा को तोड़ना चाहती थी। सहानुभूतिपरक लेखन में अगर दम न होता तो प्रेमचन्द होते और न टैगोर। रचनाकार, जिस समाज–चरित्र की अभिव्यक्ति करना चाहता है, उसका गहन शोध–अध्ययन भी करता है। तदुपरान्त ही पहाड़ी स्थलों के एकान्त में जाकर वह लिखे या कहीं एकान्त में समाधि लगाये। पता नहीं, तुम्हें सन् 1977 में हुए नरसंहार–अर्थात् बिहार के बेलछी कांड का पता है या नहीं? जमींदारों के द्वारा अनुसूचित जाति के ग्यारह लोगों को बाँधकर जिन्दा जला दिया गया था। इतना ही नहीं, जलती हुई लाशों के समक्ष भोज का भी आयोजन हुआ। उस समय देश की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी थीं। इस जघन्य घटना से मेरा चित्त अशान्त हो गया था। मैं दिन–रात मानस में इसी घटना को औपन्यासिक ढाँचा देने की कोशिश करती रहती। अन्ततः दो साल बाद 1979 में 'महाभोज' का प्रकाशन हुआ।'' यह कृति भी चर्चित हुई और मन्नू जी बहुचर्चित। अगले सप्ताह मुझे दिल्ली छोड़नी थी, इसलिए दुबारा भी मैंने मन्नू जी से भेंट करने की योजना बना ली और पहुँच गयी उनके घर। ''मन्नू जी! आजकल क्या लिख रही हैं?'' मेरे पूछने पर उन्होंने कहा– ''इधर स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है शशि। चाहते हुए भी कुछ नहीं लिख पा रही हूँ। जबकि, लिखना चाहती हूँ बहुत कुछ। बहुत कुछ अधूरा है, उसे पूरा करने की तो अभिलाषा है ही; कुछ नये प्लॉट भी दिमाग में घूमते रहते हैं। मगर...'' यह वही दौर था, जब राजेन्द्र जी भी 'न लिख पाने का संकट' तीव्रता से महसूस कर रहे थे और 'हंस' में इस नये विषय पर लम्बी बहसें भी हुईं।

उस दौर में पति–पत्नी राजेन्द्र और मन्नू जी के मतभेद को लेकर साहित्य–जगत में बड़ी चर्चाएँ होतीं। सुखद यह कि मन्नू जी की गरिमामयी व्यक्तित्व का पलड़ा सदैव भारी रहता और आलोचना के केन्द्र में सदैव राजेन्द्र जी होते। लेकिन, मैंने कभी उनके अनबन का सच जानने की कोशिश नहीं की। हाँ, कुछ–कुछ उड़ती खबरें कानों तक पहुँचती रहीं। पूर्ववत् हौजखास मन्नू जी के घर का पता था और राजेन्द्र जी का आवास हो गया था मयूर विहार में। उन दोनों की सेतु बनी रहीं उनकी बेटी रचना यादव जो अब 'हंस' की उड़ान को बरकरार बनाये हुई हैं। उम्र के अन्तिम पड़ाव और बीमारी के दरम्यान राजेन्द्र जी की यही चिन्ता थी; मेरे मरणोपरान्त अक्षर प्रकाशन का क्या होगा? बहरहाल, उनके दाम्पत्य जीवन का एक सम्मोहक चित्र यहाँ जरूर खींचना चाहूँगी– दिल्ली के ऑडिटोरियम में एक साहित्यिक संगोष्ठी थी। रविवार होने के नाते मैं भी वहाँ पहुँची थी। अचानक सभागार से उठकर मन्नू जी बाहर जाने के लिए सीढ़ियों की ओर बढीं। मैं उनके पीछे होना चाहती थी; तब तक मेरी नजर पड़ी, राजेन्द्र जी छड़ी पकड़े सीढ़ियों से उतर रहे हैं और मन्नू जी के कार तक पहुँच भी जाते हैं। शायद, अगले को भी पीछे आने वाले की आहट हो गयी होगी। दोनों में दो–तीन मिनट बातें होती हैं और फिर मन्नू जी की कार आगे बढ़ जाती है। मुझे ऐसा लगा था, मानो रूठी हुई नायिका को मनाने के प्रयत्न में नायक सीना फाड़कर प्रेम प्रदर्शित कर रहा हो। तत्क्षण का पाठ यही था कि पति–पत्नी लम्बे समय तक अलग रहकर भी एक दूसरे के प्रति संवेदनशील बने रह सकते हैं। आत्मीयता के जलकण पूर्णतया कभी नहीं सूखते।

मेरा स्पष्ट कथन है कि मन्नू जी के व्यक्तित्व में कृत्रिमता का प्रवेश लेशमात्र भी नहीं था। यह विशेषता उनकी रचनाधर्मिता का भी अभिन्न हिस्सा है। विषयवस्तु की विविधता, संक्रमित होते जीवन–मूल्य और बदलते यथार्थ की अकृत्रिम प्रस्तुति के कारण ही मन्नू भंडारी के उपन्यास और कहानियाँ बहुचर्चित ही नहीं, कालजयी भी सिद्ध हुईं। यह प्रसिद्धि, उनकी भावव्यंजक रचनाशीलता, सहज संवेद्यता, सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति कौशल जैसी खूबियों का ही प्रतिफलन है। उन्हें रचना संसार में प्रविष्टि और स्वीकृति के लिए कभी संघर्ष नहीं करना पड़ा। उनकी कृतियों को आरम्भिक समय में ही स्वीकृति मिली और सराहना भी। वे सन् 1992–93 तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचन्द शोधपीठ की मानद निदेशक/अध्यक्ष थीं। उन्होंने फिल्मों के लिए पटकथा भी लिखा और बंगाली कहानियों के अनुवाद भी किये। उनकी विलक्षण प्रतिभा और उत्कृष्ट लेखन के कारण ही विश्वविद्यालयों में उन पर अनेक शोध–ग्रन्थ लिखे गये और लिखे भी जा रहे हैं। सच यही है कि स्मृतिशेष रचनाकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का ही वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन सम्भव होता है; जो जीवित हैं, विचारों की आँधी में उनके सोच–विचार में परिवर्तन सम्भाव्य है। पन्त, निराला, शमशेर बहादुर सिंह जैसे लेखक विचारों की एक खूँटी में कहाँ टँग सके। पुण्यतिथि के विशेष अवसर मन्नू जी के प्रति मेरी यही शब्दांजलि है।

सृजन, बी 31/41, ए-एस, भोगाबीर, संकटमोचन, लंका,
वाराणसी-221005 (उ.प्र.)
मो. 9936439963/8840473942

आईनाघर

ज्योत्स्ना मिलन : आसमान माँ

शम्पा शाह

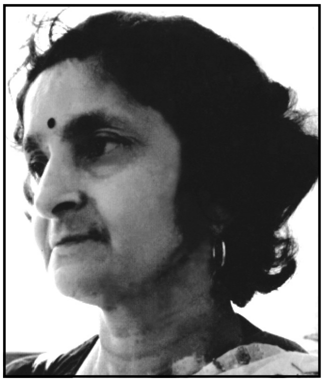

माँ को जो भी जानते थे, वे जानते हैं कि 'आसमान' एक से अधिक अर्थों में उनका पर्याय था और है। यदि उनकी मौजूदगी में कोई किसी को 'आकाश' या 'अम्बर' कहकर पुकारता तो वे जरूर पलटकर देखतीं कि क्या किसी ने उन्हें पुकारा?

लेकिन क्या दो दीवारों के बीच सिमटे महज एक छोटे-से नीले टुकड़े को आसमान कहा जा सकता है?

हम पिछले बीस वर्षों से जिस मकान में रह रहे हैं उसमें दरवाजे-खिड़कियों के बावजूद आसमान की आवाजाही कम है। आसमान का असल-असीम स्वरूप तो पेड़, पक्षियों के उसमें विस्तार पाने से ही खड़ा होता है। इस घर में नीचे बैठक की खिड़की से ही आसमान की कुछ ठीक-ठाक झलक मिलती थी। माँ की मेज के सामने की खिड़की तो सिर्फ दूसरे, लगभग सटे हुए मकान की दीवार से टकराती थी। चुनाँचे माँ हम सबकी बार-बार की नसीहतों के बावजूद बमुश्किल ही अपनी मेज पर पहुँचतीं। वे कम से कम शाम और सुबह तो बैठक में ही बिताती थीं। मैं उसे चौराहा कहती पर उनके लिए वह मकान का एकमात्र आत्मीय कोना था। बैठक में बीचों-बीच एक बड़ी-सी लोहे की जाली और काँच से मढ़ी चौकोर मेज है। उस पर अक्सर ही पत्र-पत्रिकाएँ, अखबार, चाय के कप आदि रखे मिलते। धूल और तमाम अन्य निशानों को आसानी से दर्ज करने वाला काँच अक्सर मुझे गन्दा मिलता और मेरे बेकार के सफाईपसन्द दिमाग को खिझा देता। एक बार मैंने कहा– ''माँ, इस पर मेजपोश बिछाना शुरू करते हैं, इसे सुबह-शाम साफ करने की झँझट से तो मुक्ति मिलेगी!''

वे बुरी तरह घबरा गयीं और बोलीं– ''नहीं। मैं साफ कर लिया करूँगी। इसमें पूरा आसमान मय काचनार के पेड़ के पसरा रहता है!'' अब दंग रह जाने की बारी मेरी थी। जिस ओर वे इशारा कर रही थीं वहाँ तो सचमुच मेज की जगह एक छतनार फूलों से लदे पेड़ वाला आँगन था।

मैं अपने अन्धेपन पर दंग रह गयी थी, आज भी दंग हूँ। कम से कम मेरे सन्दर्भ में यह अन्धापन– 'ब्लाइंड स्पॉट' और इससे उपजी सूक्ष्म हिंसा, जिसके चलते मैं उन्हें बार-बार मेज पर बैठने की बजाये चौराहे पर बैठे रहने का उलाहना देती थी, वो दरअसल करीबियत का नतीजा थी।

कई बार ऐसा होता है कि जो दूर-दूर से किसी को जानते हैं, वे उसके मूल स्वभाव, उसकी बनक को उसके बिल्कुल करीबी रोज साथ रहने वालों से ज्यादा बेहतर जानते हैं। करीबी जानते न हों ऐसा तो नहीं होता, पर जीवन की दिक्कत कह लीजिए या विज्ञान का नियम, बहुत पास की चीज ठीक-ठीक दिखती नहीं है– दिखकर भी वह नहीं दिखती, धुँधली बनी रहती है। विज्ञान के नियमानुसार आँख से एक विशेष दूरी पर ही चीजें फोकस में आती हैं।

लिहाजा मेरे इस अन्धेपन का कोई इलाज नहीं था।

एक खास दूरी ही उसे मिटा सकती थी, जो तब जाकर आई, जब वे उस तरह से सशरीर घर में उपस्थित नहीं हैं। यह हत्भाग, जीवन की इस विडम्बना का धुँधला ही सही, एक पूर्वाभास भी मुझे था, किन्तु हत्भाग और किसे कहते हैं– इसी को तो कि आप देखकर भी न देख पाएँ, जानकर भी कुछ कर न पाएँ?

मैं टटोलती हूँ अपने भीतर, मेरी स्मृति में उनकी पहली छवि। अल्बमों में लगे उन दिनों के छायाचित्रों के मन पर हावी होने का खतरा है, पर उन सबके बीच से सिर उठाती जो दो-तीन पहली-पहली छवियाँ हैं, उनका कोई फोटो उपलब्ध नहीं है। यानी, इन्हें मेरे मन ही कहीं दर्ज किया होगा। एक छवि

है जिसमें वे एक सफेद साड़ी को बरामदे की सीढ़ियों की मुँडेर पर रखकर पेंट कर रही हैं। बड़े से नीले-कत्थई बॉर्डर और पल्लू वाली वह सफेद साड़ी और उस पर झुकी हुईं वे। लिखने-पढ़ने के अलावा हजारों ऐसे कामों– तकिये के गिलाफ काढ़ने, अल्पना बनाने, अचार-पापड़ बनाने में भी उन्हें बहुत रस आता था। उनके पास एक मन्त्र था जो उन्हें उनके पिता से मिला था और जिस पर वे पूरी आस्था से जीवन-भर अमल करती रहीं– ''जो भी काम मन लगाकर करो, वह अच्छा ही होता है और तिस पर, उसे करते हुए थकान नहीं होती बल्कि आनन्द आता है।''

उसी दौरान की एक दूसरी छवि में वे मुझे आँगन की धूप में टब में नहला रही हैं, तभी मेरा हाथ जल गया (कैसे, यह याद नहीं) और उस पर बड़ा-सा फफोला हो गया। मुझे कटोरी में काजू और किशमिश दिये गये ताकि मेरा रोना बन्द हो जाए, तभी मेरी सहेली रोजी गुलाबी-सी फूली-फूली फ्रॉक पहने आई। माँ उसे देख खुश हुई और उसे भी कटोरी में काजू-किशमिश दिये। मुझे यह सिरे से गलत लगा। मुझे लगा था कि मेरे हाथ में फफोला हुआ, इसलिए मुझे काजू-किशमिश मिले। इस तर्क से माँ का रोजी को बिना फफोले, बिना दर्द के काजू-किशमिश देना तब सरासर गलत लगा था। मुझे काजू-किशमिश बेस्वाद लगने लगे और रोजी अपनी कटोरी साफ कर 'मौसी औल दे दो!' कह रही थी। माँ का यह समतावादी रुख बचपन में मेरे लिए कई बार भयानक ईर्ष्या का कारण बनता रहा। ये दोनों छवियाँ तब की हैं जब हम सीधी नाम की एक छोटी-सी जगह में रहते थे। मैं दो से तीन वर्ष के बीच रही होऊँगी। सीधी में मम्मी-पापा के साथ रोज शाम की लम्बी सैर पर जाना भी याद है। वह लम्बी अँधेरी सड़क पर इन दोनों का आपस में बातें करते हुए जाना, अक्सर इनमें से कोई कविता सुना रहा होता था। कविता के बीच से मुझे लगातार सियार और भेड़ियों की डरावनी हूक सुनाई देती रहती थी, जो इन दोनों के कानों तक पहुँचती ही नहीं थी। मैं अक्सर गोद में ही चढ़ी रहती, क्योंकि डर के मारे मेरा बुरा हाल रहता था। लेकिन अपने डर के बावजूद ये शाम की सैरें मुझे भी पसन्द थीं– पता नहीं क्यूँ? शायद इसलिए कि तब हम तीनों साथ होते थे।

मैं चार साल की हुई तो माँ मुझे स्कूल लेकर गयीं। मेरे सारे साथी स्कूल जाने लगे थे। स्कूल की प्रिंसिपल एक नन थीं, उन्होंने बड़े प्यार से मुझसे बातें कीं और मेज की दराज में से चॉकलेट भी निकालकर दीं और तब माँ को घर जाने का इशारा किया। माँ के हाथ छुड़ाते ही मैंने जोर-जोर से रोना शुरू कर आसमान गुँजा दिया। माँ सीढ़ियाँ उतरकर फाटक तक गयीं, पर मेरे रोने की कानफोड़ू आवाज उनके पीछे थी। वे फाटक पर ठिठकीं और खुद जोर-जोर से रोते हुए वापस लौट आईं। प्रिंसिपल ने समझाया कि सब बच्चे ऐसा ही करते हैं, पर वे नहीं मानीं और बोलीं– जब यह तैयार हो जाएगी तब फिर लेकर आऊँगी। जोर से उनका हाथ पकड़े हिचकियों के बीच स्कूल की कभी खत्म न हो रही सीढ़ियाँ उतरने वाला वह दृश्य मेरे लिए बाद में 'बैटलशिप पोटेम्किन' नामक सर्गेई आइजेनस्टाइन की बनाई फिल्म के उस प्रसिद्ध सीढ़ियाँ उतरने वाले दृश्य के साथ एकमेक हो गया। यह फिल्म भी मैंने तब देखी थी जब मैं दस बरस की थी।

सीधी में उस दिन उनके मुझे वहाँ अनजान जगह में अकेला न छोड़कर आने के लिए मैं जीवन-भर उनकी ऋणी रहूँगी। उसने मेरे अन्दर जो यह विश्वास जगाया कि माँ कभी झूठ बोलकर, बरगलाकर मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकतीं, वह भरोसा आज उनकी शरीरी अनुपस्थिति के बाद भी कायम है। बड़े अक्सर बच्चों के बारे में लगभग कुछ नहीं जानते। वे अपने हर कर्म के लिए जायज कारण ढूँढ़ लेते हैं। उनके किये के ठोस परिणाम उन्हें दिखते हैं– मसलन यह कि आखिरकार बच्चा रोना बन्द कर ही देता है, कि वह माता-पिता के झूठ को भी पचा लेता है पर इस दौरान भरोसा जो टूटता है उसकी आवाज नहीं सुनाई देती।

माँ-पापा सात साल तक सीधी में ही रहे। बाद में सोचने पर यह बात उन्हें खुद अविश्वसनीय लगती थी कि अपने सबसे सुनहरे युवा दिन उन दोनों ने वहाँ सीधी के उजाड़ में बिता दिये। माँ के लिए यह विशेष कठिन हो सकता था, क्योंकि वे मुम्बई में पल-बढ़ कर यहाँ आई थीं। मुम्बई में तब भी बहुमंजिला इमारतें, सड़कों पर भारी जनसमूह और सामान्य घरों में रसोई गैस के चूल्हे आ चुके थे, जबकि वहाँ सीधी में सड़कों पर सन्नाटा और रसोई में चूल्हा और बुरादे की धुएँदार सिगड़ी पर ही खाना पकता था। कहाँ सेंट जेवियर कॉलेज का वह खुला माहौल और कहाँ यह पिछड़ा कस्बा! पर न मेरी स्मृति में इन लोगों की कोई ऊबती, दुःखी छवि है न बाद में ही इन दिनों को लेकर इनसे कोई दुखड़ा सुना, बल्कि इन्होंने उस एकान्तवास को पढ़ने-लिखने के एक मौके की तरह ही लिया। माँ ने सीधी में रहते हुए अँग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया था। वे मौका पाते ही किताब लेकर पापा के पास पहुँच जातीं और पापा को अँग्रेजी कविता पर बोलना कितना पसन्द है यह जगजाहिर है, लिहाजा वे शुरुआती न-नुकुर के बाद शुरू होते तो फिर घंटों निकल जाते। इसीलिए मेरे कानों में इन लोगों के अँग्रेजी कविताओं के सस्वर पाठ की आधी अधूरी-सी गूँजें हैं।

कॉलोनी में ही कुछ दूरी पर एम.एस. राव रहते थे जिनके यहाँ एक रेडियो था। हर सप्ताह हम आकाशवाणी का संगीत सम्मेलन सुनने उनके यहाँ जाया करते थे। इसके अलावा हर इतवार हमारे घर पर भी संगीत की बैठक होती थी– आसपास की जगहों से जाने कैसे एक मंडली जोड़ ली गयी थी।

माँ का अपने बचपन में शास्त्रीय संगीत सुनने का कोई अभ्यास नहीं था। वे बताती थीं कि रेडियो पर शास्त्रीय गायन के शुरू होते ही नानी 'यह रोना बन्द करो' का ऑर्डर दे डालती थीं। हमारे ननिहाल पक्ष में सुर-ताल सिरे से नदारद था, पर पापा के संगीत के शौक के चलते माँ भी संगीत में भरपूर रस लेने लगी थीं। बचपन में उनके एक वाक्य ने ही मेरे भीतर भी संगीत की जादुई ताकत के प्रति कभी न मिटने वाली आस्था जगा दी थी। हुआ यह कि जब पापा का तबादला सीधी से पन्ना हो गया तब वहाँ भी हमारे घर हर इतवार को संगीत की बैठक जमने का सिलसिला जारी रहा। कोई बारह-पन्द्रह लोग इकट्ठे होते और तीन-चार घंटे का कार्यक्रम चलता। माँ मूँगफली या चिरौंजी की बर्फी बनातीं जो कार्यक्रम के बीच में थाली में घुमाई जाती थी। एक बार मुझसे पड़ोस में रहने वाले परिवार की लड़कियों ने कहा कि तुम्हारे यहाँ यह कैसा 'आ-आ' करके एक-जैसा गाना होता है, तुमको अजीब नहीं लगता? सच यह था कि मुझे संगीत की ये बैठकें बहुत पसन्द थीं और मैं लगभग पूरे समय जागकर उन्हें सुना करती थी, लेकिन न जाने क्यूँ उनकी बात सुनकर मुझे झेंप लगी और मैंने उनका वाक्य पूरा का पूरा माँ पर दे मारा। जवाब में उन्होंने मुझे बेगम अख्तर के बारे में बताया कि कैसे रात-रात-भर श्रोता मन्त्रमुग्ध हो उनकी गायी एक ही पंक्ति को सुनते बैठे रहते थे और यह भी कि विवाह के बाद जब कुछ समय बेगम अख्तर को गाने नहीं मिला तो उनके गले में न गाने के दुःख से छाले पड़ गये थे। मैं तब ले-देकर सात बरस की थी और मैंने बेगम अख्तर की उस पंक्ति के दुहराव से मन्त्रमुग्ध लोगों के रतजगे को जस-का-तस महसूस किया। मेरी सारी शंका धुल गयी। मैं बहुत देर तक अँगूठा चूसते हुए, गम्भीर सोच में डूबी माँ की गोद में बैठी रही थी।

पन्ना के वे दो ढाई वर्ष पूरे परिवार के लिए बहुत विशिष्ट थे– हम तीनों की बिल्कुल अपनी अपनी दुनिया, अनजान रास्तों पर बढ़ रही थी। मेरा दाखिला श्री अरविन्द आश्रम के स्कूल में हुआ, जहाँ हर माह 'अग्निशिखा' नामक छोटी-सी पत्रिका मिलती थी, जिसे मैं लाकर सीधे पापा को दे दिया करती थी। पापा ने पन्ना में ही श्री अरविन्द के लेखन, चिन्तन से न केवल नजदीकी पाई बल्कि एक बड़े अर्थ में उन्हें गुरुवत् भी पाया। पापा की आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने वहाँ बिल्कुल नया मोड़ लिया और वे स्वतः प्रेरणा से ही ध्यान करने लगे। वे उन दिनों घंटों, लगभग दिन-दिन-भर ध्यान में बैठे रहते थे।

हम जिस घर में रहते थे, उसके मकान मालिक के यहाँ टेलरिंग, बुक बाइडिंग, पतंग-मंजा बनाने, लुगदी की टोकरी, गुड़िया बनाने के ढेरों काम होते थे। नतीजा ये कि मुझे नीचे से ऊपर आने की फुर्सत ही नहीं होती थी। एक दिन जब मैं स्कूल से घर लौटी तो पाया कि माँ चटाई पर लेटी कोई किताब पढ़ रही हैं। खाने का समय हो चुका था पर उन्होंने उस रोज हमारे साथ खाना नहीं खाया, यह कहकर कि वे अभी किताब को नहीं छोड़ सकतीं! फिर वे कई दिनों तक इसी तरह किताबों में डूबी रहीं। यही वह दौर था जब माँ ने रूसी साहित्य विशेषकर टॉल्स्टॉय और दोस्तोयव्स्की को पढ़ा। ये उनके लिए कई लिहाज से बेहतर दिन रहे होंगे। सीधी के बाद पन्ना छोटा, लेकिन चहल-पहल-भरा कस्बा था। मैं भी अब स्कूल जाने लगी थी और मेरा मन रमाने के लिए आस-पड़ोस में ढेरों चीजें थीं। यहाँ तक कि उस दौर में हमारे यहाँ रामरती नाम की एक बहुत ही भली महिला आती थी जो माँ के कामों में हाथ बँटाती और खाना भी बनाती थी।

पन्ना के वे दिन बहुत ही सक्रिय दिन रहे होंगे। माँ ने यहाँ न केवल 'चीख के आरपार' की अधिकांश कहानियाँ लिखीं, बल्कि 'अपने साथ' नाम का पहला उपन्यास भी यहीं लिखा था। पापा के आलोचकीय लेखों का 'समानान्तर' और 'छायावाद की प्रासंगिकता' के नाम से पुस्तकाकार आने का काल भी यही है। पापा ने कहानियाँ लिखने की शुरुआत भी पन्ना में ही की थी। वे कहते हैं कि कहानी लिखने की प्रेरणा उन्हें माँ से ही मिली थी। पत्र-पत्रिकाओं में उन दिनों ये दोनों ही कुछ इतने दिखे कि पन्ना का यह पता– 'आशा टेलरिंग, टिकुरिया मोहल्ला, पन्ना' साहित्य जगत में खासा परिचित हो गया था। हमारे यहाँ रोज बहुत सारी डाक आती थी, जिस पर पूरा मोहल्ला चकित हुआ करता था।

शाम की सैर का सिलसिला यहाँ भी जारी रहा और यहाँ पहाड़-टेकरी हमारी प्रिय जगह थी– हम प्रायः रोज शाम वहाँ जाते थे। पन्ना से खजुराहो बहुत पास था और इसलिए कोई भी आता तो वहाँ का चक्कर जरूर लगता था, लेकिन पन्ना जिन हीरे की खदानों के लिए प्रसिद्ध था वह देखना अलबत्ता कभी नहीं हुआ। माँ को भी कभी हीरे-पन्ने में रुचि नहीं रही। एक सादा-सी कान की बाली के अलावा उन्होंने शायद ही कोई और गहना पहना हो, लेकिन उनकी छोटी, फुर्तीली कदकाठी, कटे हुए घुँघराले बाल और हमेशा कलफ लगी सूती हैंडलूम

साड़ियों में वे बहुत फबतीं और जहाँ से भी निकलतीं, पन्ना हो या अल्मोड़ा, बच्चे 'इन्दिरा गाँधी आ रही हैं!' चिल्लाते हुए आगे-पीछे भागते थे। पन्ना में हमारे जो मकान मालिक थे, उस परिवार के सबसे बुजुर्ग बब्बा, जो बुक बाइंडिंग का काम करते थे और नब्बे डिग्री की झुकी कमर से चलते थे, वे दो-चार महीने में जब कभी अपने बेटे-बहू से नाखुश होते तो अचानक बीच आँगन में बिल्कुल तनकर सीधे खड़े हो जाते और जोर-जोर से कहते, ''गलत बात को कर रओ, जाको फैसला तो करने पड़ेगो, इको फैसला तो इन्दिरा जी करहें, पूछ लो इन्दिरा जी से!'' इन्दिरा जी यानी माँ! वे उस पूरी शाम हँसती हुई घर के भीतर ही बने रहने में भलाई समझतीं। अल्मोड़ा के उनके ससुराल घर में भी माँ की परिवार जनों के बीच कुछ ऐसी ही साख थी। इसमें उनका इन्दिरा जी से साम्य रखना अहम नहीं था, बल्कि उनका बिना लाग-लपेट के सच कह पाना, सच के पक्ष में सहज ही खड़े हो पाना था। सब जानते थे कि वे वही बोलेंगी जो उन्हें सही लगेगा फिर वह चाहे दूसरे के लिए कितनी ही असुविधाजनक स्थिति क्यों न खड़ी कर दे! उनकी यह आदत हम लोगों को अक्सर भारी पड़ती। हम अक्सर झींकते रहते कि ये सच-वच का मामला नहीं है माँ, आखिर हर बात को बोलने के पहले समय, स्थान, अगले की मनःस्थिति, मंशा हजारों चीजें ध्यान रखनी होती हैं! पर वह अपना 'सत्य-आग्रह' जारी रखतीं। हम झेंपते, झींकते थे लेकिन अक्सर पाते कि लोग उनकी बात का प्रायः बुरा नहीं मानते थे, बल्कि उनसे उनके सम्बन्ध अन्ततः कुछ और प्रगाढ़ ही हो जाते थे। इसका कारण शायद यह था कि यह सबको स्पष्ट होता कि बात के गलत लगने पर वे उसे गलत ही कहेंगी, फिर वह चाहे उनके पिता, पति, बच्चों या फिर किसी बड़े अधिकारी की कही बात ही क्यों न हो। यानी रिश्ता, प्रगाढ़ता, शक्ति समीकरण, बात के आड़े न आएँगे।

किसी भी तरह के ज्ञान या प्रेम आदि को बाँटने में भी वे इसी निष्पक्षता की कायल थीं। पन्ना से भोपाल आने पर पापा की सह-अध्यापिका के कहने से मेरा दाखिला उनके पड़ोस के घर में एक कमरे में चलने वाले स्कूल में करा दिया गया। उन महिला की बेटियाँ कॉन्वेंट में पढ़ती थीं और उन्होंने मेरा दाखिला इस स्कूल में करने की सलाह यह कह कर दी थी कि गाँव के छोटे स्कूल से आकर मुझे किसी अच्छे अँग्रेजी माध्यम स्कूल में बहुत मुश्किल होगी। मेरे लिए यह न सिर्फ मेरा, बल्कि मेरे पन्ना के स्कूल का अपमान था जो सचमुच बहुत अच्छा स्कूल था। वह एक कमरे में चलने वाला स्कूल मेरे लिए चार्ल्स डिकेन्स के उपन्यासों के भयावह स्कूलों जैसा था, किन्तु उस स्कूल में मार खाने से भी ज्यादा भयानक मेरे लिए माँ का उस महिला की बेटियों को आये दिन कढ़ाई के तरह-तरह के नमूने सिखाना था। वे लड़कियाँ जब भी आतीं, मैं घर से भाग जाया करती थी। दो-एक बार तो मैंने विरोध में खाना भी नहीं खाया, पर माँ ने उन्हें सिखाना बन्द नहीं किया। माँ अपनी जगह सही थीं पर मेरे लिए उनका यह निष्पक्ष भाव पचाना तब कितना भारी था, बता नहीं सकती। छुट्टियों में भी जब हम मुम्बई या अल्मोड़ा जाते तो वे उन बड़े परिवारों में अपने को इस कदर बराबरी से बाँटतीं कि मेरे हिस्से लगभग कुछ न पड़ता। मेरी आँखें रो-रोकर लाल हो जातीं, पर उन्हें इस बात का इल्हाम तक न होता कि मेरे इस दुःख में उनका भी हाथ हो सकता है! बाद के सालों में जब कभी मैंने इन बातों का जिक्र किया तो वे हक्की-बक्की रह जातीं और कहतीं— तुमने साफ-साफ बताया क्यों नहीं? बहरहाल ये सब मेरे बहुत छुटपन की बातें हैं। मैं जल्द ही अपने इस टीसते फोड़े वाले ईर्ष्यालु स्वभाव से उबर गयी, बल्कि अपने परिवार वालों के बीच खासी दरियादिल और समझदार मानी जाने लगी!

पन्ना छोड़ना मेरे लिए बहुत कष्टकारी था। बस में बैठकर पन्ना की छूटती सड़कें, मकान मुझे आज भी याद हैं। हम भोपाल पहुँचकर मय सामान (हालाँकि आठ-नौ साल की इनकी कुल गृहस्थी मय किताबों, रसोई के सामान के साथ सिर्फ पाँच छोटे बक्सों में आ गयी थी) के रश्मि मौसी-अशोक काका के घर पहुँचे। कैसा समय था, आज ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। थोड़ी देर में अशोक काका मिठाई का डिब्बा लेकर आये, उसी दिन उनकी बिटिया दूबी का जन्म जो हुआ था! भोपाल आने के बाद जीवन में बहुत सारे बदलाव आये। कस्बे के स्कूल और समाज में जो घरोपा था, वह यहाँ सिरे से नदारद था। बच्चे भी सिर्फ शाम के समय खेलने निकलते थे, जबकि वहाँ हर समय खेलने का होता था।

फिर एक दिन माँ ने एक छोटा-सा नीला झबला सीया और मुझसे उसमें कढ़ाई करने को कहा। उस पर बखिया या स्टेम स्टिच से मैंने दो पेड़ और तारे-नुमा फूल काढ़े थे। माँ ने बताया, घर में एक नये, छोटे से मेहमान आने वाले हैं। मैंने कुछ झेंपकर, लेकिन बेहद उमंग के साथ यह खबर अपने दोस्तों को दी और गर्व से झबला भी दिखाया था। माँ फिर तीन-चार महीनों के लिए मुम्बई चली गयी थीं। वे कठिन दिन थे, पर पापा के साथ सिगड़ी जलाने, रोटी बनाने में मजा भी आता था। बाद में दादी ने आकर सबकुछ सँभाल लिया था। इसके बाद एक खासा लम्बा दौर बहन राजुला की तबीयत खराब रहने और पापा की आँखों में भयानक दर्द रहने का रहा। दिन दुश्चिन्ताओं से भरे

रहते। मुझे हर पल कुछ बुरा हो जाने का खटका लगा रहता, लेकिन यही वह दौर भी था जब किताबों की ओर मेरा मुड़ना हुआ। माँ के साथ कागज की लुगदी, चूड़ी के टुकड़ों से, रंगीन कागज से चीजें बनाईं और घर के प्रति जिम्मेदार बनी।

भोपाल आकर संगीत की बैठकों की जरूरत खत्म हो गयी। उनकी जगह कला परिषद, रवीन्द्र भवन और बाद में भारत भवन में नियमित रूप से होने वाले कार्यक्रमों ने ले ली, जिसमें बड़े-बड़े चित्रकारों की प्रदर्शनियाँ, संगीत के कार्यक्रम, नाटक, फिल्में, साहित्यिक गोष्ठियाँ आदि होतीं। मेरी बहन एक साल की होगी और मैं आठ साल की, तभी से हम दोनों की भी शहर के लगभग सभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उपस्थिति रही हैं। बहन सोकर उठ जाती तब भी कुमार गन्धर्व या मल्लिकार्जुन मंसूर गा रहे होते। बहुत से लोगों को हम बच्चों के साथ यह अन्याय लगता, लेकिन हमें सचमुच सभी कार्यक्रमों में जाना अच्छा लगता था। बात यह थी कि माँ की इस दलील के आगे कि 'वे भी एक लेखक हैं, कि उन्हें भी संगीत, नाटक, अच्छे लगते हैं और वे घर पर बच्चों को सँभालती अकेली क्यों रहें' के आगे पापा कहते भी क्या? यह दलील ठोस थी और इसमें दम था। माँ-पापा के दाम्पत्य में यह दलील बहुत पहले सीधी के दिनों में ही सिर उठा चुकी थी। सीधी के सुनसान के बीच कभी-कभार पापा इलाहबाद जाकर साहित्यकारों से मिलने की इच्छा जाहिर करते तो स्वाभाविक ही था कि माँ कहतीं कि मैं भी कवि हूँ, मैं भी साही जी, रघुवंश जी, श्रीपतराय जी, नरेश जी, रघुवीर जी से मिलूँगी। अपनी स्वतन्त्रता का इस तरह छिनना और हर जगह दो साल की बच्ची और पत्नी को लेकर पहुँचना पापा को अखरता तो था, लेकिन इस दलील के सत्य से मुँह भी तो नहीं मोड़ा जा सकता था! आखिर उस प्रेयसी को उन्हीं ने चुना था और उससे भी पहले उसकी कविता को चुना था! (धर्मयुग के एक अंक में इन दोनों की कविताएँ मय तस्वीर और पते के छपी थीं, जहाँ से इनकी मित्रता हुई और परवान चढ़ी), इसलिए उन्होंने इसे पूरी तरह स्वीकार भी किया। हम जहाँ भी गये, सपरिवार ही गये, लेकिन साहित्यिक कार्यक्रमों में जहाँ पापा को ही बुलाया गया हो वहाँ माँ महज पत्नी बनकर साथ नहीं जाती थीं। घर-परिवार में पत्नी होना पर्याप्त हो सकता है, लेकिन साहित्यिक कार्यक्रमों में तो वजूद कुछ और है।

एक शाम माँ बेहद घबराया-सा मुँह लिये पड़ोसी के घर से लौटीं। उनसे न कुछ कहते बन रहा था और न छुपाते। बोलीं, ''मिसेज जैन के यहाँ एक स्वामीजी आये हैं। वे लोगों का चेहरा पढ़ सकते हैं। उन्होंने बताया कि मेरे जीवन में एक मोड़ आने वाला है और मैं अब तक जो करती आई हूँ, वह छूट जाएगा। फिर मैं कुछ और करूँगी।'' वे जो कुछ करना जानती थीं उन्होंने उसकी सूची बनायी और फिर अचानक निष्कर्ष पर पहुँचते हुए बोलीं– ''इसका मतलब है, अब मैं कविता नहीं लिख पाऊँगी!'' पापा ने उस अनजान स्वामी को खूब खरी-खोटी सुनाई और माँ को भी ऐसी बेसिर-पैर की बातों के लिए खूब लताड़ा।

बहरहाल, जो कुछ माँ करती आ रही थीं उनमें से तो कभी कुछ नहीं छूटा पर हाँ, उसी साल उनके जीवन में एक अहम अध्याय अवश्य जुड़ गया। किसी निमित्त उनका मिलना अप्रतिम गाँधीवादी चिन्तक, कार्यकर्ता और स्वाश्रयी महिला सेवा संघ (सेवा) की संस्थापक इला भट्ट से हुआ। पहली ही मुलाकात में उन्होंने माँ को सेवा के मुखपत्र 'अनसूया' को हिन्दी में सम्पादित करने का प्रस्ताव रखा और राजी भी कर लिया। इन दो व्यक्तित्ववान स्त्रियों का परस्पर आदर और प्रेम से ओतप्रोत साहचर्य, जिसमें लगातार विचारों का आदान-प्रदान होता हो, जीवन-पर्यन्त रहा। सितम्बर 1982 से अप्रैल 2014 तक माँ 'अनसूया' का सम्पादन करती रहीं। देश की अधिसंख्य असंगठित कामगार स्त्रियों के संसार से जुड़ाव ने उनके अनुभव-संसार को व्यापकता और गहराई दोनों दी। 'अनसूया' आज भी नियमित रूप से निकल रही है जिसका सम्पादन कार्य माँ के जाने के बाद उनकी कर्मठ सहयोगी प्रीति शान्त उतने ही मनोयोग से कर

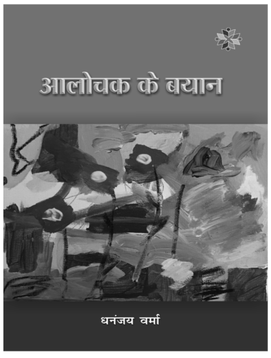

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आलोचक के बयान

साक्षात्कार

धनंजय वर्मा

मूल्य 350 रु.

प्रख्यात आलोचक प्रोफेसर (डॉ.) धनंजय वर्मा अपने व्यापक अध्ययन और स्वतन्त्र विचार-चिन्तन, तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि और तलस्पर्शी विश्लेषण, निर्भीक वक्तव्य और बेलाग साफगोई के लिए चर्चित और रुसवाई की हद तक विवादास्पद हैं।

उनके साक्षात्कारों, भेंटवार्ताओं, अन्तरंग बातचीत और सार्थक संवादों की एक पुस्तक 'आलोचक का अन्तरंग' पहले प्रकाशित और चर्चित हो चुकी है। आईसेक्ट पब्लिकेशन अब प्रस्तुत करता है वर्ष 2005 से लेकर 2019 तक उनके इक्कीस साक्षात्कारों, वार्ताओं और संवादों के साथ एक परिचर्चा का यह संकलन– 'आलोचक के बयान'।

रही हैं। 'अनसूया' के सम्पादन कार्य ने माँ को कुछ घंटों के लिए ही सही, घर से बेहद जरूरी मोहलत भी मिलती थी। 'अनसूया' कार्यालय उनके लिए वह जगह थी जहाँ उन पर घरेलू जिम्मेदारियों का बोझ नहीं था। वे अक्सर अपने मित्रों को भी वहीं मिलने बुला पाती थीं।

दूसरे लोग जो भी सोचते-मानते हों, पर इन दो स्वतन्त्रचेता व्यक्तित्वों के साथ होने, उनके एक-दूसरे के साथ सम्पूर्ण साझा करने, यहाँ तक कि उनकी टकराहटों से भी हम दो बहनों को अनजाने ही फायदा होता रहा। दोनों के मित्र यदि शल्य जी, निर्मल जी, सक्सेरिया जी, नवीन सागर होंगे तो हमारा भी उनसे नाता खास ही होगा, यह सम्भावना बढ़ जाती है। दोनों को हिम्मत शाह को काम करते देखना होगा तो हम दोनों भी देखने से कैसे बचते?

यह मुश्किल होता है कि दो लोग इतने लम्बे समय तक साथ रहें, वे सबकुछ का साझा करते हों, एक-दूसरे के पहले और सच्चे पाठक हों, एक-दूसरे के लेखन को पसन्द करते हों और फिर भी उनकी अपनी लेखनी नितान्त भिन्न बनी रहे। क्या शैली, क्या भाषा, क्या कथ्य, इन दोनों की कविताएँ, उपन्यास, कहानियाँ सब एक-दूसरे से नितान्त जुदा स्वभाव की हैं। स्वातन्त्र्य और खुलेपन के साथ एक गहरे साह्चर्य व जिम्मेदारी का भाव घर में जगाये रहना मेरी नजर में इन दोनों के दाम्पत्य की बहुत बड़ी सफलता है जिसका श्रेय भी दोनों को बराबरी से जाता है। जिस हमसफर, जिस आइडियल साथी, जिस औदार्य की इस रिश्ते में कल्पना और चाह रहती है वह यहाँ भी दोनों के लिए ही पूरी नहीं हुई, इसका पता हमें बहुत बाद में यदाकदा इनके साहित्य और इनकी बातों से चला, लेकिन मेरे अनुभव में यह थोड़ा कठिन सही, पर भरापूरा और सचमुच का साथ था। आपको कुछ लिखते ही अपने साथी को सुनाने की इच्छा हो और उसकी राय की इतनी अहमियत हो, इससे अच्छा साझा और क्या हो सकता है? जब माँ और हम छुट्टियों में मुम्बई और पापा अल्मोड़ा गये होते, नानी मजाक-मजाक में उलाहना देते हुए कहतीं– इसे तो जब देखो यह या तो रमेश का पत्र पढ़ रही होती है या उसे पत्र लिख रही होती है! माँ बताती थीं कि विवाह पूर्व भी पापा के इतने लम्बे पत्र आते थे कि उन्हें घर में पढ़ने का तो समय ही नहीं मिलता था। वह तो शुक्र मनाओ कि विले पार्ले से कॉलेज के लिए चर्च गेट पहुँचने में लोकल ट्रेन पूरा एक घंटा लेती थी, वर्ना कहो ये पत्र कभी पूरे पढ़े ही न जाते। गाँधीजी के बाद यदि पत्र विधा को किसी ने सचमुच निचोड़ा है तो इन दोनों ने! न सिर्फ एक-दूसरे को बल्कि अपने सारे भाई-बहनों, रिश्तेदारों और दोस्तों से इन लोगों ने पत्र के माध्यम से सम्बन्धों को जीवन्त और एक जरूरी संवाद को निरन्तर कायम रखा। अन्तिम दिनों में माँ पुराने पत्रों को देखते हुए कह रही थीं– ''बाप रे! कितने पत्र, कितने लोगों को लिखे, किताबें पढ़ने की जगह भी मैंने समझो पत्र ही लिखे।''

बहुत-से लोगों के मन में उनकी छवि सदैव ख्याल रखने, चिन्ता करने, खिलाने-पिलाने को तत्पर मातृभाव से ओतप्रोत स्त्री की है। यह गलत नहीं है किन्तु सही भी नहीं है। वे यह सबकुछ लगभग अपने से जुड़े सब लोगों के लिए करती थीं, किन्तु मातृभाव से नहीं, मित्रभाव से। उन्हें सदा मित्रता की चाह रही, फिर चाहे वे हमवयस्क हों, बुजुर्ग हों या बच्चे। हमारे दोस्तों में उनकी सच्ची दिलचस्पी रहती, बच्चों के या पति के मित्र हैं इस नाते नहीं, बल्कि उन्हें अपना मित्र बनाने के लिए और कितनी ही बार ऐसा हुआ भी कि हमारे मित्रों की हमसे भी अधिक उनसे अन्तरंगता बन गयी।

यह उन्हीं का माद्दा था कि अज्ञेय जी से कह दें, ''मुझे अपने जन्मदिन पर इस बार आपकी आवाज में आपकी कविताएँ चाहिए!'' या अशोक सक्सेरिया जी को रात साढ़े दस बजे कुछ सुनाने की गरज से फोन लगा दें। सबका ख्याल रखना, बड़ा होना तो उन पर लगभग थुपा हुआ था– दोनों तरफ के परिवार में वे सबसे बड़ी और सम्मानित थीं। समाज और उसकी आपसे अपेक्षाएँ आपके अपनी तरह से होने में खासे बाधक हो सकते हैं। कोई बिरला ही नवीन सागर या दयाकृष्ण होता है जिसकी पहुँच आपके असल, बेफिक्र, खिलन्दड़े स्वरूप तक होती है और जो आपके लिए वैसा ही हो पाने, रह पाने की स्पेस रचता है। जिम्मेदार तो वे थीं, लेकिन चाहती तो अलमस्त, बेफिक्र होना थीं। कुकर की सीटी, सुबह नल की खड़खड़ाहट उन्होंने हमेशा सुनी पर चाहती तो यही थीं कि न सुनाई दे। यह भी कहा जा सकता है कि सीढ़ियाँ फलाँगतीं, आसमान में कुलाँचे भरतीं 'अस्तु' रची ही न जाती, यदि असल जीवन में वह आजादी जी ली गयी होती। यह बात सच हो सकती है किन्तु तब प्रश्न उठता है कि जीवन बड़ा या कला? जीवन पहले या कला? यह अस्तु की तर्ज पर उगा प्रश्न है, इसका जवाब अब आजी (माँ के उपन्यास 'अ अस्तु का' की नायिका अस्तु की दादी) से या शल्य जी, या दया जी से तो पूछा नहीं जा सकता। वे लोग यदि होते तो वे हू-ब-हू आजी की तर्ज पर कहते, ''धत्त तेरे की! इत्ती-सी बात?''

मो. 09424440575

❑

दसकविताएँ

नीलेश रघुवंशी

इस लोकतन्त्र में

मैं जीना चाहती हूँ
लेकिन
वैसे नहीं जैसे तुम चाहते हो

मैं पेड़ को पेड़ कहना चाहती हूँ
उसके हरेपन और नये पत्तों में
खिल जाना चाहती हूँ
तुम उसके इतिहास में जाकर कहते हो
ये हमारे मूल का नहीं
तुम पेड़ की मूल प्रजाति में विश्वास करते हो
मुझे पेड़ के संग हरियाने से रोकते हो।

जिस दिन गिलहरी ने
अपना घोंसला बनाया पेड़ में
उस दिन से मेरा मन पेड़ के भीतर रहने लगा
गिलहरी कहीं भी किसी भी जगह गाँव देश परदेश में
बना सकती है किसी भी पेड़ पर अपना घर
एक गिलहरी दूसरी गिलहरी से
कभी नहीं पूछती– तुम्हारा पूरा नाम क्या है?

मैं नदी-सा बहता जीवन जीना चाहती हूँ
तुम हो कि नदी को घाट से पाट देना चाहते हो
वाल्मिकी घाट पर खड़े हो झाँकती हूँ नदी में
तुमने नदी को नदी से पाट दिया।

किसी एक को राष्ट्रीय बग्गी में सुशोभित करते हो
लेकिन
हम सतरंगी सपनों के संग घोड़ी पर भी नहीं बैठ सकते
तुमने हमसे हमारे द्वीप छीने
सारा नमक ले लिया और सबसे ज्यादा
खारेपन की उम्मीद हमीं से करते हो।

देश का संविधान कहता है
हमें वोट देने का अधिकार है
तुम कहोगे लोकतन्त्र में ऐसा ही होता है
मैं कहती हूँ
जब नदी को नदी, पेड़ को पेड़ और
अँधेरे को अँधेरा नहीं कह सकते तो
इस लोकतन्त्र में
किससे कहूँ अपने मन की बात।

मो. 9826701393

आभा बोधिसत्व

दुनिया सुन्दर है

दुनिया सुन्दर है। दुनिया सुन्दर रहेगी।
प्रेम जो छुप कर था वह भी अच्छा था
प्रेम जो खुली किताब है वह भी अच्छा है
प्रेम को अनेक शक्लों में देखना अच्छा लगता है

इसलिए भी कि है तो प्रेम ही
दुनिया को सुन्दर बनाने का एक मात्र सबक

जैसे आटे से रोटी
जैसे आटे से हलवा

या पेट पूजा विधान

जैसे अहिंसा महात्मा का

प्रेम पूजा है, करना चाहिए
मूर्ति पूजा हो न हो
हर युग इस तरह सुन्दर होगा
हर युग इस तरह शालीन होगा

मो. 9820198233

विनीता चौबे

गृहस्थी

आज बैठी हूँ
अपनी माँ और माँ–समान सास की
गृहस्थी के बर्तन बिखेरे
अपने चारों ओर

उन दोनों के जाने के बाद
बहुत दिनों तक
सँजोये रही उनकी इन यादों को

आज जब अपनी साँझबेला आयी,
तो लगा कि रफा–दफा करना चाहिए
उनके इन बर्तनों को
उनकी इस गृहस्थी को

पर हिम्मत नहीं पड़ रही
इन बर्तनों के साथ कुछ करने की
सुना है कि बहुत से लोग
अपने जाने की तैयारी
आजकल करने लगे हैं खुद ही।
कि अपने जाने के बाद
कबाड़ नहीं दिखना चाहिए अपने घर में।

घर में बच्चे–बड़े सब कहते
इनसे मोह मत करो,
ये क्या मोह करने की चीजें हैं!
बाँट दो इनको इधर–उधर
या इन्हें बेचकर
लो अच्छे उपयोग के नये बर्तन।

आप सब कहते हैं कि मनुष्य की स्मृतियाँ
तो उसके दिमाग और मन में बसी रहती हैं
पर जब स्मृतियाँ बोलने लगें
तो आप ही बताइये–
इन स्मृतियों का क्या किया जाए?

इन बड़ी–बड़ी कड़ाहियों में
जिनमें तली गयीं पूरियाँ, कचौड़ियाँ और गरमा–गरम पकौड़े
जिनमें बच्चों के जन्मदिन, राखी, होली और दीवाली पर
बनायी गयीं गुझियाँ और पपड़ी
काँसों के सुन्दर नक्काशीदार थालों और कटोरों में
अनेक मनुहार के साथ
परोसा गया मेवेदार गरम
दूध और खीर
इन बड़े–बड़े पीतल के भगोनों में बनती थीं
अपने पूर्वजों को याद करते हुए
श्राद्ध की रबड़ी–जैसी खीर
जब भरी गृहस्थी में
ये बर्तन भी कम पड़ जाते थे
कब साइज–दर–साइज
ये बढ़ते चले गये, पता ही नहीं चला
कैसे हटा दूँ इन्हें अपने घर से?

पूजा के लोटे, झारी, तरह–तरह के साँचे
छोटी–बड़ी पीतल की बाल्टियाँ
ये सब तो मेरे जीवन का हिस्सा हैं
मेरा सकल–संसार बसता है इनमें
जीवन्त हो उठते हैं वे सभी अवसर
मुझसे बातचीत करते
अपने पूरे स्वाद, खुशबू और रिश्तों की गर्माहट लिये हुए

आ जाती हैं मेरे सामने
मेरी माँ और सास की परोसी सुगढ़ थाली
आ जाता है मुँह में उनके हाथों का स्वाद
जो अनेक कोशिशों के बाद भी
मेरे हाथों में नहीं आया आज तक

क्या करूँ, कैसे करूँ, मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा
घिरी बैठी हूँ मैं इन बेजान बर्तनों से
यदि मैं देती हूँ इन्हें
अपनी कामवाली बाइयों को
तो वे कौन रखेंगी इनको अपने घर में
शायद औने–पौने दामों में इन्हें बेच डालेंगी
या क्या पता उनका शराबी–कबाबी पति ही
बेच कर, कर ले अपना जुगाड़!

बाजार में जाकर इनके बदले
कोई नया–सा बर्तन लेने की
मेरी तो हिम्मत नहीं

अब आप सब उपदेश देंगे

कि गृहस्थी के मोह में
ज्यादा न पड़ो
कुछ विरक्ति के भाव से रहो इसमें

पर आप ही बताइये–
बिना मोह के
कहीं चल सकता है
गृहस्थी का घर-संसार!

मो. 9977922506

मालिनी गौतम

बदलते मौसम

मौसम तेजी से बदलता जा रहा है
सुबह की ठंडी हवा
मन को घड़ी-भर राहत देकर
जा छुपती है पेड़ों पर टँगे स्तब्ध पत्तों के पीछे
और मन जलते-पिघलते नदी हुआ जाता है
इन नामुराद पत्तों के खड़कने हिलने-डोलने
और कुछ बोलने के इन्तजार में

मैं अक्सर मापती हूँ
मन के बदलने की गति को
मौसम के बदलने की गति से
मौसम इशारे तो देते हैं कम से कम अपने बदलने का
पर ये कमबख्त मन तो कब बदल जाते हैं
पता ही नहीं चलता

घाट का पानी यकायक सूख जाए
और आप मछली-सा तड़पने लगो
नदी के पीछे-पीछे दौड़ो उसे पकड़ने के लिए
और मुट्ठी खोलकर देखो तो
हाथ नमक से भरे होते हैं

अपनी मुट्ठी के नमक को
सहेजकर रख लेती हूँ अब
हर याद मीठी ही हो, जरूरी तो नहीं

शाम साढ़े छह बजे भी घूमने निकलो
तो सूरज की तेज रोशनी
आँखों में इस तरह झाँकती है
मानों पल-भर में
आँखों के सब राज खोल देगी

सोसाइटी के पीछे वाले मैदान में
फिर बंजारों ने तम्बू गाड़े हैं
दो-चार दिनों में ही
मौन का नाता बन जाता है हमारे बीच
साँझ के वक्त वे साँवली दुबली-पतली औरतें
अपने माथे पर रखे
बड़े-बड़े मटकों के छलकते पानी में भीगते-भीगते
सँभलते-सँभलते कदम उठाती हैं
और मैं अपने मन में पिघलती नदी के आवेग को
सँभालते-सँभालते
काली सड़क पर दौड़ लगाती हूँ

अक्सर ठिठककर सोचती हूँ
मैं नदी में बह रही हूँ
या नदी मुझमें?

इन दिनों सेमल ने अपना रेशम उड़ाया है जी भरकर
पत्ते-फूल सबसे बिछड़ने के बाद
रेशम हुआ है सेमल
सब खोकर भी भरा-भरा होना
शायद इसे ही कहते हैं

मेरा मन भी तो सबकुछ क्षिप्रा में तिरोहित करके भी
बरसों से भरा-भरा है
मैं चुपके से मुट्ठी खोलकर
उसमें से झरते नमक को देखती हूँ
और तभी खिजड़ी के झाड़ के नीचे लेटे
पगले अर्जुन के रेडियो पर
गीत की स्वरलहरियाँ फूटती हैं
जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला...

मो. 9427078711

आरती

कैलेंडर में कोई तारीख

दो छोटे-छोटे हाथ भरपूर थे गले लगाने के लिए
वे दो हथेलियां दर्द में हाथ फेरती
तो क्रोसिन और डिस्प्रिन खाने की जरूरत कम हो जाती
वे दो छोटे कदम साथ-साथ चलते
और दूरी महसूस नहीं होने दी
उन्हीं दो आँखों ने अपनी चमक देकर कहा,
देखो वो रही हमारी मंजिल

मैंने अपनी दुविधाएँ जताईं, थकी-हारी रुकी बार-बार लड़खड़ाई
और कहा कि बस,
अब नहीं चला जाता, पैरों में जान नहीं बिल्कुल भी
उसने हिम्मत दी, कहा- थोड़ा आराम कर लो, फिर चलेंगे

उन गुलाबी होठों ने कोई शिकायत नहीं की कभी
कुछ माँगा तो ऐसे जैसे कैलेंडर में कोई तारीख टटोल रहा हो
मेरी नराजगियों का अनशन तोड़ देती थीं वे मुस्कुराहटें

आज फिर पिछले सालों की तरह का ही एक सुनसान पहर है
जिसके आईने के सामने मैं चाय का कप हाथ में लिए पिछले
इक्कीस सालों को तुम्हारी उम्र की तरह गुजरते देख रही हूँ
चाय ठंडी हो रही
मेरे इंतजार की तरह
आईने के पीछे रखी कोई धुन धीरे-धीरे कराह रही है
और फैल रही है मेरे भीतर
मेरा मन पूरी झनझनाहट के साथ बजने को तड़प रहा
मैं तेज-तेज तुम्हारी याद को गाना चाहती हूँ
कुछ ऐसे
कि 'अब आ जाओ, इन चार सालों में
दिन के कितने गट्ठर गुजर चुके
कि साइबेरियन सारस कई-कई बार हो आए अपने देश'
मैं अपनी धुनों, शब्दों से खुद ही डर जाती हूँ
और अपने दिल के वाद्य पर जोर से हाथ मारकर
उसे चुप करा देती हूँ
कि तभी नीचे वाले फ्लैट में कोई बच्चा
नींद से जागकर तेज-तेज रोने लगता है।

मो. 9713035330

प्रिया वर्मा

तथाकथित प्रेम

तो तुम्हीं से तय किया गया है प्रेम!
जैसे तय किया गया है यह नाम
बुलकार कर
'हाँ-हाँ', 'ठीक-ठीक', 'अच्छा-अच्छा' के लिए

जोड़ियाँ स्वर्ग में बनती हैं
और स्वर्ग? ...लापता है।
इसलिए देवदूत के हाथों से
हम नर्क में मिलवाये गये
प्रेम के लिए : एक एडम ईव के लिए
एक ईव एडम के लिए
खोजते बीनते, जानते जनाते
चिराग का जिन्न पूछ लेता अगर-
हुक्म मेरे आका?
कहते- किसी को खोज लाओ

याद करो जरा
हमें खोजना भी नहीं पड़ा
तश्तरी में रखकर मिलवा दिए गए
कहो हाँ-हाँ, कहो अच्छा-अच्छा
और अच्छे का मानो एहसान
करो इन्तजार, ठहरो
लगेंगे कुछ साल
जल्द ही करेंगे हम प्रेम
साथ-साथ रहते
परिवार बन जाने से
बन जाएगी जान पहचान

समझाया गया कि
एक बिन्दु पर आकर मिल जाएगा
सब, जो भी है अलग-अलग
तुम से दूजी मैं
मेरे साझे तुम-
इस बँटवारे में
दोनों बौखला गए
और इतना तो जाना कि
यह आरोप प्रेम नहीं है
यह नहीं जाना कि
जो हमारे पास का सबसे मूल्यवान है
हम साथ मिलकर उसे खराब करेंगे
तो अब हम खराब कर रहे थे
अब तक खराब कर रहे हैं।

ऊपर लिखी चार लाइनों में प्रेम है।
हमारे बीच
चार दिन के
तथाकथित प्रेम की तरह।

मो. 9453388383

माधुरी

मुझ पर

ओले गिरे नहीं थे छत पर
सड़क पर
मन्दिर पर
मस्जिद पर
खेत पर
फसल पर
गिरे थे अरमानों पर
बटाई पर लेकर खेत, किसी ने बोये थे तरबूज
गेहूँ
जीरा
अफीम
सरसों
चना
और ख्वाब, पर...
सबके सब मर गये थे
जिनमें बची थी कुछ जान वे बारिश में
भीग गये थे
बह गये थे
टूट गये थे
झड़ गये थे, मगर
वह फटी ओढ़नी से पोंछती आँखें
बता रही थी
भर्रा रही थी
घबरा रही थी
रुक रही थी
रो रही थी
और उसके आँसू गिरे थे मुझ पर।

मो. 9782376112

पन्ना त्रिवेदी

समय से दूर

हाँ, यह सच है
कि मैं मुझसे दूर जाना चाहती हूँ
मुझको कुछ दिन कहीं छोड़ आना चाहती हूँ
जैसे
निर्जन पथ पर खड़ा एक अकेला वृक्ष
चलना चाहता है कुछ देर अकेला
अपनी जड़ों को वहीं छोड़कर...

जैसे
रात के घने सन्नाटे में
एक अँधेरा भाग जाना चाहता हो
अपने भीतर के अँधेरे से कहीं दूर... बहुत दूर

जैसे
चाँद समूचा आसमान छोड़
छुप जाना चाहता हो
धरती के किसी खँडहर में कुछ रात

कुछ दिन
कुछ समय
मैं भी दूर जाना चाहती हूँ
समय से बहुत दूर...

कुछ दिन
कितने दिन होते हैं?

मो. 9409565005

वन्दना मिश्र

एक छोटी-सी तस्वीर

एक छोटी-सी तस्वीर
गिरी
बॉक्स साफ करते हुए
जिसे भतीजे की बेटी
बाबा कहते हुए ले भागी
बच्चे की तस्वीर मान
पिताजी ने बताया हँसते हुए हमसे
माँ है तुम्हारी।
तस्वीर में माँ दो चोटी किये
मासूम गुड़िया-सी है
पर होंठों पर वही रहस्यमयी मुस्कान
जो जब तब देखते थे
उसके होंठों पर।
माँ चली गयी आठ वर्ष पहले
और जाने से पहले दे गयी

भैया को अपना माथा
साफ झील-सी गहरी आँखें बड़ी दीदी को
और कमर तक लहराते काले घने बाल
मँझली दीदी को।
हममें से कई को सन्तोष करना पड़ा सिर्फ
माँ की झलक से
बेईमानी इतनी कि मरने के कई बरस बाद
भतीजे की बेटी को दिया
मोती-से जड़े सफेद
दाँतों की सौगात
हम सबके बच्चों को
नजरअन्दाज करते हुए।
ईर्ष्या से भरे हम इन्तजार करते हैं
उनकी-सी तिरछी मुस्कान
अपने किसी बच्चे में
जाने कबसे सहेजकर रखी थी
पिता ने माँ की यह तस्वीर
जैसे माँ के बचपन पर
सिर्फ उनका हक था।

चित्रा पंवार

प्रेमियों के घर नहीं होते

जब प्रेमी जोड़ा किसी कैफे या रेस्तराँ में बैठकर बातें करता
लड़का टेबुल पर थोड़ा-सा झुककर
लड़की के हाथों को स्नेह या भरोसा देने की चाह में थाम लेता
अचानक आसपास बिखरी सैकड़ों आँखें
उन गुँथे हुए हाथों की दरारों में आकर समा जातीं
मानो जाम हुए ताले को खोलने के लिए
मैदान में आ डटे हों सैंकड़ों चाबी के गुच्छे
पार्क की एकान्तता में जब प्रेमिका
प्रेमी के कन्धे पर सिर रखकर आँखें मूँद लेती
पल-भर में ही वह शान्त स्थान भीड़ के शोर से भर जाता
लड़की रूआँसी हो उठती
क्या ऐसी कोई जगह नहीं
जहाँ हम मिल सके?
मैं तुम्हारे लिए एक बड़ा-सा खूबसूरत घर बनाऊँगा...
लड़का उसके आँसू पोंछते हुए कहता
बस तुम रोया न करो।
फिर दोनों के होंठों पर मुस्कराहट तैर जाती
अब दिन इसी उम्मीद में गुजरने लगे
हमारा घर होगा जहाँ हम मिलेंगे
अब मिलते भी तो घर की ही बात होती
घर का डिजाइन, कमरे, हॉल, दरवाजे, खिड़कियाँ
रंग-रोंगन सबकुछ लड़के की पसन्द का होता
मगर रसोई
वो तो मेरी पसन्द की ही होगी
अच्छा बाबा ठीक है!
लड़का सहर्ष मान जाता
अब उनके लिए प्रेम से बड़ा घर का स्वप्न था
जानते थे
घर के होने से ही सम्भव है प्रेम का होना
मगर जो नहीं जानते थे वह दोनों
वो ये
कि प्रेमियों के घर नहीं होते!
उनकी किस्मत में
घर की जगह लिखी जाती हैं रेल की पटरियाँ
जहाँ रह सकते हैं वो टुकड़ों में बिखरकर
या फिर स्याह लाल धब्बों में दर्ज
कोई गुमनाम कहानी बनकर
तैरते ख्वाबों की जगह लिखे जाते हैं नदी नाले
जहाँ अटके मिलते हैं मुर्दा ख्वाब
किनारे के झाड़ में लावारिस लाश बनकर
घर बसाने का आशीर्वाद देने वाले हाथ
दबा देते हैं किसी घुप्प अँधेरी रात में
धीरे से उनका गला
छटपटा कर दम तोड़ देते हैं
सोई हुई आँखों में घर के जागे से ख्वाब
घर बनाने और बसाने का ख्वाब देखने वाले
लटके मिलते हैं किसी सुबह
पेड़ की टहनी या छत के पंखे से
या फिर हो जाते हैं एक रोज
लजीज भोजन में छिपे धोखे का शिकार
जो बचे-खुचे प्रेमी बगावती होकर बसा लेते हैं अपना घर
उनके लिए बन्द हो जाते हैं घर के दरवाजे
हमेशा हमेशा के लिए
क्योंकि प्रेमियों के घर नहीं होते!

मो. 7068629236

❑

कहानी

टु हैल विद इट

क्षमा शर्मा

मन तो यह कह रहा है कि मीनाक्षी उठ जाए तो उसे गाल पर थप्पड़ ही थप्पड़ लगाऊँ। हरामखोर! मगर कैसे? अब फायदा भी क्या! वक्त निकल गया। भुगतो-भुगतो। पछतावे से भरे रहो बिना कारण ही। पछतावा भी कभी कितनी निराशा से भरता है! मीनाक्षी को क्यों नहीं हुआ कभी या पता नहीं हुआ भी हो, अरु को पता न चला हो।

कितनी बातें थीं जो रह-रहकर उमड़-घुमड़ रही थीं। किसी से सम्बन्ध नहीं चाहिए थे। मुझ-जैसे कुछ जरूर होने चाहिए थे जो वक्त-जरूरत दौड़ सकें।

कि तभी मुन्नू का फोन आ गया।

हलो बोलते ही बोला– क्यों मौसी, ऐसे कैसे बोल रही हो? तबियत तो ठीक है?

तबियत ठीक होते हुए भी अरु ने कहा– हाँ, बस गला खराब है। इसलिए तुझे लग रहा होगा।

तो शहद, अदरक, काली मिर्च तो ले ही लो। चाय में भी डाल लेना। अभी घर से बाहर हो?

हाँ, कहने पर बोला– चलो शाम को बात करता हूँ।

अरु ने न चाहते हुए भी कहा कि नहीं बता, क्या बात है?

कुछ नहीं। बहुत दिनों से बात नहीं हुई। भूल गया फोन करना।

हाँ, तू अकसर ही भूल जाता है। महीनों, साल भूला ही रहता है।

वह हँसा– कह लो, कह लो मौसी। गलती हो गयी, अब नहीं होगी, तुम तो मेरी बेस्ट अम्मा हो।

हाँ, सोनम कपूर के पति ने भी कहा कि वह बेस्ट माँ है। यों सारी लड़कियों से कहती है कि तुम परिवार बसा कर क्या करोगी! अपने सपनों को पूरा करो और खुद बच्चे के बारे में कहती है कि मेरा सपना पूरा हुआ। यही मेरी सबसे बड़ी प्रायॉरिटी है।

छोड़ो मौसी, इनका क्या है, ये सबकुछ मार्केटिंग के लिए करती हैं। चलो, आप काम निपटाओ। बाद में बात करता हूँ।

काम भी आखिर कैसा!

आखिर इस समय सोनम कपूर की बात करने की क्या जरूरत थी, लेकिन सोनम जैसे मीनाक्षी के रूप में दिखायी दे रही थी। उसकी जगह लेटी।

शाम भी कैसी-कैसी होती है– कभी बिल्कुल अँधेरे भरी, कभी चमकीली, कभी अस्त होते सूरज के बेशुमार रंगों से झिलमिलाती। कभी घर लौटने की खुशी देती तो कभी उदास करती। कभी ढेर सारे गीत-संगीत से भरी।

उस शाम के भी कितने रंग थे! कभी खिलखिल-खिलखिल। कभी जोरदार आवाजें जो सुनने वालों को लड़ाई भी लग सकती थी। एक बार नींबू की और उससे पहले दूध की चाय के दौर चल चुके थे और अब उसने कढ़ी की फर्माइश की थी।

अरे कढ़ी बनाना क्या हँसी-खेल है! पहले से बताती।

तुझ-जैसी दुनिया की शैफ महारानी को पहले से भला क्या बताने की जरूरत है! तेरे लिए सब चुटकियों का खेल है। मीनाक्षी ने चुटकी बजाते हुए कहा था।

तो इस चुटकी के खेल को तू ही पूरा कर ले। देखूँ तो सही कि तू कितनी बड़ी शैफ है! अरु बोली थी।

ना बाबा न, ये सब अपने वश का नहीं। मीनाक्षी ने मेज पर रखे पकौड़ों को मुँह के हवाले करते हुए कहा, मैं तो भाई रसोई में घुसती ही नहीं। एक ही काम हो सकता है, या तो नौकरी करवा लो या रसोई में घुसा लो।

हँसने लगी अरु– हाँ भाई दुनिया में इकलौती तू ही तो है जो नौकरी करती है। मैं तो नौकरी करने नहीं बाहर मटरगश्ती करने जाती हूँ साल-भर।

ये मैंने कब कहा! वैसे भी तू सुपर वुमैन है। लेकिन जब कुक रख सकते हैं, बाहर से मँगा सकते हैं, तो इतनी इल्लत पालने की क्या जरूरत!

तभी दरवाजे की घंटी बजी। इस वक्त पता नहीं कौन आ गया, अरु बड़बड़ायी।

देख ले, देख ले, कोई ओल्ड फ्लेम हो।

हाँ, बस अब इस उमर में यही तो करने को रह गया है। लेकिन दरवाजे पर कोई नहीं था। शायद किसी बच्चे ने बजा

दी होगी।

इश्क के लिए क्या कोई उम्र होती है! देखा नहीं अर्जुन कपूर को, और दूर क्यों जाती है, मैक्रोन को देख ले। बीस साल बड़ी है उससे उसकी बीवी। तू भी ढूँढ़ सकती है ऐसा कोई।

क्यों ढूँढ़ लूँ, जब मेरा मैक्रोन तो घर में ही है।

ओ माय गॉड! इसे कहते हैं आज के दौर की असली भारतीय नारी। चरण कहाँ हैं तेरे?

ये रहे, छू ले।

छूने से काम नहीं चलेगा। साष्टांग दंडवत् करूँगी। पर ये बाद में, चल पहले कढ़ी बना। मीनाक्षी ने आदेश दिया था।

दरवाजे पर फिर घंटी बजी। प्रेस वाला था, कपड़े लाया था। वह बोला, आंटी जी, गाँव जाना है शादी में। जितने कपड़े कराने हों, आज ही करा लो। चार दिन बाद आऊँगा।

अरु उसे पैसे पकड़ाते बोली, अभी और कपड़े तो नहीं हैं, लेकिन आ जाना चार दिन बाद। कई बार महीना-महीना-भर लगा देते हो।

नहीं आंटी, इस बार ऐसा नहीं होगा। मुझे भी दो पैसे कमाने हैं, बच्चे पालने हैं।

चलो कर लेती हूँ तुम्हारी बात पर विश्वास। वह मुस्कराता हुआ चला गया। उसी मुस्कराहट में ही छिपा था कि नहीं लौटने का चार दिन में। घर की सहायिका उषा कह रही थी एक दिन, आप नहीं जानती हो इसके बारे में। यहाँ से गाँव जाकर पैसे ब्याज पर उठाता है और रात-दिन ठर्रे में धुत्त हो जाता है। बड़ा हरामी है!

उसके जाते ही मीनाक्षी किलकती बोली, तो तू बना रही है न कढ़ी?

बना दूँगी। कोशिश करती हूँ।

कोशिश में ऐसे कौन-से पहाड़ तोड़ने हैं? सच, मन करता है तेरा बोसा ले लूँ। लड़का होती तो तुझे भगा ले जाती।

हाँ, मेरे आदमी को देखा है? तेरी टाँगें तोड़ देता।

आदमी नाम सुन कर वह जोर-जोर से हँसने लगी।

उसे अफीम खिला कर सुला देती तो तुझे किडनैप करना आसान रहता और आज तो तूने वसु का नाम न लेकर आदमी बोला तो दादी याद दिला दी। वह भी बाबा को आदमी-आदमी कहती थी, तो कई बार चाची कहतीं– गाँव में आदमी-आदमी तो बहुतेरे हैं तुम्हारा कौन-सा है?

तो अम्मा बनावटी गुस्से में झाड़ू लेकर आँगन-भर में दौड़ती– लुच्ची, ला तोय आज बता ही देऊँ। दादी और उनकी बहुओं के बीच में ऐसा हँसी-मजाक खूब होता था।

जब तुझे कढ़ी इतनी पसन्द है, तो तू खुद बनाना क्यों नहीं सीख लेती?

क्यों सीख लूँ जब तेरी-जैसी दोस्त है बनाने के लिए?

तो तू कौन-सी रोज घर आती है? अपनी कुक से बनवा ले।

न पूछ, इतना कूड़ा बनाती है।

फिर भी तू उससे बनवाती है?

क्या करूँ? तुझे तो पता है मुझे खाना बनाने का बिल्कुल शौक नहीं।

खाने का है, तो बनाने का क्यों नहीं?

अब भाषण बन्द करेगी या चलूँ?

सही बात सुनते ही ये चलूँ की धमकी क्या होती है? अपनी इंडिपेंडेंस के लिए हमें क्यों हमेशा कोई और चाहिए? कोई और औरत, जो हमारी गुलाम हो।

तुझे लगता है कि कोई काम वाला गुलाम होता है इन दिनों? जब मन आता है, छोड़ कर चले जाते हैं। फिर नये सिरे से ढूँढ़ो किसी को। और यह किसने कहा कि कुक औरत ही होती है?

चल आदमी ही सही। यह भी एक किस्म की राजशाही है जहाँ हमें अपने रोज के काम के लिए चार-छह नौकर जरूर चाहिए। यूरोप और अमेरिका में सब करना पड़ता है, तब कोई नौकर याद नहीं आता। अरु ने छाछ में बेसन घोलते हुए कहा।

मैडम, बहुत हो गया भाषण! दो-चार पकौड़े जरा ज्यादा तलना। तेरे बनाये टेस्टी नींबू के अचार से पकौड़े क्या लगते हैं! यमी-यमी! और ये क्यों नहीं देखती कि मैंने एक गरीब औरत को इंडिपेंडेंस और जॉब दिया है। मुझ-जैसी करोड़ों नहीं तो लाखों होंगी और फ्यूचर इज वैरी ब्राइट फॉर अस एंड फॉर दैम आलसो, यानी कि गरीबों का। हा-हा-हा-हा-हा! फिर वह गाने लगी, जाना है मुझे बॉम्बे।

क्यों बॉम्बे ही क्यों? वहाँ कौन-सा तेरा कोई सगा-सोधरा बैठा है या शशिकला का रोल करना है?

न बैठा हो कोई। किसी को भी आँख मार कर अपना बना लूँगी। इन आदमियों से ज्यादा मूर्ख दुनिया में कोई नहीं होता। औरत मुस्करायी-भर कि समझने लगते हैं कि हम पर मर-मिटी और शशिकला क्यों, मैं किसी आलिया भट्ट से किस मायने में कम हूँ? फँसा लूँगी किसी रणबीर कपूर को।

तू कितनी खड़ूस है! बदली नहीं बिल्कुल।

अब अपने बचाव में जो चाहे कह और मैं क्यों बदलूँ? जिसको बदलना हो वह मेरे लिए खुद को बदल ले, लेकिन वो बेसन के पकौड़ों का क्या हुआ?

नये नहीं बना रही, जो आलू-प्याज के पकौड़े बने हैं, उन्हीं से बना दूँगी वरना ये खराब होंगे। वसु होता तो वह खाता। तुझे पता है, मैं तली चीजें ज्यादा नहीं खाती। पेट में परेशानी हो जाती

है और वजन तो तू देख ही रही है।

कंजूसड़ी कहीं की! वैसे भी इतने परहेज करती है और रोज बीमार पड़ती है। क्या पता, खाती-पीती और दारू के दो पैग चढ़ाती, तो घोड़े की तरह दौड़ती और वसु की कुछ मत पूछ। बस तेरे लिए इतना ही बचा है कि रोज सवेरे-शाम थाली में दिया जला कर उसकी आरती उतारा करे।

दुनिया की सारी घोड़ियाँ तो मैंने हिन्दुस्तान के सारे दूल्हों के लिए छोड़ दी हैं।

कैसी फेमिनिस्ट है, घोड़ी की जगह घोड़ा क्यों नहीं? बेचारी घोड़ी भी क्या किस्मत लेकर पैदा हुई है! दूल्हों से पिचने के लिए। कहते हुए अरु इतना हँसी कि आँखों से पानी बहने लगा। बोली– तू एक वैलनैस सेंटर खोल ले और हँसाने का क्लब भी। सबसे पहली सदस्य में ही बन जाऊँगी।

ना बाबा ना! तुझ-जैसी को घुसने न दूँ। मेम्बरशिप की तो बात ही क्या है!

क्यों भई?

रोंदू और मेरा पति मेरा देवता कहने वाले नहीं चाहिए।

दोस्त तो चाहिए।

दोस्त तो कोई भी हो सकता है। तुझे पसन्द नहीं तो आज तोड़ ले, मैं तो चली। मैं चली, मैं चली... उसका सुर हवा मे गूँजने लगा।

और हँस-हँस। कम से कम हँसी तो सही। मैं यहाँ रहूँ डार्लिंग तो हँसा-हँसा कर तेरा सारा बी ट्वैल और विटामिन डी, हीमोगल्बिन सब ठीक कर दूँ।

जब वह चली गयी तो अरु के दिमाग में घूमने लगा– अरु-अरु यह दे, वह दे, ये बना, वो बना।

रात के आठ बजे थे और पीठ अकड़ गयी थी। याद आया कि वसु का मैसेज आया था तो उसने मीनाक्षी से छिपा कर लिखा था कि वह आई हुई है। गलती से फोन मत कर लेना, वरना दिमाग का दही बना देगी और जो भी ग्रे मैटर बचा होगा, सब सफाचट हो जाएगा।

और वसु ने हँसी की इमोजी बना कर भेजी थी। रोहन को अपनी तरफ से मैसेज कर दिया था कि नौ बजे के बाद फोन करे, क्योंकि यह बला उससे पहले पिंड छोड़ने से रही। तब रोहन ने आँसू बहाती दस इमोजी भेजी थीं। मीनाक्षी पूछने भी लगी किसे मैसेज कर रही हो तो उसने टाल दिया था, ऑफिस से मैसेज है। उन्हें जवाब दे रही हूँ।

और बनो मि. मजदूर। वे दिहाड़ी का समझकर चैन न लेने देंगे, दौड़ाये रखेंगे जिन्दगी-भर और एक दिन बिना बताये, बिना किसी गलती के भी किसी को लाने के लिए एग्जिट का फरमान सुना देंगे।

तो क्या करूँ, जब वहाँ से मैसेज पर मैसेज आ रहे हों? जब जो हो जाएगा देखा जाएगा, इतने दिनों से हूँ, अभी तक तो कुछ हुआ नहीं। कल जो हो, सो हो। लगी-लगाई नौकरी को छोड़ा भी तो नहीं जाता। आते पैसे किसे बुरे लगते हैं?

सो तो है, लेकिन अपन ऐसे नहीं हैं। फ्यूचर के लिए सिक्योरिटी बनी रहे, इसके लिए आज हलकान नहीं हुआ जाता। चाहे जब नौकरी को लात मार देती हूँ।

मन किया अरु का कि कहे कि तू ही बताती रही है कि तूने नहीं, मैनेजमेंट ने ही हमेशा लात मारी है। कहने को कुछ भी कहती रहे। मगर ऐसा कहे और हमेशा के लिए सम्बन्ध खत्म। इसलिए चुप लगा गयी।

अरु, रोहन की भेजी इमोजी को देख कर मुस्कराना चाहती थी। जोर से हँसना चाहती थी, पर नहीं मुस्करायी। मीनाक्षी फिर पूछती, अकेली-अकेली हँसने की वजह। मुझे भी बता कि क्या आया है, मैं भी थोड़ा-सा हँस लूँ। और फोन छीन लेती। उसकी नजर से अरु के भेजे मैसेज भी नहीं छुपते।

आजकल हर भाव और भावनाएँ इमोजी में सिमट आयी हैं। तो अरुणिमा यानी कि अरु ने ही पिंड छूटने पर राहत की साँस ली थी, जब मीनाक्षी ने कहा था कि शाम को कुछ दोस्त उसके घर आ रहे हैं, इसलिए जल्दी चली जाएगी। मगर तू ये मत समझना कि अपने हिस्से की कढ़ी यहीं छोड़ जाऊँगी। चल इतनी पैक कर कि शाम को क्या, अगले दिन भी खा सकूँ। दोस्तों को भी नहीं दूँगी। क्यों दूँ, उन्हें खानी हो तो तुझ-जैसे दोस्त पाल लें। पालने का क्या मतलब! क्या कुत्ता पाला है तूने, कहते हुए अरु ने एक कटोरी कढ़ी अपने लिए बचा कर बाकी सारी पैक कर दी थी। उसका काम तो कढ़ी और बचे चावल से ही चल जाएगा।

मीनाक्षी को गेट तक छोड़ कर आयी तो पीठ अकड़ गयी थी। अरु थोड़ी देर लेट गयी कि कुछ देर में वसु और रोहन को फोन करेगी कि रोहन का फोन आ ही गया। कोई है जो चैन लेने दे, दो मिनट! कभी फोन, कभी दरवाजे की घंटी तो कभी कुछ और। उसने हलो कहा तो वह बोला, थक गयीं न खूब और बुला लो अपनी दोस्त को, मेरी मीनाक्षी मौसी को।

मैंने थोड़े ही बुलाया, बिना बताये आ गयी। वरना मेरा इरादा तो छुट्टी करके पूरे दिन सोने का था। सोचा था कि तुम-जैसी आफतें तो यहाँ हैं नहीं, आज पूरे दिन आराम करूँगी। मगर कौन करने देता है!

और क्या, न मैं हूँ, न पापा तो तुम-जैसी आलसी तो ऐश

ही करोगी! यह मत समझ लेना कि हमारी–जैसी आफतें कभी तुम्हारा पिंड छोड़ेंगी। हम तो हैं ही ऐसे ओ माँ, ओ माँ! कहकर रोहन खिलखिलाया।

यानी कि तुम दोनों ही हो जो मुझे कोल्हू का बैल बनाये फिरते हो। कूतरे कहीं के।

और क्या! मगर ये कोल्हू क्या होता है?

अब तुझे जितनी देर में कोल्हू का मतलब समझाऊँ, उतनी देर में तुझे कूट न दूँ।

कूटोगी कैसे, फोन पर डंडे बरसाने लगीं तो मुझे तो चोट लगेगी नहीं, बेचारा फोन टूट जाएगा। तुम्हारे–जैसे मोटू एलीफेन्ट के हाथ को बेचारा कैसे सँभाल पायेगा। अपना तो तोड़ ही चुकीं। उसी दिन सुना रही थीं न कि फोन खराब हो गया और बैठे–बिठाये अठरह हजार लग गये। इतनी कंजूस भी मत बना करो। कुछ तो हमारी इज्जत का खयाल किया करो। चलो थकी हो आराम करो।

तुझसे या पापा से कुछ माँगा है कुत्ते। अपने पैसे से लिया है, वो भी बर्दाश्त नहीं और अब क्या आराम! पहले तुम लोगों के फोन तो सुन लूँ। रात को ही सोऊँगी। तुम लोगों के फोन चैन लेने दें तब न!

अच्छा, एक दिन फोन न करूँ, तो यहाँ पधारने की धमकी देती हो। जानता हूँ भागी चली आओगी और हजार टसुए बहाओगी अलग से कि हाय मेरे लड़के को क्या हुआ! सब जानता हूँ तुम्हारी बहादुरी, वैसे बन रही हो तीसमार खाँ। चलो कोई बात नहीं, सो जाना। मुझे भी दोस्तों के साथ डिनर करने जाना है, कल बात करते हैं।

अरु के कानों में फिर से मीनाक्षी की आवाजें गूँजने लगीं, मैंने तो छुट्टी पा ली। घर छोड़ा। बच्चे पर अधिकार जमा रहा था वो साला, तो उसे भी छोड़कर चल दी। रोते–रोते पीछे भी भागा था, मगर देखा नहीं मैंने। ऐसी बेड़ियाँ जो राह रोक लें, उन्हें तोड़ देना चाहिए। पालो बच्चे को, पता तो चले बच्चे कैसे पलते हैं! कितना इनपुट लगता है! पूरी जिन्दगी लग जाती है, फिर भी बच्चे सारी शिकायतें माँ से ही करते हैं।

कभी मिली भी नहीं उससे। याद नहीं आई।

क्या मिलती, क्यों मिलती! बच्चे के साथ उससे भी मिलना पड़ता, जिसकी शक्ल नहीं देखना चाहती। वह पहचानता भी कैसे! याद का क्या है, कितनी यादें ऐसी हैं जो जीवन–भर बनी ही रहती हैं, मगर आप दोबारा चाहें भी तो उन तक नहीं पहुँच सकते।

भाई, तू महान है।

इसमें महानता क्या है! जो भुगतता है, वही जानता है।

चित्र : कबीर राजोरिया

लेकिन ऐसा तुम दोनों के बीच हुआ क्या था।

पता तो है तुझे कि एक नम्बर का शराबी था। बात–बात पर छोड़ने की धमकी देता था। तो मुझे लगा है कि रोज–रोज मरने से बेहतर है, सबकुछ को छोड़ देना। इसलिए घर–बार, नौकरी सब छोड़कर नये शहर में चली आई और अब पूरी की पूरी आजाद हूँ। जैसे चाहे रहूँ, मगर कोई पूछने वाला नहीं।

वैसे शराब से तुझे ऐसी क्या दिक्कत! तू भी तो खूब पीती है।

यही तो बात है। वह खुद पीता था, लेकिन मेरे पीने पर उसे हमेशा अपनी कल्चर याद आ जाती थी। ये कल्चर भी क्या चीज है! चाहे जब दूसरे की पीठ पर लाद दो और जीवन–भर बोझा ढोने को मजबूर करो। भाड़ में जाए सब।

तो तेरे मम्मी–पापा, भाई–बहन उन्होंने कुछ नहीं कहा?

क्यों नहीं कहा, वे तो हमेशा कहते रहते थे– एडजस्ट–एडजस्ट, मगर कब तक? शादी के बाद वैसे ही माँ–बाप, घर वाले सब सोचते हैं कि चलो गंगा नहा लिये। लड़की का सौ टन का भार उतर गया, चाहे लड़की का वजन बीस किलो हो। कहकर मीनाक्षी जोर से हँसी।

तो उनका आना–जाना?

कुछ नहीं। कभी–कभार फोन आ जाता है। मुझे भी वहाँ जाने में अब कोई दिलचस्पी नहीं। माँ–बाप रहे नहीं, भाई–भाभी ये न समझ लें कि कहीं उनके सिर पर पड़ने के लिए आ गयी।

मीनाक्षी की बातें किसी हद तक सही थीं, लेकिन छोटे बच्चे को इस तरह से छोड़ना अरु को जरा पसन्द नहीं आ रहा

था। उसने पूछा, पता नहीं बच्चे को क्या लगा होगा! वह तो माँ-बाप के बीच पिस ही गया और तेरा एक बार भी उससे मिलने को मन नहीं किया?

छोड़, अब मन का क्या! न जाने किस-किससे मिलने को करता है, मगर हम सबसे तो नहीं मिल सकते। लाइफ के चैलेंजेज भी कुछ होते हैं।

मीनाक्षी के जाने के बाद अरु सोचने भी लगी, लेकिन हम कौन हैं किसी को जज करने वाले! तभी अरु के दिमाग में वसु की आवाज गूँजी। ओह, उसे भी फोन करना है। वरना कहेगा कि मुझे फोन करने को मना किया था, खुद किया नहीं। रात-भर तुम्हारी चिन्ता में नींद नहीं आई। ये जो ज्यादा केयर करने वाले हस्बैंड और बच्चे होते हैं न, वे भी किसी बड़ी इल्लत से कम नहीं। हर वक्त जैसे कोई जासूसी आँख सिर पर मँडराती रहती है। यह करो, वह मत करो। यहाँ जाओ, वहाँ नहीं। जानती है अरु कि इन सबमें उनकी चिन्ता छिपी होती है, मगर ऐसी चिन्ता भी क्या, जो हर पल कदमों को रोकती ही रहे!

अरु ने वसु से बात करके टाइम देखा तो साढ़े नौ बजे थे। परसों तो वह लौट ही आएगा और जिन्दगी का सिलसिला फिर से वैसे ही शुरू हो जाएगा। रसोई समेटते एक छुट्टी के यों बर्बाद होने के दुःख ने घेर लिया। अगले दिन से फिर वही अफरा-तफरी, दौड़-भाग। ये ला, वह ला, यह फेंक, वह किसी को कुछ दे, किसी से ले। सब्जी, बिस्कुट, ब्रेड-मक्खन, साबुन, क्लीनर खरीद और लदी-फदी घर की तरफ दौड़। तेज दौड़-भाग, पैदल, आटो, डीटीसी बसें, चार्टर्ड बस, मेट्रो, कार, जो मिले दौड़ ले और भागती रह, सवेरे, शाम, वश चले तो रात में भी, नींद में भी। अच्छा है, जो चौबीस घंटे ही होते हैं वरना तो गृहस्थी के लिए दिन-रात के एक सौ बीस घंटे भी कम हैं।

कूरियर वाला जब आया था तब मीनाक्षी थी, उसने उसे देख कर जाने के बाद कहा था, अरे यार कितना तो हैंडसम है!

ओफ ओ, यार मुश्किल से बीस का होगा।

तो क्या किसी को हैंडसम भी नहीं कह सकते और मैं कौन-सा उससे इश्क लड़ाने जा रही थी! तारीफ ही तो की है बस।

तेरा कुछ पता है कि किसे चुम्मी का ऑफर दे दे।

ले अब चुम्मी के लिए भी एज देखनी पड़ेगी यू ओल्ड स्कूल, 'चुम्मा चुम्मा दे दे चुम्मा।' मीनाक्षी ने जोर-जोर से अपने बेसुरे सुर में गाना शुरू किया।

मीनाक्षी की मंशा थी कि अरु उसके सामने ही कूरियर खोले और उसे पता चल जाए कि उसमें क्या है। अरु को पता था, उसने क्या मँगाया है, मगर मीनाक्षी को क्यों बताए, क्यों दिखाये! उसने पैकेट को ज्यों का त्यों मेज पर ही रख दिया था। वह कनखियों से देख रही थी, मीनाक्षी की नजर उसी पैकेट पर लगी थी, कहीं खुद ही न खोल ले। जब घर आती है, तो ऐसी ही खखोरा-खखोरी करती है, इसलिए अरु उसके लिए पानी लाने के लिए बहाने से उठी और पैकेट लेकर अलमारी में रख आई थी। वह खुश भी हो रही थी कि मीनाक्षी अनुमान लगाती रहे कि आखिर उस पैकेट में ऐसी कौन-सी चीज है जो अरु उसे नहीं दिखाना चाहती। अब वह बहुत-सी चीजों को छिपाना सीख गयी है। क्यों अपना दिल खोल कर सबके सामने परोसती फिरे और लोगों को पीठ पीछे मजाक उड़ाने का मौका दे? हालाँकि दुःख इस बात का है कि इस चतुराई को उम्र के चौथेपन में सीख पायी। फिर एकाएक सोने से पहले उसे गुस्सा चढ़ गया। बिना बताये चाहे जब आ धमकती है नालायक। अब कोई दरवाजे पर आ जाए, तो उसे लौटाया भी तो नहीं जा सकता।

मीनाक्षी से उसने पूछा भी था कि तुझे कैसे पता चला कि मैंने आज छुट्टी ली है। घर पर मिल जाऊँगी।

जानेमन मुझे ख्वाब आ गया था। इसे कहते हैं सिक्स्थ सेंस। बिना बताये भी सबकुछ पता चल जाता है। दिल से दिल का मिलना, दिल है कि मानता नहीं!

अगर तेरा ख्वाब गलत साबित होता तो ताले से ही मुलाकात होती। दिल का मिलन अच्छी तरह से हवा हो जाता।

तो क्या हुआ ताले को ही अरु समझ प्रणाम कर लेती। फूल चढ़ाती, धूप-बत्ती दिखाती। कह कर वह फिर से दाँत दिखाने लगी। हर बात पर बुक्का फाड़ कर हँसने की आदत है उसे। अरु को पसन्द भी है और अक्सर सोचती है अरु कि वह क्यों उसकी तरह हर बात पर नहीं हँस सकती। मीनाक्षी दूसरे के घर को अपना घर समझती है और अपने घर को भी अपना ही। उसे हर जगह अधिकार चाहिए। बड़े गर्व से कहती है, मैं जहाँ जाती हूँ वहाँ तय कर लेती हूँ कि सबकुछ पर मेरा ही अधिकार हो, लेकिन खुद कोई अधिकार किसी को नहीं देती। उसके घर में शायद ही किसी के लिए कोई जगह है। अड़ोसी-पड़ोसी तक से अबोला है। सैकड़ों बार खाना खाकर गयी होगी। एक दिन बोली, तू भी तो मेरे यहाँ कभी खाने पर आ। देख तो सही मैं कैसा खाना बनाती हूँ। न सही तुझ-जैसी एक्सपर्ट मगर कभी-कभी चना-चबेना भी खा लेना चाहिए। और वहाँ अरु को क्या मिला– उबले हुए चावल और सूखे आलू। दही पूछा तो दही भी न था। नहीं तो उससे ही खा लेती। सूखे चावल गले से उतर ही नहीं रहे थे। बिना खाये छोड़ दिये, जबकि अरु को खाना बिगाड़ने से सख्त नफरत है।

मक्कार कहीं की, सबको अपनी रियाया समझती है। खुद के पास तो खाली टाइम है और दूसरे के पास भी इतना होना चाहिए कि उसके हुकुम बजाने के लिए दौड़ता रहे, जब-जब महारानी साहिबा पधारें। अपने को छड़ी कहती है और अरु को मजदूर। हरामजादी! जबर्दस्ती की दोस्ती दिखाएगी और वैसे कभी फोन तक नहीं करेगी। आने से पहले फोन करती तो कम से कम अरु कोई बहाना बना कर निकल लेती, पर उसने मौका ही नहीं दिया।

वसु ठीक कहता है, करोगी भी और कोसोगी भी।

इन बातों को कई महीने बीत गये। जब भी ऑफ होता या कभी-कभार छुट्टी लेती तो अरु भगवान से मनाती कि कहीं वह न आ धमके। फोन पर जरूर दो-तीन बार बात हुई।

एक सुबह चाय पीकर अरु रसोई में जा रही थी कि फोन की घंटी बजने लगी। पता चला कि अस्पताल से फोन है। अरु की जान सूख गयी। कहीं रोहन को तो कुछ नहीं हो गया। वसु भी सवेरे ही चला गया था। कि उधर से आवाज सुनाई दी– आप अरुणिमा बोल रही हैं।

जी।

आपकी दोस्त मीनाक्षी हमारे यहाँ एडमिट हैं। उन्होंने सिर्फ आपका नाम दिया है, कहा है कि इन्फॉर्म कर दें।

मेरा नाम, क्या मैं अकेली हूँ इस शहर में? लेकिन अस्पताल वालों से कुछ कहने से क्या लाभ!

क्या हुआ है उसे?

बताएँगे। पहले आप आ जाएँ।

जाएगी कैसे? अमेरिका से बॉस आया हुआ था। ग्यारह बजे मीटिंग में सबको आने के लिए कहा गया था। सब डरे भी हुए थे कि कहीं और कम्पनियों की तरह कास्ट कटिंग के नाम पर अपने यहाँ भी तो हायर एंड फायर नहीं होने वाला है!

जैसे-तैसे गिरती-पड़ती आफिस पहुँची। उसने देखा अधिकांश लोग घबराये हुए थे। आखिर रातों-रात नौकरी जाना किसे अच्छा लगता है, मगर लोगों की नौकरी न जाए तो ऊपर वालों का कुछ न बढ़े। अपने वर्ल्ड टूर और भारी-भरकम एप्रेजल के लिए वे अक्सर दूसरे कर्मचारियों की गरदनें कटवाते थे, उनका काम दूसरों के ऊपर डाल काम का दुगुना बोझ डालते थे, शाम को पार्टी में कहकहे ऐसे ही लगाये जा सकते थे, लेकिन ऐसे लोग खुद भी नहीं बच पाते थे। तब वे उनसे सहानुभूति की उम्मीद करते थे, जिनकी गरदनें उड़ाने में अव्वल रहते थे।

वक्त बदलते क्या देर लगती है!

मीटिंग में बातचीत होते-होते वहीं पहुँची थी, जिससे लोग डरे हुए थे। अमरीकी हैड ने कहा था कि अगर कम्पनी का मुनाफा नहीं बढ़ता है तो हम डिफीकल्ट टाइम्स को नहीं रोक सकते। फिर हमें कुछ कठोर निर्णय लेने ही पड़ेंगे। यानी कि फाँसी पर लटकने के लिए छह महीने इन्तजार करना था।

आफिस से निकलते देर हो गयी। वसु को बता दिया था, देर हो जाएगी। क्यों पूछने पर मीनाक्षी के बारे में बताया था। अस्पताल भी काले कोस था।

अस्पताल में जाकर पूछा तो पता चला कि पाँचवें फ्लोर पर जाना पड़ेगा। लिफ्ट में घुसी तो डर लगा। अकेली थी। लिफ्ट में अकेली जाने से हमेशा डरती है। एक बार बहुत पहले एक लड़के ने छेड़ा था और एक बार आफिस में लिफ्ट में फँस गयी थी। तब सीढ़ी लगा कर उतारना पड़ा था। लिफ्ट का फोबिया है अरु को।

वहाँ नर्स को बताया तो वह शिकायती अन्दाज में बोली, सवेरे आपको फोन किया था, अब आई हैं। खैर, मिल लीजिए और ये दवाएँ खरीद कर लेती आइए। हमने कुछ दवाएँ दे दी हैं, उनका भी बिल है।

लेकिन वह कहाँ है? क्या हुआ है?

ब्रेन हैमरेज।

घबरा गयी अरु। तो पहचान पा रही है?

हाँ कॉन्शस हैं।

वहाँ पहुँची तो तरह-तरह के पाइप्स से घिरा पाया मीनाक्षी को। वहाँ कोई नहीं था। उसने पहचाना। सब कैसे हुआ, कुछ पता नहीं। उसे कुछ याद नहीं। तरस भी आया अरु को। मीनाक्षी को कभी तो इतना असहाय नहीं देखा था। तो क्या यहाँ रात-भर रुकना पड़ेगा, मगर कैसे? न वसु को बताया न रोहन को पता है। दफ्तर भी कैसे जाएगी? वैसे ही बॉस छुट्टी लेने की शिकायत करता रहता है, क्या करे! उसने मीनाक्षी से कहा कि अपने भाई, बहन या बेटे का पता दे तो उन्हें बता दे।

उसने ना में सिर हिला दिया। कुछ देर बाद अरु ने बाहर जाकर नर्स से पूछा कि क्या उसके घर के किसी का नम्बर उसके पास है! नर्स बोली कि उन्होंने आपका ही नम्बर दिया और तो कोई नम्बर नहीं है। वैसे आप कौन हैं?

मैं, मैं तो बस दोस्त-भर हूँ। कभी-कभी ही मिलते हैं।

पर उन्होंने आपको ही बुलाने को कहा।

केमिस्ट तक जाते अरु को उलझन होने लगी, ऐसे कैसे सारी जिम्मेदारी उसकी हो गयी! और भी तो कोई, दोस्त, सहेलियाँ, आफिस का कोई होगा। कैसे रात-दिन यहाँ रुक सकती है! वैसे ही कास्ट कटिंग चल रही है, हर वक्त नौकरी जाने का खतरा बना रहता है। केमिस्ट ने जब तक दवाएँ निकालीं, तरह-तरह के खयाल आते रहे। वसु को पता चलेगा

तो वह भी कहेगा। उसने तभी वसु को फोन किया तो वह छूटते ही बोला, कल उसे कुछ हो गया तो सारी जिम्मेदारी उसके घर वाले तुम पर ही डाल देंगे। कोई तुम्हारी भाग-दौड़ को नहीं देखेगा। उलटा दोष मढ़ देंगे कि बताया क्यों नहीं।

बताऊँ कैसे, जब कुछ मालूम नहीं?

अब खुद सोचो कि क्या करना है! कोई घर वाला हो, कोई ऐसी दोस्त हो, जिससे सचमुच तुम्हारी दोस्ती हो तब तो सोचा जा सकता है।

उसका बेटा भी है। हस्बैंड भी है।

मगर तुम तो कहती हो कि बहुत सालों से वह उनसे मिली तक नहीं!

हाँ, यहाँ भी किसी का नाम-नम्बर नहीं लिखा। चलो देखती हूँ, लौटकर बातें करते हैं।

दवाएँ देकर केमिस्ट ने बिल थमाया तो अरु के होश उड़ गये। पूरे तेरह हजार, दो सौ अस्सी रुपए का बिल था। कार्ड से पैसे देकर लौटने लगी तो डर लगने लगा। दो दिन का बिल इतना है तो आगे क्या होगा! कमरे का किराया, दवाओं का खर्चा और यह भी पता नहीं कि कब तक अस्पताल में रहना होगा। ठीक हो भी गयी तो बाद में कौन देखेगा, इन पैसों को कौन चुकाएगा, किससे माँगेगी?

नर्स को दवा देकर उससे पूछा, यह यहाँ आई कैसे? इतना तो पता नहीं मैडम। मेरी ड्यूटी तो अभी शुरू हुई है। कोई एडमिट करा कर चला गया। सवेरे दूसरी सिस्टर आएँगी, उनसे पूछ लीजिएगा। यानी कि नर्स ने मान लिया है कि रात को वह ही रुकेगी। चिढ़ होने लगी अरु को। यह तो भारी मुश्किल है! किसी की जिम्मेदारी इस तरह आ जाएगी, इसके बारे में तो कभी सोचा तक नहीं। फिर से वसु को फोन किया तो वह परेशान हो गया। बोला, तुम मत रुको, मैं आ जाता हूँ। रात-भर तो पीठ दर्द से सोती नहीं हो। वहाँ रात-भर जगीं, तो खुद पड़ जाओगी।

तुम यहाँ कैसे रुक सकते हो, लेडी का मामला है।

एक बार तुमने मुझे उसकी किसी भतीजी के बारे में बताया था।

हाँ, मगर इसने उसे भी लड़-झगड़कर भगा दिया। वह अक्सर आती थी। इसके छोटे-मोटे काम भी कर देती थी, मगर इसे शक था कि वह इसके स्टूडियो अपार्टमेंट के लालच में ऐसा कर ही है।

अगर ऐसा भी था तो आखिर इसे किसी को तो देना ही था। कम से कम वह मदद तो करती रहती।

जानते तो हो कितनी सिरफिरी है और बहुत हद तक मतलबी भी, लेकिन इस हालत में उससे क्या कहूँ!

तो क्या सोच रही हो?

सोच रही हूँ कि रुक ही जाऊँ। अस्पताल वाले तो मान कर बैठे हैं कि मैं ही हूँ, सबकुछ करने के लिए।

तो देख लो।

लौट कर वार्ड में पहुँची तो उसने देखा मीनाक्षी का फोन उसके सिरहाने रखा है।

उसने उसे उठा लिया और देखा। उसमें आफिस लिखा नजर आया, लेकिन इस वक्त कौन होगा! रात के नौ बजे थे। क्या पता कोई हो! आजकल तो कई दफ्तर चौबीस घंटे खुले रहते हैं। नीरू नाम के दो नम्बर थे। अचानक एक नीरू के सामने एन लिखे होने पर अरु की नजर ठहर गयी। एन माने नीस भी हो सकता है।

कमरे से बाहर आकर अरु को कुछ राहत महसूस हुई। उसने फोन किया तो लगातार बिजी जाता रहा, फिर दोबारा करने पर काट दिया गया। शायद अननोन नम्बर की वजह से ऐसा हुआ हो। आजकल ऐसे फोन आते भी तो कितने हैं! अब क्या करे! उसने मैसेज किया। क्या पता मैसेज भी न देखे। हो सकता है कि एन का मतलब वह न हो जो अरु समझ रही है। उधर मीनाक्षी की ड्रिप खत्म हो गयी थी। भूख भी जोर से लगी थी। नर्स को जाकर बताया फिर कैंटीन के बारे में पूछा। वह बोली, कैंटीन तो बन्द हो गयी होगी।

अब? क्या पता दूसरे अस्पतालों की तरह बाहर कोई खड़ा हो, लेकिन वहाँ भी कोई दिखाई नहीं दिया। बस, एक छोटी-सी दुकान जरूर खुली थी। वहाँ जाकर मीठे, नमकीन, बिस्कुट के दो पैकेट, एक पानी की बोतल लेकर आ गयी। अब जैसे भी हो रात तो काटनी थी। बिस्कुट का पैकेट खोलने लगी कि तभी नर्स फिर आयी। उसे एक इंजेक्शन लाने के लिए कहा।

अभी तो आई थी आपके पास, तभी बता देतीं।

मैडम जब आप गयी थीं तभी डॉक्टर आये थे। लिख कर गये हैं यह इंजेक्शन। इनकी कॉन्शसनैस कम हो रही है। यह इंजेक्शन नहीं दिया तो क्या पता कोमा में चली जाएँ। घबरा गयी अरु, फौरन दौड़ी। लिफ्ट के पास खड़ी थी और लिफ्ट दूसरे फ्लोर पर ही अटकी थी। लिफ्ट आयी तो गलती से माइनस वन का बटन दबा दिया। उफ्फ, जैसे रसातल में चली गयी। दरवाजा खुला तो घुप्प अँधेरे से सामना हुआ। सामने मार्चरी का बोर्ड लगा था। और भी डर लगा, क्या पता देखी फिल्मों की तरह कोई मुर्दा उठकर आ जाए! ऊपर जाने के लिए ग्राउंड का बटन दबाया। बाहर निकल केमिस्ट को इंजेक्शन देने को कहा, उसने

दो इंजेक्शन और बिल दिया तो होश उड़ गये। ये किस जन्म का कर्ज चुका रही है मीनाक्षी का!

सोचा एक बार फिर ट्राई कर ले। फिर से नीरू को फोन लगाया। इस बार उठा लिया गया। उधर से आवाज आई तो अरु को लगा कि सब जल्दी-जल्दी बता दे। उधर से ऐसी आवाज सुनाई दी जिसमें छिपा था कि उसे इस बेटाइम क्यों बताया गया। फिर कहा गया, आज तो आना मुश्किल है। मेरी तबियत खुद खराब है।

कल किस वक्त आएँगी?

ये तो बता नहीं सकती। मैं भी जॉब करती हूँ। बच्चे को स्कूल भी छोड़ना पड़ता है।

जैसे अरु तो ये सब करती ही नहीं है। मन ने कहा किस मुसीबत में फँस गयी! फिर उसने खुद को झिड़का, इस वक्त ऐसी बातें सोचने का क्या फायदा!

लौट कर नर्स को इंजेक्शन पकड़ाते घड़ी पर नजर पड़ी। दस तो यों बज गये।

फिर से जाकर बैठी तो मीनाक्षी ने हल्के से आँखें खोल कर देखा फिर थोड़ी देर बाद मुस्करायी। सपने में कौन था जिसे देखकर मुस्करायी होगी? सपने सुख-दुःख थोड़े ही देखते हैं!

रात-भर थोड़ी-बहुत आँखें झपकी होगी, वरना वैसे ही बैठी रही। रह-रह कर ध्यान ड्रिप पर जाता, कहीं खत्म न हो जाए।

कमर अकड़ गयी थी। वसु के हाथ की चाय भी याद आ रही थी। बस बहुत हो गया।

लौटते हुए अरु, मीनाक्षी के खयालों में ही खोयी हुई थी। इतने महीने पहले जब घर आयी थी और उसके पति के बारे में बातें हो रही थीं तो क्या-क्या कह रही थी! कहने लगी, तू तो बस अपनी जिन्दगी इसी में गुजार देगी, मेरा पति, मेरा बच्चा और तू सबकी आँखों का तारा जैसे। जब तक भाग-दौड़ रही है, सबके मन की कर रही है न तभी तक है ये सब, जिस दिन ये सब नहीं कर पाएगी तब पता चलेगा।

क्यों? मेरी मर्जी, मेरा पति, मेरा बच्चा, मेरा घर, मेरी च्वाइस जो करूँ। मुझे अपने घर में रहना जैसे अच्छा लगता है, वैसे ही रहूँगी। तू भी तो वैसे ही रहती है, जैसे चाहती है। तुझे अच्छा नहीं लगता तो मत कर। तू भी तो कभी न कभी याद करती होगी, चाहे न बताये। पास्ट को क्या इतनी आसानी से किसी कपड़े की तरह उतार कर फेंक सकते हैं?

मैं, कह तो ऐसे रही है जैसे कुछ जानती ही नहीं। बीस साल से ज्यादा हो गये उस कुत्ते की शक्ल देखे। कभी सामने भी पड़ जाए तो मुँह फेर कर चली जाऊँ। न पहचानूँ, न कोई भाव दूँ। उस-जैसे हजारों जीवन में आये-गये, मगर गाँठ किसी से न जोड़ी।

फिर भी फेसबुक, इंस्टा पर उसकी प्रोफाइल चैक करती रहती है। कोई मतलब नहीं तो क्यों करती है?

यह भी मेरी मर्जी है। सबकुछ क्या तुझसे पूछ कर करूँगी? वैसे भी उसका पब्लिक अकाउंट है। कोई भी चैक कर सकता है। मेरा भी करता ही होगा। अब अपन हर मर्द से आजाद हैं। दोस्ती तक सब ठीक है।

मान ले विकास ऐसा करता, जब उसके साथ रहती होती तब?

तब की तब देखती। वैसे तुझे पता ही है कि कितनी पजैसिव और जेलस हूँ। तेरी दोस्ती तक तो किसी से बर्दाश्त नहीं कर सकती, उसकी क्या करती!

तो सारी उम्मीदें उसी से क्यों?

तू उसकी इतनी बड़ी स्पोक्स पर्सन क्यों बन रही है? दोस्ती मुझसे और साइड उसकी? शेम! और मैं क्या करती इस चिन्ता में तू क्यों मरी जा रही है? वह तो नहीं मरा जा रहा। ऐश कर रहा है।

और तेरा बेटा?

वह तो इतना लम्बा हो गया। मुझसे भी बहुत ऊँचा।

उससे भी नहीं मिली कभी, मन नहीं करता?

क्यों मिलती, क्यों मन करे? वह रखे अपने बच्चे को और पाले, मुझे क्या! मरने पर तो कुत्ते को भी लोग घसीटकर एक तरफ कर देते हैं। मेरा भी जो होगा, सो देखा जाएगा। अचानक जब ऑटो ऐन घर के सामने रुका तो अरु जैसे तन्द्रा से जगी।

पैसे चुका कर घंटी बजायी। दरवाजा खुलने में देरी हुई। क्या पता वसु नहा रहा हो! दरवाजा खुला तो सचमुच वसु बालों को पोंछ रहा था। अरु पर्स रखकर बाथरूम की तरफ दौड़ी। पहले नहा ले, फिर कुछ करे। आज वसु से ही कहेगी कि ड्राप कर दे, वरना वह तो उससे पहले दफ्तर चली जाती है। लेट लगेगा तो देखा जाएगा।

नहाकर चेंज करके आयी तब तक वसु ने दोनों के लिए नाश्ता लगा दिया था। अरु को प्यार उमड़ आया वसु पर। चाय पीते हुए बोली, ओह चाय पीने को तरस गयी। वसु ने पोहा बनाया था, चटनी के साथ खाने लगी तो महसूस हुआ, पता नहीं कब से भूखी थी!

सहायिका ने काम निपटाया तो वसु और अरु गाड़ी में बैठे। कल कितने पैसे खर्च हुए यह भी बताया। आज भी नर्स के फोन के बारे में।

वसु देर तक कुछ सोचता रहा, तुम्हारी दोस्त है, लेकिन जिम्मेदारी हम भी कितनी उठा पाएँगे! क्या पता कमरा कितने

का है। मीनाक्षी ने कितने पैसे दिये हैं?

उसने शायद कुछ नहीं दिया, तभी तो माँग रहे हैं, अरु ने गुस्से से कहा। वैसे भी दोस्त भी किस बात की! कभी-कभी ही तो मिलना हुआ। इतने सालों में मैं तो बस एक बार उसके घर गयी। वह इन सालों में न जाने कितनी बार आई!

वैसे भी तुम्हारे पास इतना टाइम भी कहाँ है? रात-दिन तो लगी रहती हो। मेरी नौकरी ऐसी है, एक पाँव यहाँ तो एक कहीं और।

तुम्ही बताओ मैं क्या करूँ? मीनाक्षी से सहानुभूति भी होती है, लेकिन ऐसा भी क्या कि कोई इस बुरे वक्त में देखभाल तक करने वाला नहीं। कल उसकी भतीजी को फोन किया था। उसने भी ज्यादा इंट्रेस्ट नहीं दिखाया।

ऐसे समय तो सब बचते भी हैं। वैसे भी कोई भी रिलेशनशिप दोनों तरफ से चलता है।

तो मैंने कौन-सा उसका ठेका लिया है?

अरु उतरने लगी तो विकास ने मुस्कराते हुए कहा, मैडम, अपना कन्धा जरा सोच-समझकर थमाया करो। अकसर लोग तुम्हारे कन्धे को आँसू बहाने के लिए ढूँढ़ लेते हैं और निकल लेते हैं।

मैं इतनी परेशानी और उलझन में हूँ और तुम्हें मजाक सूझ रहा है!

दफ्तर पहुँची अरु तो बॉस ने बुला लिया- महेश कह रहा था कि तुम अभी तक नहीं आयीं। अरु उसे पूरी बात बताती कि किसी का फोन आ गया। उसने अरु को बाहर जाने का इशारा किया तो उसे लगा, बाप रे आज तो इस खड़ूस से बाल-बाल बची। उसने बैग मेज पर रखा और महेश से पूछने लगी तो वह बोला, आई स्वीयर, मैंने कुछ नहीं कहा। मैं तो खुद आज देर से आया हूँ। बॉस शीशे में से देख रहा था, कान पर फोन लगा था। अरु को महेश की बात सच लगी। बॉस अकसर ही ऐसा करता है जो बात खुद कहनी होती है, उसे दूसरे का नाम लगाकर कहता है।

कम्प्यूटर खोल कर बैठी थी कि आई तमाम मेल्स पर नजर पड़ी। उनके जवाब देते लंच का वक्त हो गया। लंच तो था नहीं मगर अरु ने कैंटीन से सैंडविच मँगा लिया। रह-रहकर उसे मीनाक्षी का खयाल आ रहा था। पता नहीं अब कैसी है! उस-जैसी जिन्दगी भी किसी को क्यों मिलनी चाहिए। क्यों चुननी भी चाहिए। अकेलापन कितना भयावह होता है, इसे कोई नहीं बताता। सब अकेलेपन को आजादी कहते हैं, लेकिन यह आजादी काश हमेशा बनी रहती! जब कोई मुसीबत आती है तो अकेले लोग उसी तरह दूसरों के भरोसे हो जाते हैं जैसे कि मीनाक्षी।

तभी उसे खयाल आया, मीनाक्षी के दफ्तर फोन करके उसके बेटे के बारे में पूछे, शायद किसी को पता हो। किसी को कभी बताया हो।

अरु ने फोन किया। अपना नाम बताया, फिर फोन पर आये इंसान का नाम पूछा। वरुण बोल रहा था। उसे बताने लगी तो वह बोला कि वह तो ज्यादा कुछ नहीं जानता। हो सकता है, तुषार को पता हो। फोन पर तुषार कहने लगा कि उसे मीनाक्षी की फैमिली के डिटेल्स नहीं मालूम हैं।

क्या किसी ऐसे से बात करा सकते हैं जिन्हें मालूम हों?

उसने कहा, शायद एच.आर. को पता हों।

आप वहाँ बात कर लेंगे?

मैं तो बात नहीं कर पाऊँगा, वे पता नहीं क्या समझें! किसी के पर्सनल डिटेल्स आसानी से बताते नहीं हैं, लेकिन नम्बर देता हूँ, आप बात कर लें। शायद आपको बता दें।

दिये नम्बर पर अरु बात करने लगी। शीरीन नाम की लड़की बोल रही थी। उसने कहा, ठीक है। वी आर सॉरी कि मीनाक्षी की तबियत खराब है। अभी तो एक मीटिंग में जाना है। लौट कर मैं उनकी पर्सनल फाइल चेक कर लूँगी। हो सकता है, वहाँ कुछ डिटेल्स मिल जाए। आप शाम को फोन कर लें। मीनाक्षी ने शीरीन को थैंक्स कहा और उसका नम्बर सेव कर लिया।

जैसे-जैसे शाम नजदीक आ रही थी, अरु का दिल घबरा रहा था। क्या पता फिर से जाना पड़े! पता नहीं वह नीरू भी आई कि नहीं और उसकी पीठ थी कि तड़क रही थी। कह रही थी कि लेट जाओ लेट जाओ और काम था कि सामने मुँह बाये खड़ा था।

तभी अस्पताल से फिर फोन आया। नर्स कुछ कहती, उससे पहले अरु ने पूछा, मीनाक्षी से मिलने कोई आया?

हाँ आई थी एक लेडी। खुद को भतीजी बता रही थी, लेकिन रुकने से मना कर रही थी। नम्बर माँगा तो वह भी नहीं छोड़ा। बिल के लिए कहा तो मना कर दिया। कह दिया कि कार्ड घर भूल आई और इतना कैश नहीं है। यानी कि बिल भरने की जिम्मेदारी अरु की ही है। हद है ये तो! क्या पता उसके बेटे को पता चले तो आ ही जाए!

पता तो तब चले जब कोई जानता हो कि वह कहाँ रहता है, क्या नम्बर है! एक दिन अरु ने मीनाक्षी से कहा था कि तू अपने बेटे से तो कम से कम एक बार मिल लेती। क्या वह तेरा बच्चा नहीं तो उसने थप्पड़ की तरह उसके ही मुँह पर दे मारा था- मेरा कोई नहीं। इमोशनल फुलिशनैस के दिन बीत गये। तेरी तरह नहीं हूँ।

क्षमा शर्मा

जन्म : 5 जनवरी 1956

शिक्षा : एमए, पी-एच डी.

प्रकाशित कृतियाँ : काला कानून, कस्बे की लड़की, घर-घर तथा अन्य कहानियाँ, थैंक्यू सद्दाम हुसैन, लव स्टोरीज, इक्कीसवीं सदी का लड़का, नेमप्लेट, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, लड़की जो देखती पलटकर, बात अभी खत्म नहीं हुई, पराँठा ब्रेकअप (कहानी-संग्रह); दूसरा पाठ, परछाईं अन्नपूर्णा, शस्य का पता, मोबाइल (उपन्यास); स्त्री का समय, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, औरतें और आवाजें, बन्द गलियों के विरुद्ध, बाजार ने पहनाया बारबी को बुर्का, समकालीन स्त्री विमर्श (स्त्री-विषयक पुस्तकें); व्यावसायिक पत्रकारिता का कथा-साहित्य के विकास में योगदान (पत्रकारिता-विषयक) आदि पुस्तकें प्रकाशित। बच्चों के लिए भी लेखन। बच्चों की अनेक पाठ्य-पुस्तकों में कहानियाँ शामिल।

हिन्दुस्तान टाइम्स की बाल-पत्रिका 'नन्दन' से 37 वर्षों तक सम्बद्ध रहीं। कार्यकारी सम्पादक के पद से अवकाश-प्राप्त।

पुरस्कार/सम्मान : सूचना व प्रसारण मन्त्रालय का पहला लेखिका सम्मान : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्मान, हिन्दी अकादेमी, दिल्ली द्वारा तीन बार पुरस्कृत, साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार।

सम्पर्क : 17-बी/1, हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091; मो. 9818258822

ऐसा भी क्या! इतनी कड़वाहट लेकर तो हम जी नहीं सकते, वह भी अपने बच्चे के साथ। वैसे भी उन लोगों का पक्ष क्या मालूम! इसकी अपनी शिकायतें हैं, उनकी अपनी होंगी।

सुबह वसु ने शायद ठीक कहा था। उसे अपने कन्धों को उखाड़कर फेंक देना चाहिए। किसी बीमार को क्या वह रात-दिन देख सकती है? उसके अस्पताल के लाखों के बिल भर सकती है, जबकि उसका अपना बेटा हॉस्टल में रहता है, जिसका भारी खर्चा है और सैलरी है कि डिफीकल्ट टाइम्स के नाम पर अकसर बढ़ती ही नहीं।

लेकिन मीनाक्षी और उसके दफ्तर वालों, दोस्तों-परिचितों को इससे क्या! खुद तो भुगत रही है। अस्पताल वाले मुझे फोन कर रहे हैं। उसने वसु को बताया था, तुम तो दूसरे कमरे में तैयार हो रहे थे, चाय पीना चाहती ही थी कि नर्स का फोन आ गया कि आपकी दोस्त को आई.सी.यू. में शिफ्ट करना पड़ेगा, हिचकियाँ नहीं रुक रही हैं। मैंने कहा तो कर दो, तो उसने कहा– आकर पहले बिल पेमेंट भी कर दें। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ!

तभी फोन बजा। रोहन था– आ गयीं अस्पताल से? क्या हाल है आपकी फ्रेंड का?

तुझे कितने बताया?

पिताश्री ने, और कौन बताता? आपने भी नहीं बताया। देखो माँ, उतना ही करो किसी के लिए जितना कर सकती हो। खुद बीमार पड़ीं तो क्या होगा? मैं भी नहीं हूँ वहाँ।

यह वसु भी, न बताता तो कुछ बिगड़ता उसका! अब हर समय रोहन भी जान खाएगा। अगर पीठ दर्द के बारे में पता चलेगा तो और बिगड़ेगा। सबकी थानेदारी अरु पर ही चलती है, करो भी और सुनो भी।

जाए न जाए, यही हाल रहा तो दर्द से बुखार आ जाएगा, जैसा कि अकसर होता है। क्या पता मीनाक्षी ठीक हो जाए, तो अपने घर जाने की बजाय अरु के घर आने की ही जिद करने लगे। फिर यह भी सोचने लगी कि अगर अपने परिवार के किसी के साथ ऐसा होता तो क्या यही करती? लेकिन परिवार और बाहर वाले में कुछ तो फर्क होता है! मीनाक्षी अकेली है। कोई देखभाल करने वाला भी नहीं। मगर यह चुनाव उसका अपना था। उसके पति के पक्ष के बारे में तो बस उतना ही पता है जितना मीनाक्षी ने बताया। क्या पता उस पर क्या गुजरी हो! इन दिनों पुरुषों का पक्ष कोई देखना भी नहीं चाहता, सबको औरतों की कहानियाँ सच लगती हैं, जिनमें कई बार कितना नमक-मिर्च और अतिशयोक्ति भी होती है।

साढ़े चार बजे अरु ने फोन किया तो शीरीन ने बड़ी शालीनता से मीनाक्षी के बेटे का नाम बताया– ईशान। लखनऊ का पता भी दिया, लेकिन वहाँ फोन नम्बर नहीं था। अब क्या हो! क्या पता बेटा लखनऊ में है कि नहीं। ऐसे में क्या करे? क्या आज रात भी अस्पताल में जाना पड़ेगा? हिम्मत तो अभी से जवाब दे रही थी, स्टूल पर रात काटना तो बहुत दूर की बात थी!

दफ्तर से निकलने लगी तो बॉस ने इशारे से बुलाया, कल जल्दी आ जाइए।

उसने हाँ में सिर हिलाया और वसु को फोन किया। उसने कहा, ठहरो मैं आता हूँ। साथ ही घर चलेंगे।

थोड़ी ही देर में वसु गया। अरु ने गाड़ी में बैठते ही कहा, मीनाक्षी के पास कोई नहीं। उसकी भतीजी तो देर से आएगी। बिल पेमेंट के लिए बार-बार अस्पताल से फोन आ रहा है।

तुम क्या चाहती हो?

मेरी तो समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। इतने पैसे हमारे पास कहाँ हैं? इतना टाइम भी, रात-भर बैठने से पीठ में तेज

दर्द है। ऊपर से बॉस ने कल जल्दी बुलाया है। आज थोड़ी देर से क्या गयी कि सुना दिया, फिर अरु ने एच.आर. से हुई बात के बारे में बताया।

चलो घर पहुँचकर ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। लखनऊ पुलिस को टैग कर दें तो शायद कुछ हो जाए। वैसे मेरा एक क्लास फैलो भी वहाँ रहता है। हो सकता है, उसे पता हो।

क्या? मीनाक्षी के बेटे का नम्बर?

नहीं, वह जगह जहाँ का पता दिया है।

रास्ते में अरु इस गिल्ट से भरी रही कि मीनाक्षी अकेली है और न जाने किस हाल में है।

वसु ने कहा, देख रहा हूँ बहुत उदास और परेशान हो।

समझ में नहीं आ रहा। आज गयी नहीं, पता नहीं उसके पास कौन होगा! आखिर उसने मेरा नाम किसी उम्मीद से ही तो अस्पताल को दिया होगा।

ये तो है। ये भी है कि उसे पता होगा कि कोई और नहीं आने का।

यही तो सोच रही हूँ। उसके ऑफिस के एक आदमी ने यह तक नहीं कहा कि वह आकर हाल-चाल भी पूछ लेगा। किसी दोस्त को मालूम है या नहीं। मालूम हो भी तो सबके अपने-अपने काम और बहाने भी हो सकते हैं। अगर बिल नहीं दिया तो क्या पता अस्पताल वाले इलाज बन्द कर दें। उसे स्ट्रेचर पर हॉस्पिटल के वरांडे में डाल दें।

ऐसा थोड़े ही होता है!

होता है। अस्पताल बॉडी तक नहीं देते पेमेंट न करो तो।

खैर, चल कर देखते हैं। उसके घर वालों का कोई पता-ठिकाना मिल जाए। चलो मैं तुम्हें तुम्हारी पसन्द का गाना सुनवाता हूँ, और वसु ने हाय गजब एक तारा टूटा लगा दिया।

लेकिन अरु के कानों में वो गाना पड़ ही नहीं रहा था। उसे लग रहा था कि रास्ते में उतरकर अस्पताल चली जाए। जितने का भी हो, बिल पे कर दे। देखा जाएगा। सोच लेगी कुछ दिन नौकरी नहीं की। क्या करे! घर पहुँच कर वसु ने कहा, खाना बाजार से मँगा लेते हैं। तुम सोई नहीं हो रात-भर। खाना खाकर सो जाओ। कल सोचना कि क्या करना है।

अरु कपड़े बदलने गयी तब तक वसु ने लखनऊ पुलिस को मीनाक्षी के बेटे का नाम और पता तथा यह भी कि उसकी माँ बीमार है, टैग कर दिया। अर्जेंट है। अपने दोस्त को मिलाया तो वहाँ से सुनाई देने लगा कि यह नम्बर मौजूद नहीं है। साला जब जरूरत हो तो नम्बर अकसर मौजूद नहीं होते। वैसे भी इस दोस्त से सालों से बात भी तो नहीं हुई, उसने सोचा। फिर ऑनलाइन खाना भी ऑर्डर किया था। कपड़े बदल कर आया तब तक पुलिस का मैसेज और मीनाक्षी के बेटे ईशान का फोन मिल चुका था। वसु जोर से चिल्लाया- मिल गया, मिल गया। आश्चर्य हुआ था, उसे पुलिस की तत्परता से। उसने पुलिस को थैंक्स का मैसेज भी भेजा था।

अरु ने पूछा, क्या? क्या मिल गया?

मीनाक्षी के बेटे का नम्बर।

थैंक गॉड! समझो कि मुश्किल आसान हुई। उसने फौरन नम्बर मिलाया तो उधर से एक भारी-भरकम आवाज गूँजी। अरु ने पूछा, ईशान बोल रहे हो।

जी, मगर आप कौन?

मैं मीनाक्षी की दोस्त अरुणिमा बोल रही हूँ। वह बहुत बीमार है। आई.सी.यू. में है।

उधर कुछ देर खामोशी छायी रही, फिर आवाज सुनाई दी, आंटी मैं तो एअरपोर्ट पर हूँ। दो घंटे में मेरी फ्लाइट है। ऑफिस के काम से यू.एस. जा रहा हूँ।

अच्छा, अरु का स्वर डूब-सा गया। कोई और है जो आ सकता हो?

कौन आएगा?

तुम्हारे नाना-नानी, मौसी, मामा, दादा-दादी, पापा।

दादा-दादी तो हैं नहीं। बाकियों से मेरा कोई सम्पर्क नहीं। रही बात पापा की तो पापा से तो शायद वह मिलना भी न चाहें।

थोड़ी देर पहले की वसु की खुशी मिट्टी में मिल गयी थी। अरु ने सिर थाम लिया और वसु को जो बातचीत हुई, उसके बारे में बताया।

वसु भी थोड़ा-सा चिन्तित हुआ। अब क्या हो सकता है! पुलिस को आखिर नम्बर किसने बताया होगा?

शायद उसके हस्बैंड ने। तो क्या उसके हस्बैंड का नम्बर माँगे, लेकिन नाम भी तो नहीं पता।

एच.आर. की फाइल में भी सिर्फ बेटे नाम ही मिला था।

ऐसा कैसे हो सकता है कि हम इतना अकेलापन चुनें कि किसी से हमारा वास्ता ही न हो और जिम्मेदारी हमारे-जैसे लोगों के कन्धों पर डाल दी जाए। आखिर दुनियादारी भी कोई चीज होती है, अरु ने नाराजगी से कहा।

देखो भई, रिश्ते रेसीप्रोकल होते हैं। आप निभाएँगे तो दूसरा भी निभाएगा, वरना तो किसी को क्या पड़ी! बीमारी का नाम सुनकर तो जिम्मेदारी आने के डर से वैसे ही सब दूर भागते हैं।

घर की घंटी बजी तो खाना लेकर एक लड़का आया। वसु ने थैंक्यू कहते हुए खाना लिया और रसोई में जाकर परोस भी दिया, लेकिन अरु का खाने का बिल्कुल मन नहीं था। वसु के आग्रह पर खाने लगी। आज रोहन से भी बात नहीं करना चाहती

थी। अकसर शाम को बात करती है, लेकिन क्या बात करे! वह भी तो यही कहेगा कि तुम्हारी क्या जिम्मेदारी है। तो क्या मीनाक्षी को मरने के लिए यों ही छोड़ दे? कैसे आँखें मूँद ले? वह भी जब सब पता हो। उसकी देखभाल के लिए इंसान क्या इंसान का बच्चा तक न आता हो। प्लेट समेटते उसने वसु से कहा– अब कल जाना ही पड़ेगा।

चली जाना। जो ठीक लगे करो, मगर इस तरह परेशान होकर अपनी तबियत और खराब होगी। टीवी ऑन कर दूँ? भइया (अर्णव) को देख लो, बेटे को देखो। उसके लिए मरती माँ के मुकाबले यू.एस. जाना ज्यादा जरूरी है।

अब हम कौन होते हैं जजमेंट करने वाले? क्या पता उसे क्या काम है! वैसे भी मीनाक्षी ने उससे कभी कोई सम्बन्ध रखा भी तो नहीं। माँ को जानता तो कुछ सोचता।

ताज्जुब है, पति से नाराजगी समझी जा सकती है मगर बेटे से? फिर दफ्तर में उसने उसका नाम क्यों लिख रखा है?

अब यह तो वही जाने।

वह क्या जानेगी? उसे तो कुछ पता ही नहीं। कल से आज तक मुझ पर क्या गुजरी, मैं ही जानती हूँ।

अगले दिन दफ्तर से हाफ लेना था। बॉस कुछ अच्छे मूड में था। उसने हाँ कह दिया। अरु ने बाहर निकलकर ऑटो लिया। कुछ राहत-सी भी महसूस की।

अस्पताल में पहुँची तो दूसरी नर्स थी। उससे पूछा तो उसने हाथ हिला दिया।

मतलब?

उसने ऊपर की तरफ इशारा किया। यानी कि मीनाक्षी नहीं रही। घबरा गयी अरु। रोना भी आने लगा। उसने वसु को फोन किया। वह बोला, ठहरो अभी आता हूँ। जैसा कि होना था, अरु बाहर ही बैठ गयी। थोड़ी ही देर में स्ट्रेचर पर मीनाक्षी को लाया गया। चेहरे पर शान्ति, जैसे किसी तकलीफ से गुजरी ही नहीं। चलो दूसरों को भी मुक्ति मिली। यहाँ महीनों दौड़ना पड़ता तो क्या होता! इसके जीवन का किसी को इन्तजार भी तो नहीं था, शायद इसे भी नहीं।

लेकिन एकाएक सब कैसे हुआ? सिस्टर से भी अब कुछ पूछने का क्या फायदा!

सिस्टर ने पूछा, आप इनकी कौन हैं?

वैसे तो बस दोस्त हूँ।

तो बाडी कौन लेगा? बुलाइए किसी घर वाले को।

जी मैं इनके घर वालों को नहीं जानती।

उसकी बात सुन कर नर्स भी कुछ परेशान हुई और दूसरी नर्स जो फाइल में कुछ लिख रही थी, उससे धीरे-धीरे कुछ कहने लगी।

तभी एक डॉक्टर आ पहुँचा। नर्स ने उससे कहा तो डॉक्टर बोला, बाडी तो किसी घर वाले को ही दे सकते हैं। कल को वे हम पर ही कोई केस कर देंगे तो हम क्या करेंगे?

कुछ देर में वसु आ जाएगा। अरु ने सोचा, फिर मीनाक्षी के दफ्तर शीरीन को फोन किया।

शीरीन बोली, मैम इसमें हमारा तो कोई रोल नहीं बनता। हम तो सिर्फ कंडोलेंस ही कर सकते हैं, बाकी जिम्मेदारी तो फैमिली की बनती है।

यह एक और मुसीबत आ खड़ी हुई, तभी नर्स बिल थमा गयी। अरु ने उसे खोल कर भी नहीं देखा।

वसु आया तो उसने भी बहुत से लोगों बात की, लेकिन उन्होंने भी वही दोहराया जो अरु से कहा था।

लेकिन मान लीजिए किसी का कोई न हो तो क्या करेंगे?

इसके लिए पुलिस से बात करनी पड़ेगी।

तो क्या थाने जाना पड़ेगा? अरु को थाने और पुलिस से बड़ी घबराहट होती थी।

वसु ने कहा, तुम यहीं ठहरो। मैं होकर आता हूँ। फोन करूँगा।

यहाँ सिग्नल भी तो ठीक से नहीं आते।

कोई बात नहीं, बाहर आ जाना।

वसु चला गया तो ही अरु को लगा कि मीनाक्षी के मुँह पर थप्पड़ ही थप्पड़ मारे। खुद तो चली गयी, सब बातों से छुटकारा मिल गया। यहाँ मारे-मारे फिर रहे हैं, बिना मतलब। माँ कहती थी, लोहे को जितना पीटो शेप में आता है। कठोर, मतलबी आदमी-औरतों के बारे में भी शायद यही सच है।

और उसे एकाएक खयाल आया। चाहे जितना कर ले, दुनिया कौन-सा मुकुट बाँधने वाली है! करे जो जिसे करना है। उसने वसु को फोन किया। कहा, वह भी आ रही है।

वसु नीचे ही मिल गया।

नीचे उतर कर उसने सामने जाते ऑटो को रोका और घर पहुँच कर सबसे पहले सिम बदल लिया। पुराना नम्बर बन्द कर दिया। अब करते रहें, अस्पताल वाले फोन। वह क्यों जवाब दे किसी को, जब न बेटे को चिन्ता है, न किसी और को? वह भी क्यों स्वार्थी बिग्रेड में शामिल नहीं हो सकती? मीनाक्षी तो अब है नहीं जो कह सके कि तू ऐसे वक्त में भी नहीं आई। भुगतें अस्पताल वाले और पुलिस।

तीसरी के बाद चौथी, पाँचवीं, दसवीं कसम अब किसी से दोस्ती करना तो दूर, दोस्ती का नाम अपनी जुबान पर नहीं लाएगी। टु हैल विद इट! ❑

कहानी

लेट इट बी

रजनी गुप्त

कभी-कभी अन्दरूनी रिश्तों के महीन रेशे आपस में इतने गुत्थमगुत्था हो जाते जिनकी गाँठें वे चाह कर भी सबके सामने नहीं खोल पाते। सच तो यह था कि किसी भी रिश्ते को भावनाओं की गहराई तक ले जाने की फुर्सत उनमें से किसी के पास नहीं थी। वे सब-के-सब तात्कालिकता में जीने के आदी थे। देन एंड देयर, जो करना हो, तुरन्त करो या जो कहना हो, झटपट कह डालो, यही जीवन शैली थी। सच का दूसरा पहलू बिल्कुल दूसरा था, यानी ऐसा भी नहीं कि वे इतनी हड़बड़ी में थे कि जिन्दगी जीना नहीं जानते थे, बल्कि वे किसी भी रिश्ते में पूरी तरह डूबकर जीकर ही उस रिश्ते से बाहर निकलते। एक साथ कई सारे रिश्तों को निभाते साधते हुए वे एक ही रिश्ते में ताजिन्दगी बँधे रहने की सोचकर थोड़ा-सा डरने लगते। पता नही, कब उनका मन बदल जाए? मन न मिलने पर वे फिर से किसी और के संग रिश्ते में चले जाते। जितनी जल्दी वे किसी एक रिश्ते से टूटकर दूसरे में जाते, उतनी ही जल्दी उस रिश्ते से ऊबकर पहले में लौट आते या मन न मिले तो कहीं अन्यत्र निकल लेते।

जाती सर्दियों के गुनगुने दिन थे वे, जब अरसे बाद बाहर चमकती धूप-भरे आकाश में हवाखोरी करने निकल पड़े चन्द लोग। अनायास मॉल में टकरा गये दोनों कॉलेज के जमाने के दोस्त। शुरुआती हाय-फाय के बाद– चलकर एक-एक कॉफी हो जाए, कहते हुए वे लापरवाह मुद्रा में अपनी-अपनी जेबों में हाथ ठूँसे कॉफी टेबल पर बैठकर अपने-अपने सुख-दुख बाँटने लगे। रेस्तराँ में चारों तरफ आवाजें ही आवाजें एक-दूसरे से टकराते हुए शोर में तब्दील होने लगीं– ''अरे, इससे बेहतर तो पहले वाली थी, फिर चाहे वो नौकरी हो या अजीज दोस्त, है न? यही है आज का सच।'' संकल्प ने मानसी की आँखों में देखते हुए पूरे इत्मीनान से अपने विगत के अनुभव के टुकड़े फेंकने चाहे।

''सच्ची में, कितनी सारी बातें, कहे अनकहे एहसास, गुजर गया शानदार वक्त।'' कहते हुए एक लम्बी साँस भरी।

''हाँ, यही है आज की हकीकत। सच कड़वा होता है। पता नहीं कब और कैसे जहरीले बनते जाते हैं गहरे दोस्त। वैसे हर समय के सच अलग-अलग चेहरे लेकर आते हैं। इस समय का सच यही है कि मेरे अन्दर देर-सवेर अपना घर-परिवार बसाने की इच्छा धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगी थी। जब एक बार अपनी गर्लफ्रेंड के साथ एक्सपेरिमेंट करके घर बसाकर भी चैन नहीं मिला तो हम पहली वाली, दूसरी वाली या किसी और का संग-साथ पाने के लिए तड़प उठते। कहीं न कहीं, कोई न कोई टकरा ही जाता और फिर उसे लेकर दो-तीन समानान्तर दुनिया में विचरते हुए दिन-रात बीतने लगते। फिर वही नशा, पहले जैसे प्यार का जादू जगाने की कोशिशें। फिर जल्दी से सबकुछ पहले जैसा भरा-भरा लगने लगता। अपने-अपने खयालों संग, सिर्फ अपने साथ।'' प्रकट रूप से वह बोल कुछ और रहा था, बोलना कुछ और चाहता था, जबकि दिमाग में ठकठका रही थीं वही पुराने समय वाली मानसी संग होती मस्ती भरी बातें।

''हम्म!'' मानसी ने हुंकारा भरा तो संकल्प ने अपने बारे में बोलना शुरू किया, तो एक नयी सचाई सामने आई– 'लैट इट बी, डोंट वरी!' एक साथ बोलते हुए दोनों ठठाकर हँस पड़े।

''आज हम दोनों अपने-अपने जीवन के पुराने पन्ने पलटेंगे। क्यों न वहीं से शुरू किया जाए, जब हमने एक साथ एक ही दफ्तर में ज्वाइन किया था, तब से दुनिया कितनी तेजी उलट-पुलट गयी। पूरे दस साल सर्र-से निकल गये। हैं न?''

''हाँ, गुजरते समय का एहसास ही नहीं हो पाता।'' अपने मोबाइल को अनमनेपन से देखते हुई मानसी बोली।

''चल मोटी, आज पहले तू अपना हाल सुना। अपनी रामकहानी बताने के लिए कितनी बेसब्र हो रही होगी, जानता हूँ तेरा स्वभाव।'' संकल्प ने लाड़ से मानसी की तरफ देखते हुए उसके मन की थाह लेनी चाही।

''ऐ, आज सालों बाद किसी ने मुझे कॉलेज के नाम से

पुकारा है, अच्छा लगा।'' मानसी ने बड़े लगाव से संकल्प की तरफ मुस्कराते हुए देखा।

मानसी की तो जैसे मन की मुराद पूरी हो गयी, सो बिना रुके बोलना शुरू किया– ''कितना कुछ इतनी आसानी से परे झटककर वह बन्दा अपने रास्ते चलता बना। मैं पागलों की तरह चाहती, सो मैं ही उसे बार-बार कॉल करती, कभी उसका फोन डिस्कनेक्ट हो जाता या कभी नम्बर बदल दिया जाता। अचानक से सम्पर्क खत्म तो फिर सबकुछ खल्लास। जैसे तार में बहते करेंट को किसी ने बीच में ही बेरहमी से काट दिया हो, जिसे अनजाने में छूकर जिसके शॉक से मैं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ती। पर बन्दे को इसकी कोई खैर-खबर तक नहीं, न ही खबर देने वाला कोई सम्पर्क सूत्र बचा रहता। तब तक वो हमसे बहुत दूर जा चुका होता।'' मानसी ने अपने पुराने बीएफ के बारे में खुलकर बताना शुरू किया।

चित्र : कबीर राजोरिया

''नीरव के साथ पहले मेरा भावनात्मक रिश्ता बना, जो बाद में कुछ-कुछ फिजिकल होता गया। हम अक्सर अपने नजदीकी दोस्त में कोई न कोई मजबूत आधार खोज लेते हैं जो एक मजबूत खम्भे की तरह काम करता है, जिस पर सिर टेककर हम बेफिक्र हो सकें, जैसे घर के सामने पार्क में बीचों-बीच बने लोहे के खम्भे पर टिककर हम गोल-गोल घूमा करते थे, शर्त यही कि कोई उस खम्भे को छुएगा नहीं और छूते ही गेम से बाहर। कभी न कभी हमें कोई न कोई अच्छा-सा लड़का टकरा ही जाता है जिसके इर्द-गिर्द हम चक्कर काटते रहते, मगर गेम की शर्तों को भूल जाते कि कोई उसे छुएगा नहीं। हम न केवल उसे छूते हैं, बल्कि पकड़ते भी हैं और सिर टिकाकर सोचने लगते कि इसे छूते ही यह मेरे सारे दुख हर लेगा। सारी कमियों को चुटकी बजाते ही जादूगर की तरह उड़न-छू कर देगा। पर सचमुच ऐसा होता तो है नहीं, बल्कि उसे लेकर तमाम तरह की आशंकाएँ, डर और असुरक्षाएँ सिर उठाने लगतीं। जैसे ही उसे कोई और संगी-साथी मिलता या किसी और के साथ उसे घुलते-मिलते देखती, मन बेचैन हो उठता। अजीब तरह की छटपटाहट, असुरक्षा और घबराहट घेरने लगती।'' सोचते हुए बोलते-बोलते वह एकाएक चुप हो गयी।

''सही कह रही हो मानसी। आई स्टिल मिस यू, योर फिलॉस्फिकल वे ऑफ थिंकिंग, योर सिंसयरिटी एंड टेलेंट। तेरे इंटेलेक्चुलअॅलटी पर कभी खुलकर कह नहीं पाया। खैर, तू सुना, आजकल दफ्तर में क्या चल रहा है? अभी भी तू वही एचआर काउंसलिंग का काम कर रही है या नया कुछ? तेरे साथ उस नौकरी में हमने उस समय कितना इंजॉय किया मगर जब से उस नौकरी को छोड़ा, उस दफ्तर के बारे में कुछ पता ही नहीं चल पाता। कुछ सुना न, नया क्या चल रहा है? वहाँ की कन्याओं के हालचाल...'' रहस्यमय अन्दाज में आँखें मटकाते हुए पूछने लगा वह।

''हाँ, मेरा वही काम है, मगर अब माहौल काफी कुछ बदल गया है। नयी लड़कियाँ आ गयी हैं जो खूब तेज-तर्रार हैं, बदतमीज भी कम नहीं। चलो, आज तुम्हे दफ्तर की कुछ सच्ची बातें सुनाती हूँ, लिसन केयरफुली– दफ्तर में नयी लड़की परिधि ने कुछ महीने पहले एडहॉक पर ज्वाहन किया जिसे सभी शॉर्ट में पारू कहकर बुलाते। देखते-देखते वो देवदास की पारो में तब्दील होती गयी। काम में चुस्त, देखने में मस्त, गोरी, थोड़ा भरा बदन और तीखे नयन-नक्श, मगर कम बोलने वाली। जल्दी ही वह उनके बीच घुल-मिल गयी। वह पहली नजर में सीधी-सादी टाइप लगी, थोड़ी-सी भोली-भाली। काम जरा स्लो करती पर करीने से करती और बॉस की नजरों में भी जल्दी ही भा गयी, जबकि वह अपने में सिमटी-सिकुड़ी गठरी की तरह थी जिसे खोलना आसान नहीं। कुछ दिन बाद पता चला– उसका जॉब किसी और को दिया जा रहा है, सुनते ही वह सीधे मेरे पास धड़धड़ाते हुए चली आई– आपको पता, बॉस ऐसा क्यों कर रहा है?''

मैंने सीधे-सीधे पूछ लिया– ''क्यों? प्रपोज किया था क्या?''

''एक दिन देर होने पर केबिन में बुलवाकर कहने लगा– आज शाम को क्या कर रही हो? खाली हो? पहले तो कुछ समझ में नहीं आया, यानी कोई जवाब नहीं सूझा तो चुप बनी रही। फिर जोर से पूछने लगा– कुछ पूछ रहा हूँ, शाम को फ्री हो? जी सर, जी... हकलाते हुए जवाब दिया। तो वह कहने लगा– सोच रहा था कि आज शाम तेरे साथ मूवी देखने चलूँ। चलेगी न? 'जी, मेरी दिलचस्पी नही।' मैंने हिम्मत बटोरकर कहा। 'तो क्या हुआ? देखने लगोगी तो दिलचस्पी भी हो जाएगी।' वह बोला। 'सर, मेरे पापा वहीं बाहर कार लिये खड़े रहते हैं, वे कहीं बाहर नहीं जाने देते।' बहाना तो कुछ और बनाना चाहती थी, पर हिम्मत नहीं जुटा पायी। 'नॉनसेंस, सब लड़कियाँ एक-जैसी, चालाकी से बहाने पर बहाने बनाकर मना करना। लिसन, आज का प्रोजेक्ट पूरा हो गया कि नहीं? पूरा करके ही जाना, चाहे रात के 9 बज जाएँ।' इस बार बड़ी बेरुखी से बोला।... 'ओके सर।'... 'नाव गो।' गुस्से में दाँत पीसते हुए ऐंठकर बोलता रहा। अब आप ही बताओ मैं क्या करूँ? बड़ी मुश्किल से यह जॉब मिली थी, वो भी एडहॉक, मगर यहाँ से भी हाथ धोना पड़ेगा। घर में सबको यही पता है कि मेरी यहाँ जॉब लग गयी है।'' रुआँसी आवाज में बोली पारुल।

''तू चिन्ता न कर। देखती हूँ, परेशान मत हो। मेरे और दोस्त अच्छी जगहों पर है, कहीं और ट्राई करते हैं। यहाँ तुझे कितना दे रहे थे वे? बीस या तीस हजार?''

''बस बीस, वो भी छुट्टी काटकर।''

''लीव इट, कल ही तेरा सीवी भेजती हूँ कहीं और, वैसे रहती कहाँ है तू?''

''अपने दोस्त के पास। अलग से रहने-खाने की समस्या आ रही थी तो मैंने अगल-बगल में रूम शेयर कर लिया।''

''यानी एक ही फ्लैट में?'' मैंने हैरानी जतायी।

''क्या करती? कोई लड़की मिली ही नहीं। पहले जो भी मिली थीं, उनकी कहानियाँ झेल चुकी। शाम होते ही वे अपने-अपने बीएफ को लेकर देर रात एक ही फ्लैट में हल्लागुल्ला करतीं। एक लड़की तो रात एक बजे तक अपना रूम बन्द करके रखती। हम दोनों लड़कियों से बात तक नहीं करती, जबकि एक ही फ्लैट का किराया हम तीनों शेयर करते। खाने-पीने पर भी झगड़े करती। सबसे मुश्किल यही कि हमारी आँखों के सामने वो अपने बीएफ संग धड़ल्ले से अपने रूम पर जाकर घंटों साथ-साथ पड़ी रहतीं। देर रात दारू पीकर बाहर निकलते देखा कि उसकी चाल से लगता कि नशे में है। मैंने सोचा, यहाँ भी तो वैसे ही रहना, टू रूम फ्लैट। एक मेरा, दूसरा खाली था जो तन्मय ने कह दिया, तू चाहे तो रह सकती है। फिलहाल तो किराया भी नहीं देना पड़ता।'' एक साँस में इतना सारा बक गयी वो।

''ओके, फिर तो रिलेशनशिप स्टेटस भी बदल गया होगा तेरा?'' मैंने आँखों में सीधे सवाल डाल दिया था, जैसे उसकी आँखें किसी एक्सरे मशीन में बदल गयी हों– ''छिपाना कोई अच्छी बात नहीं। रिलेशनशिप में है, नथिंग मैटर्स... पर लड़का सिंगल तो हो ऐट लीस्ट।'' मैंने जोर देकर जानना चाहा।

''आलमोस्ट सिंगल, सबकुछ टूटा बिखरा है आजकल।''

''मतलब? तलाक या ब्रेकअप? पूरी बात बता।''

''तलाक केस चल रहा। अपनी ही गर्लफ्रेंड से शादी की थी, वो भी नहीं चली।''

''अलग-अलग करियर, एम्बीशन या एक्स्ट्रा अफेयर?''

''पूरी बात नहीं पता। कह रहा था कि हम साल-भर से एक ही बिस्तर पर अलग-अलग मुँह करके सोते हैं। ऐसे रिश्ते ढोने से क्या फायदा? दफ्तर से वो आठ बजे लौटती और मैं सात बजे। घर आकर खाना ऑर्डर करते, खाकर सो जाते। दोनों ही अपना-अपना मोबाइल लॉक रखते। उनके बीच कोई कॉमन शेयरिंग नहीं, इमोशनली बॉन्डिंग भी नहीं रही तो धीरे-धीरे दोनों अलग-अलग दिशाओं की तरफ मुड़ते गये।'' पूरी तटस्थता से बताती रही वह।

''और केयर, अटैचमेंट? फैमिली वालों का रिएक्शन?'' मैंने एक साथ कई सवाल पूछ डाले।

''दोनों के पेरेन्ट्स डिस्टर्ब हैं। तन्मय के पेरेन्ट्स का कहना है कि तूने अपनी पसन्द से ऐसी लड़की से की है जो शुरू से ही चालाक लगती थी, पर तूने मेरी एक न सुनी। उनके बैंक खाते भी अलग-अलग, खर्चे भी अलग-अलग यानी साथ में कुछ भी साझा नहीं था? सिर्फ फिजिकल रिलेशन?'' मैं पूछती रही।

''कह रहा था, हमारे बीच साल-भर से रिश्ते तक नहीं बने। कभी उसका मूड नहीं बनता तो कभी मेरा। उसे भी बच्चा पैदा करने की जल्दी नहीं है, मुझे भी। हमारे बीच जब कुछ भी कॉमन नहीं बचा तो क्या फायदा साथ रहने का?'' पारू ने जल्दी-जल्दी सबकुछ बता डाला।

''तू उसकी बातों पर इतना भरोसा कैसे करने लगी? कब से जानती है? कैसे जानती है? हो सकता है, तुझसे झूठ बोलकर चीट कर रहा हो। तुझे पाने के लिए ये सब कहानी गढ़ ली हो। तू सचमुच बेवकूफ है क्या?''

''लिसन, मेरे कजिन का दोस्त था वो, मेरे घर आता-जाता

था। एक बार फिर कहीं कॉमन मैरिज पार्टी में मिल गया। दी, बहुत क्यूट बन्दा है, फोटो दिखाऊँ? शेरो शायरी करता है, तुरन्त कविता बनाकर सुना डालता है, गला भी अच्छा है।''

''अरे-अरे, बस भी करो। तारीफ के इतने कसीदे मत काढ़ो। ये सब लड़कियाँ फँसाने के टोटके हैं, शातिर चालें हैं, खेला रचने के तरीके हैं, लड़कों के ट्रेड सीक्रेट। तू नहीं समझती? ओए बेवकूफ लड़की, फिर अब क्या चल रहा है तेरे बीच? कहाँ तक, किस लेबल तक पहुँचे ये रिश्ते? आगे का भी कुछ सोचा है?''

''आई लव हिम। बहुत मीठी बातें करता है जिसे सुनकर मेरा सारा टेंशन छूमन्तर। कभी कोई भी प्रॉब्लम हो, चुटकियों में फूँक मारकर हँसा देता, हाँ!'' बताते हुए मुस्कराने लगी।

''ये सब बातें किसी और को सुनाना। पहले ये बता, तेरे बीच सबकुछ शुरू हो चुका है न?''

''वो प्यार तो करता है। हमारे बीच रिश्ते तो डेवलप हो गये हैं। हमने शादी की बात भी की है, मगर वो कहता है— एक बार पेरेन्ट्स को हर्ट कर चुका हूँ अपनी पसन्द की शादी करके। अब दोबारा किसी और लड़की की बात करूँगा तो वे मानेंगे नहीं। कहने लगेंगे कि दो-चार महीने बाद तेरा इस लड़की से जी भर जाएगा तो फिर से पंगा करने से कोई फायदा नहीं। ऐसी दोस्ती वाली लड़कियों को वे तभी से नापसन्द करने लगे। देख, तुझसे सब साफ-साफ बता रहा हूँ, कुछ भी तो नहीं छिपा रहा।''

''इतनी साफ बात सुनने के बावजूद तूने उसके साथ रिश्ते बनाये? आश्चर्य है! तू बिल्कुल ही पगला गयी है? तेरा कोई फ्यूचर नहीं उसके साथ, फिर भी तू इतनी इन्वॉल्व कैसे हो सकती है? मन कर रहा है, तुझे एक जोर का थप्पड़ लगाऊँ।'' सचमुच उसकी बेवकूफी पर चिढ़ गयी थी।

''आप गुस्सा न हों प्लीज, मुझे समझने की कोशिश करें। मैं वाकई उसे बहुत पसन्द करती हूँ। कांट थिंक टु लिव बिदाउट हिम, लव हिम!'' बोलते हुए वह रोने लगी।

''मन कर रहा है, तुझे किसी साइक्रेटिक के पास ले जाऊँ जो तेरे इस पागल दिमाग का इलाज करे, कायदे से तुझे समझाए। चलेगी मेरे संग?'' सुनकर वह चुप बनी रही, कुछ बोलते नहीं बना।

''आई नो, इमोशनली कमजोर लड़कियों को उल्लू बनाना इन लड़कों की फितरत है। कहीं ये तो नहीं कि तूने खुद इनीशिएट करके रिश्ते बना लिये हों।'' मैंने कुरेदकर थाह लेनी चाही।

''नो, ही प्रपोज्ड मी। एक्चुअली, वो मुझसे बड़ा है, लगभग दस साल।''

रजनी गुप्त

जन्म : 2 अप्रैल 1963

शिक्षा : एम. फिल, पी-एच डी.

प्रकाशित कृतियाँ : कहीं कुछ और, किशोरी का आसमाँ, एक न एक दिन, कुल जमा बीस, ये आम रास्ता नहीं, कितने कठघरे, नये समय का कोरस, याद जो करें सभी, तिराहे पर तीन (उपन्यास); एक नयी सुबह, हाट बाजार, अस्ताचल की धूप, फिर वहीं से शुरू, ढलान पर धूप, सतह पर चाँद, फ्रेम से बाहर, धुन्ध पार की धूप (कहानी-संग्रह) के अतिरिक्त सुनो तो सही, बहेलिया समय में स्त्री, आजाद औरत कितनी आजाद, मुस्कराती औरतें, आखिर क्यों लिखती हैं स्त्रियाँ (स्त्री-विमर्श से सम्बन्धित पुस्तकें) प्रकाशित। कुछ कहानियों का मराठी, पंजाबी व उर्दू में अनुवाद।

पुरस्कार/सम्मान : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा युवा लेखन सर्जना पुरस्कार, आर्य स्मृति साहित्य सम्मान, अमृतलाल नागर पुरस्कार, कलमकार फाउंडेशन द्वारा अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार, महादेवी वर्मा अवार्ड, साहित्यश्री सम्मान, शिक्षाविद् पृथ्वीनाथ भान साहित्य सम्मान आदि।

सरकारी बैंक में 32 साल मुख्य प्रबन्धक (राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में) पद से सेवानिवृत्ति।

सम्पर्क : 5/259 विपुल खंड, गोमतीनगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश)

मो. 9452295943 / 8318573266

''क्या? साला, अंकल होकर भी लड़कियों को पटाने में लगा है? शादी भी तेरे से नहीं, कहीं और करने की सोचता है। तू अन्धी है, बहरी है और गूँगी भी। बाकी बातें कल करेंगे। फिलहाल तो तेरे दिमाग का बड़ा ऑपरेशन करना पड़ेगा। इतना आसान नहीं है तेरे दिमाग पर इमोशनल भूत का नशा उतारना, ये तो सबसे बड़ी चुनौती है, देखते हैं।''

''मन करता है सब छोड़-छाड़कर कहीं भाग जाऊँ पर कहाँ? उससे नाराजगी होती तो वह सॉरी यार टाइप करके सौ-सौ बार कॉपी करके तब तक भेजता रहता, जब मेरी मेरी स्माइली न पहुँच जाए वरना धमकाता रहेगा कि मैं तेरे रूम पर आकर तुझे उठाकर ले जाऊँगा। मेरी सोना बाबू, मेरी बेबी... मीठी-मीठी बातें न जाने कहाँ से उठाकर चेंपता रहता।''

''तो फिर शादी की बात क्यों नहीं करता अपने घर पर?''

''करूँगा न, वो भी करूँगा। तू सब्र कर। पेशेंस नाम की चीज भी सुनी है न तूने?''

''कभी जब अकेले होती तो उसे मिस करने लगती। सचमुच, इतना प्यार कौन करेगा मुझे? इतना कि सोचकर ही गुदगुदी होने लगती। देह का रोयाँ-रोयाँ चिटकने बोलने लगता और फिर खुद पर नियन्त्रण खत्म होता जाता। हम दोनों प्यार में खुद को खोने देते। कितना प्यार करता तो है, सोचकर शर्म की चिड़िया पलकों पर बैठ गयी और तमाम बातें दिमाग में गोल-गोल घूमकर बवंडर मचाने लगी।''

''तू कहती है न कि वो तेरे से दस साल बड़ा चाचा, ताऊनुमा बीएफ है जो तुझसे साफ-साफ कह रहा है कि एक बार घर वालों का दिल दुखाया अपनी पसन्द की लड़की से शादी करके, राइट? अब वो तुझे उनसे नहीं मिलवाना चाहता, यानी फिर से वह कोई रिस्क नहीं लेना चाहता। यही कहता है न? यानी शादी नहीं करेगा तुझसे। क्लियर? फिर भी तू उसी को भगवान मानकर उसके नाम की माला क्यों जपती रहती है? क्या हुआ? तू रोने लगी। पगली है तू, जैसे रेत पर जबरन पौधा लगाने की निष्फल कोशिश। कितनी मुरझा गयी है तेरी सूरत!'' कहते हुए मानसी ने उसे अपने गले से लगा लिया- ''रोना मत, कतई नहीं। मैं हूँ न? तेरे लिए वही मजबूत कन्धा। जब भी इमोशनल प्रॉब्लम हो, मुझे कॉल करना। एनी टाइम, एनीव्हेयर।''

उसका इन्तजार किया। आँसू थे कि थमते ही नहीं थे, उठकर गर्म पानी में कॉफी मिलाकर ले आई। अरसे बाद मेज पर पड़ी किताब 'गिव एनदर चांस' उलटने-पुलटने लगी। पढ़ते हुए आँखें भर आतीं। जब से उसने फ्लैट छोड़ने का फैसला लिया, भीतरी कमजोरियाँ सिर उठाने लगतीं और नर्वस हो जाती। आई कांट लिव बिदाउट हिम, सुबह से शाम तक दिन-रात का साथ, मोबाइल पर इतनी सारी मैसेजिंग, इतनी बातों पर लम्बे-लम्बे डिस्कसंस कि हमारे टूटे-फूटे दिलोदिमाग पर वह नये सिरे से, नयी बातों से दुरुस्त हो जाते।

''हमारे रिश्ते की मरम्मत करने में वो मास्टर माइंड की तरह पेश आता- हमारी ऐसी दोस्ती तो हमेशा यूँ ही चलती रहेगी। इसमें प्रॉब्लम क्या है? घर वालों को अपनी पसन्द की शादी करने दो, कभी-कभार उससे भी प्यार कर लिया करूँगा। करने देगी न? तू तो हमेशा-हमेशा के लिए मेरे दिल की मलिका-ए-आलम, हमेशा लॉक रहेगी मेरे इस सीने में, रहेगी न यहाँ? ऐ, रोना मत। मुझे कमजोर मत कर। तुझसे कोई छल तो नहीं कर रहा। झूठ भी नहीं बोला, बल्कि ईमानदारी से सबकुछ पूरा सच बता तो दिया।''

''पूरा सच? गलत बात। मुझे अपने संग रात में पास खींचने के लिए तो तूने ही इनीशिएट किया था। मैंने कितनी बार खुलकर मना किया तो था।'' वह रोते-रोते बोलती जा रही थी।

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

बहादुर को नींद नहीं आती
कहानी-संग्रह
धीरेन्द्र अस्थाना

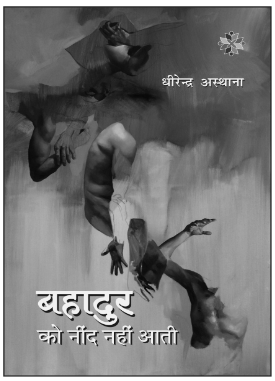

मूल्य ₹ 200/-

धीरेन्द्र अस्थाना की कहानियों की दुनिया इतनी विस्तृत और विविधवर्णी है कि किसी एक उन्वान तले उसे समेटना नामुमकिन है। किसी एक चाबी की तलाश जो सब कहानियों को खोल सके, इन कहानियों के सन्दर्भ में बेमानी है। धीरेन्द्र की अधिकतर कहानियाँ खुद को नवीकृत कर अद्यतन और समकालीन बनी हुई हैं। बेशक इसमें एक 'बशर्ते' जुड़ा है और वह कि उन्हें एक अतिरिक्त सजगता के साथ और दो अलग समयों की संयोजित चेतना से पढ़ा जाए। उनकी कहानियों की दीर्घजीविता और पाठकों का लगातार बढ़ता दायरा इसी की तस्दीक करते हैं। शायद हिन्दी की कम ही कहानियाँ हैं जो इस तरह 'सतत समकालीनता' का दावा कर सकती हैं।

योगेन्द्र आहूजा

''मना करना तो लड़कियों की आदत होती है, उनके नखरे होते हैं, पर तू भी तो इन्वॉल्व हो गयी थी?''

''यानी उस सबके लिए भी तू मुझे ही गुनाहगार ठहरा रहा, टोटली रांग!'' सोचते ही फिर से आँखें भर आई।

''अब इससे ज्यादा बहसबाजी करने से क्या फायदा? जो हुआ, उसका गिल्ट मत पाल। तुझे एक नेक लड़का मिलेगा जिसके साथ तू शादी कर सके। तू डिजर्व करती है कितना कुछ।''

''लगा, जैसे पूरी दुनिया लुट गयी मेरी। सबकुछ टेस्टलेस लग रहा है, फीलिंग टू लोनली।'' बोलते हुए सुबकने लगी वह।

''अरे-अरे, जस्ट चिल यार, सबसे पहले स्टॉप थिंकिंग का बटन दबा। वॉशरूम में जाकर शॉवर के नीचे घंटे-भर बैठ, फिर कॉफी-बिस्किट कुतर, फिर बचेगा एक घंटा। तो जितना मन करे उतनी देर म्यूजिक चलाकर आँखें बन्द करके बैठ जा, जितना बने मेडिटेशन कर, तब तक नौ बज जाएँगे। तैयार होकर इन्टरव्यू के लिए निकल ले। ऑल द बैस्ट डियर। आज शाम को मिलते हैं तेरे से। पक्का।''

''मुझसे ये सब नहीं होगा, मरने का मन कर रहा है।'' बोलते हुए वह फिर से रोने लगी।

''होगा, सब होगा। तुझे खुद से लड़कर जीतना होगा, खुद को खुद से। एक बार खुद पर काबू पा लेगी तो कोई भी आसानी से तुझे उल्लू नहीं बना पाएगा। जब वो साला नौटंकी कर सकता है इतने महीनों से तो तू भी तो किसी से कम नहीं। अंडरस्टैंड इट।'' मैंने डपटती आवाज में पुचकारते हुए समझाया था देर तक।

''हूँ, कितनी देर से ध्यान से सुन रहा हूँ आज की हकीकत को। रियली ए टफ जॉब। मानसी, तू प्रेम की मारी इन दुखियारी लड़कियों की काउंसलिंग करना आसान नहीं। ग्रेट यार, सो प्राउड ऑफ यू।'' बोलते हुए संकल्प मानसी की तरफ बहुत प्यार से देखता रहा।

''हाँ, संकल्प यह मुझे भी पसन्द है। मैंने महीनों उसे समझाया पर अब वो ठीक है, मस्त है और फिर से किसी के संग नये रिश्ते में।'' कहते हुए वह मुस्कराने लगी।

इतना सब बोलने के बाद वह चुप हो गयी। संकल्प ने उसकी हथेली पर दवाब बनाते हुए कहा– ''मानसी, यही है आज का सच और आज के रिश्ते की हकीकत, जिससे हम चाहकर भी मुँह नहीं मोड़ सकते। सच तो ये है कि हम सबको अपने तरीके से निर्बन्ध उड़ान भरने की आदतें पड़ गयी हैं। हमारा लाइफस्टाइल तेजी से बदलता गया। पेरेन्ट्स पैसे वाले थे सो कहीं पर भी पैर टेककर, जमकर पैसे कमाने की विवशता तो थी नहीं। पारिवारिक या सामाजिक बन्दिशें तो अब उतनी मजबूत रहीं नहीं सो दूसरे, तीसरे या लगातार मिलते नये संसर्गों ने हमें एक अजीब-सी अराजक दुनिया में फेंक दिया था, जहाँ हम खुले आकाश में दोनों हाथ-पाँव फैलाकर उड़ान भरने में डूबे रहे घंटों, दिनों, महीनों तक।'' संकल्प कॉफी का आखिरी सिप भरते हुए सोचते हुए बोलता रहा। महीनों से दबाया अन्दरूनी सच बाहर आने को अकुलाने लगा था।

''मगर आखिर कब तक? हर उड़ान कभी न कभी पूरी होती है। हर प्लेन को धरती पर लौटना ही पड़ता है जहाँ फिर से घर की तलब जगने लगती। तब तक हमारे दोस्तों के घर बस चुके थे। उन्हें खुशहाल देखकर मन करता, अपनी डगमगाती नैया को कहीं तो नीड़ में तब्दील करना होगा। घर वाले जोर देते रहे और हमें अक्सर अकेलेपन से तंग आकर भावनात्मक दबाव में शादी के लिए तैयार होना पड़ा। अगले महीने शादी कर रही हूँ। हाँ, ऐसे क्या देख रहे हो, यही है हमारे जीवन के अक्स।'' तेज खिलती धूप के टुकड़े धुन्ध-भरे कोहरे को चीरते हुए रेस्टोरेंट की खिड़कियों से उनके उदास चेहरों पर अजीब-सा वृत्त बनाने लगे।

''मानसी, एक बात बताऊँ, जल्दी ही तुम्हें भी उस रूटीन एकरसता से ऊबन और वितृष्णा होने लगेगी। लिसन, मैंने भी पिछले साल शादी कर ली, पर मन है कि आज भी अनजान दिशाओं की तरफ भटकता रहता। अजीब-सी पहेली है जिन्दगानी कि घर बनाओ तो धीरे-धीरे बन्धन में घुटन होने लगती, जिसे तोड़कर भागने का दिल करता और जब बाँहें फैलाकर मुक्त होकर नीलगगन की सैर पर निकलते तो घर बनाने का कन्सेप्ट दिलोदिमाग पर पीछा करता रहता। किसी वीसस सर्किल से घिरते जा रहे हैं हम, जहाँ कम्पलीकेटेड रिश्ते हैं या हम, कहना मुश्किल है पर ओवरथिंकिंग से बचना होगा हमें।'' वह एक-एक शब्द को बड़े जतन से जोड़कर इस खुशनुमा अन्दाज में बता रहा था, जैसे फटे-पुराने चीथड़ों को जोड़कर कोई खूबसूरत दरी बनाई जा रही हो।

''हम्म, सही कहा। जो हो रहा है, जैसे हो रहा है, होने दो, इसके सिवा और कर भी क्या सकते हैं? नदी में बहती नाव की तरह पता नहीं कहाँ पहुँचेंगे हम?'' सोचते हुए लम्बी साँस ली मानसी ने।

''लैट इट बी!'' अनायास दोनों के मुँह से एक साथ निकल गया।

यही इस युग का तकियाकलाम जो बन गया था।

❑

कहानी

कोल्ड ब्लडेड मर्डर

विभा रानी

हर रण की नीति है, नीति की चाल है। चाल पर शह है, शह पर मात है। मौत पर भी। पर, इस मौत के रण की न कोई नीति थी, न चाल। शायद ऊपरवाले ने कुछ रच रखा था। जभी तो माल से लदी भारी-भरकम ट्रक कुँअर साहब के ऊपर गिरकर भी नहीं गिरी और सिया पर ऐसी गिरी कि बड़े शहरों के 'हिट एंड किल' में शुमार हो गयी।

नयी बिल्डिंग में शिफ्टिंग के साथ बिल्डिंग की सोसाइटी निर्माण की जद्दोहजद चल रही थी, जिसका भार रिटायर्ड बूढ़ों ने ले लिया। कुछ खवातीनों को भी महिला प्रतिनिधित्व के रूप में जोड़ लिया गया, जो बीच-बीच में किसी वृद्धाश्रम या धर्माश्रम जाकर अपने फटे-पुराने कपड़े, बचा-खुचा भोजन, एक्सपायरी डेट्स के सामान या जगराते का बासी प्रसाद दान कर खुद को प्रगतिशील धारा के साथ-साथ शील, संस्कारवती भी मान लेतीं। बिल्डिंग में पढ़े-लिखे, मॉडर्न लोग थे– दो-दो, तीन-तीन मोबाइलों, घनघोर अँग्रेजी और ढेर सारे पेट्स के साथ। चिड़िया-सी चहकती, बिल्ली-सी कूदती, चूहे-सी कपड़े व नाखून कुतरती और नन्हें बच्चे-सी मम्मी के सामने ठुनकती, माता-पिता की पारम्परिक मान्यताओं को चुनौती देती, मैगी पर जान छिड़कती, नूडल्स-सी ही घुँघरूदार बातें करनेवाली सत्रह वर्षीया सिया को बेसब्री से अपने बालिग होने का इन्तजार था– ''पता है आंटी! मैं बाहर जाकर अंडा खाऊँगी।''

आंटी हँसती– ''इसके लिए बालिग होने का इन्तजार क्यों? अभी खिला देती हूँ।''

''ऊहूँ! अठारह का जश्न! मम्मी को मत बताना।''

गरबा के ढोल, ढाक, मंजीरे, बाँसुरी की अद्‌भुत नृत्य-भरी तान में मदहोश मुम्बई! साल-भर की तैयारी। चनिया, चोली, चुनरी, गहनों की बेमिसाल प्रदर्शनी– मनभावन, उन्मुक्त। उम्र का बन्धन नहीं, नृत्य न जानने का संकोच नहीं। आइए और गरबा के गोले में शामिल हो जाइए। गरबा की ताल और डांडिये की खट-खट में खुद को भूल, मस्त हो नाचते रहिए।

सिया की कच्ची उम्र के गरबा का यह आखिरी साल है। अगले साल वह अठारह की हो जाएगी। कुँअर जी उसे जाने नहीं देते। गरबे की ताल मन में गहरा दुख दे जातीं– ''मम्मी, सभी जाते हैं...। बोलो ना पापा को... प्लीज...।''

इस बार मगर, पापा ने मना नहीं किया। पड़ोस वाली आंटी के यहाँ चिल्लाती हुई घुसी– ''आंटी! पापा ने मुझे गरबा में जाने की परमीशन दे दी...! मुझे मैगी खिलाइए न, प्ली...ज!'' आंटी को पहली बार लगा कि वह मैगी भी बढ़िया बना लेती हैं। गरबा के लिए चनिया-चोली, गहने, मेकअप आदि की तैयारी में व्यस्त आंटी की बेटी कुनिका के कमरे में सिया पहुँच गयी।

बिल्डिंग के शुरूआती दौर के एडहॉक कमिटीवालों को नये लोगों ने अपदस्थ कर दिया था। मिसेज खान यानी भिलाई के मशहूर व्यापारी कुन्दनलाल गुप्ता की सुपुत्री कुसुम गुप्ता उन्हीं अपदस्थों में से एक थीं। बिल्डिंग में बहुत से नये-पुराने जोड़े इस गंगा-जमुनी संगम के थे, मगर मिसेज खान की तरह कमिटी में नहीं थे।

बिल्डिंग में सभी धर्म के लोग बेरोकटोक अपनी-अपनी पूजा करते। लेकिन, उसी में कुछ अपनी शह में लगकर एक दिन लिफ्ट के कॉरीडोर में साईंबाबा की मूर्ति बिठा आये। कोई बोला, ''रहने दो जी, इसी बहाने आसपास गन्दगी नहीं होगी।''

पर ना जी, गन्दगी रहे या बढ़े, साईंबाबा नहीं रहेंगे। और एक दिन वे वहाँ से गायब दिखे। लेकिन, इसका एक्सटेंशन– ''जी, बकरा नहीं कटेगा।''

चाल, नीति, रण सब इकट्ठे हो लिये– ''वाह जी! बकरीद में बकरे नहीं तो क्या आदमी काटेंगे?''

दिन-रात नॉनवेज चबाने वालों की भावनाएँ फूलों की पंखुड़ियों से भी कोमल हो आहत होने लगीं– ''ठीक है, हम नॉनवेज खाते हैं, मगर जो नहीं खाते, उनका क्या? और जो हम खाते हैं तो क्या कसाइयों की तरह सामने बकरे, मुर्गियाँ हलाल

होते देखते रहें?''

बात बहस में और बहस धमकी में बदल गयी– ''देखते हैं कैसे आप गणपति, दशहरा मनाते हैं?''

उस साल न गणपति बैठे, न गरबा हुआ। मिसेज खान मुस्कराती रहीं। बाकी मेम्बरान वीतरागी बने रहे। चारों ओर से आ रही गरबा की धुनों से बेचैन होते बच्चे बोले– ''आखिर क्यों नहीं काटेंगे वे? उनका त्यौहार है। और जब वे कह रहे हैं कि बन्द शामियाने में काटेंगे तो दिक्कत क्या है? इन बड़ों के झगड़ों में ना, अपन की चीजें मारी जाती हैं।''

गरबा फिर आ रहा था। बच्चों के अनुरोध पर कमिटीवाले अंकल-आंटी पिघले। समझौता हुआ– ''बकरे खुले में ना काटिए।''

वे हँसे– ''अमाँ यार! इतनी अक्ल तो हममें भी है।''

फिर तो गणपति भी बैठे और अब गरबा भी– 'गणपति बप्पा मोरया, पुढ़च्या वर्षी लवकरया।'... 'जय अम्बे! जय जगदम्बे।' सिया के नारे पर कुनिका और आंटी बेसाख्ता हँस पड़ी। आंटी ने पूछा– ''क्या पहनोगी?''

''ड्रेस।''

''चनिया-चोली क्यों नहीं?''

''मेरे पास नहीं है।''

''मैं देती हूँ न!'' आंटी फटाक से एक जोड़ा कच्छी कढ़ाई वाली चनिया-चोली ले आयीं। सिया ने चनिया चोली ले ली– ''थैंक्यू आंटी। पर आज मैं ड्रेस पहनूँगी, लाल वाली।''

''मम्मी ने चनिया-चोली दी है न!''

''हाय! मुझे शर्म आती है। मैंने कभी भी नहीं पहनी है...''

''तो क्या हुआ? आज पहन ले। शर्म निकल जाएगी।''

''देखती हूँ।''

''कल क्या पहनेगी?''

''साड़ी। कल शनिवार है। सुबह-सुबह मुझे पेपर देने जाना है। परसों संडे रहेगा, कॉलेज का टेंशन नहीं। खूब देर तक तैयार होऊँगी, खूब देर तक नीचे रहूँगी, संडे खूब देर तक सोऊँगी।''

अगले पल से अंजान, अपनी-अपनी चाल और नीति के तहत लोग तरह-तरह की योजनाएँ बनाते हैं। सिया और कुनिका भी रात के दो बजे तक गरबा करते रहे। समोसे खाये, कोल्डड्रिंक्स पिया। सिया ने चनिया-चोली तो नहीं पहनी, मगर पहली बार डांस जरूर किया।

''कल और मजे करेंगे।'' वह घर में समा गयी– ''मम्मी, मुझे सुबह छह बजे उठा देना। पेपर देने जाना है।''

''तुम भी न! कल पेपर है तो आज इतनी रात तक नीचे रहने की क्या जरूरत थी? कल शनिवार था, कल रहती।''

चित्र : कबीर राजोरिया

मम्मी की बातों पर बाकायदा कोई ध्यान दिये बिना सिया गुनगुनाती हुई बिस्तर पर धड़ाम से गिरी और फटाक से सो गयी। खट से छह भी बज गये। मम्मी ने उठाया– ''सियू, उठ जा, छह बज गये हैं।'' सिया कुनमुनाई, फिर सो गयी। मम्मी ने अष्टमी के लिए पूजा-स्थल धोया। मन ठीक नहीं था, सो लेटी कि आँख लग गयी। आँख खुली तो हड़बड़ा गयीं– ''अरे सियू, सात बज गये। उठ! पेपर है न!''

हड़बड़ाकर सिया उठी, ब्रश किया, कपड़े बदले। कुँअर जी बोले– ''चल, तुझे बाइक से छोड़ दूँ।''

''सियू, कुछ खा ले बेटा।'' मम्मी की इसरार पर सुबह के वक्त का हवाला देती सिया चली गयी। महाष्टमी की दुर्गा को उस दिन बलि लेनी थी या वह खुद सिया में समाकर कुँअर जी की जान बचाने आई थी, पता नहीं! सिग्नल ग्रीन होने के इन्तजार में खड़े कुँवर जी की बाइक को पीछे माल से लदे ट्रक ने बेहिसाब गति से आकर धक्का दिया। कुँवर जी उछले, गिरे और हैरतअंगेज तरीके से ट्रक के चारो पहियों के बीच पहुँच गये। सिया बाइक की पिछली सीट से उछलकर नीचे गिरी। हालात देखकर घबड़ाये ड्राइवर ने जोरदार ब्रेक लगाया। इस झटकेदार ब्रेक से ट्रक का पहिया तनिक ऊपर उठा और धड़ाम से सिया के बायें सीने पर गिरा, फिर तनिक बम्प होकर उठा। पहिये के झटके से बगल में खिसक गयी सिया के बायें हाथ पर ट्रक का पहिया पड़ा। खून फव्वारा बन गया।

मिसेज खान तेरहवें माले से पहली बार बिना लिफ्ट के दौड़ती आयीं और मम्मी का मुँह हथेलियों में भर लिया। मिसेज खान ने बगलवाली आंटी से फुसफुसाकर पूछा– ''शाम में गरबा होगा क्या?''

आंटी फुफकार उठीं– ''हाऊ कैन यू थिंक लाइक दैट?''

''आज तो डिनर भी अरेंज्ड है।''

विभा रानी

जन्म : 1959

शिक्षा : एमए (हिन्दी), बी-एड

प्रकाशित कृतियाँ : बन्द कमरे का कोरस, चल खुसरो घर आपने, इसी देश के इसी शहर में, कर्फ्यू में दंगा (कहानी-संग्रह); आओ तनिक प्रेम करें, दूसरा आदमी दूसरी औरत, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पीर पराई, मियाँ मुसलमान (नाटक); मिथिला की लोककथाएँ, गोनू झा के किस्से (लोक-साहित्य); छम्मकछल्लोकहिस (व्यंग्य) प्रकाशित। हिन्दी के साथ-साथ मैथिली भाषा में भी लेखन। दोनों भाषाओं में अब तक विविध विधाओं की कुल 22 किताबें प्रकाशित।

पुरस्कार/सम्मान : घनश्यामदास सर्राफ साहित्य सम्मान, मोहन राकेश सम्मान, प्रथम राजीव सारस्वत सम्मान, साहित्य सेवी सम्मान, आचार्य विष्णुदास भावे सम्मान, रासकला नाट्य लेखन सम्मान, नेमिचन्द्र जैन नाट्य लेखन सम्मान आदि से सम्मानित। साहित्य, नाटक के अलावा सिनेमा और दूरदर्शन पर भी कई रूपों में सक्रिय। लाल कप्तान, लाल परी, मॉनसून फुटबॉल, अनवांटेड सहित कई फिल्मों में अभिनय। जेल-बन्दियों, वृद्धाश्रमों, विशेष वर्ग के बच्चों के लिए साहित्य, कला व रंगमंच से जुड़े कार्यक्रमों का आयोजन।

सम्पर्क : 302/ए, धीरज रेसिडेंसी, ओशिवरा बस डिपो के सामने, गोरेगाँव (पश्चिम), मुम्बई-400104

मो. 8879770891

''मना कर दीजिए।''

''मैं कमिटी में नहीं हूँ न!''

''तो कमिटीवालों को कहलवा दीजिए।'' आंटी की आँखों से आँसू फूट पड़े।

रण, नीति, शह और चाल के किस्से चलते रहे। भेड़िया बोला– ''तूने झरने के नीचे का पानी पिया और मैंने ऊपर का तो क्या हुआ? पानी तो पिया न?''

ब्यूटी पार्लरवाली प्रतिभा की सास ने सिया की बहन को बुलाया– ''अरे, मैं सोती हूँ तो तेरी बहन मेरे सपने में आ जाती है। मुझे इशारे करके बुलाती है। मैं बुड्ढी, कमजोर दिल। उसकी आत्मा भटक रही है। लगता है तेरे घरवालों ने उसके क्रिया-कर्म ठीक से नहीं किये हैं। बेटे, ऐसे में कंजूसी नहीं करनी चाहिए। पंडित-वंडित को जरा ज्यादा खिला-पिला दे, दान-दक्षिणा कर दे। ऐसे भी उसके ब्याह में तो खर्च करते ही न तुम्हारे माँ-बाप!''

मिसेज खान की पड़ोसन बोलीं– ''सिया मेरी बाई की बेटी की देह पर आने लगी है। जब वह आती हैं, उसकी देह में हाथी-जैसी ताकत आ जाती है। तुमलोग इस घर को बेचकर कहीं और क्यों नहीं चले जाते? बोलना मुझे, अगर बेचना हो तो।'' वह घर के औने-पौने दाम का अटकल लगाने लगीं।

भय, हैरानी, बहन का प्रेम और उसे किसी और के बदन पर ही सही, देखने की उत्सुकता सिया की बहन को उस बाई के घर ले गयी। बाई की बेटी झूम रही थी। बड़ी-बड़ी आँखें निकाल रही थी– ''यस यस, मैं भूखी। मैंगो जूस, वांट... मेरी शादी... मेरा मंगलसूत्र... तुम... मेरी बहन... मेरी सैंडल, मेरे कपड़े... स्टॉप, वांट, नो, येस, मनी, मोबाइल!''

मिसेज खान की पड़ोसन बोली– ''सिया ही है न! बाइयाँ अँग्रेजी क्या जानें?''

बहन रोने लगी। उसे याद नहीं आया कि कहे– ''किचन, टाइम, लिफ्ट, वाशिंग मशीन, कॉल और हैप्पी बर्थ डे, टाटा-बाई-बाई जैसी अँग्रेजी मुम्बई में हर बाई बोलती है।'' पड़ोसन जलती नजरों से बहन को घूर रही थी– ''एक मौत पूरी बिल्डिंग में आफत ले आई है।''

बहन मेघ-धार-सी बरस रही थी– ''पापा, चलो यहाँ से! यहाँ के लोग हमलोगों को जीने नहीं देंगे... और पापा, उस बाई को पैसे दे दो। सिया कह रही थी कि वह बहुत भूखी है।''

मम्मी फूट पड़ी– ''हाँ, भूखी ही तो चली गयी थी मेरी बच्ची।''

कुँअर जी सोच रहे थे कि शमशान घाट में चन्दन की चिता से लेकर गंगा के तट पर किये समस्त श्राद्ध-कर्म और नासिक में अन्तिम तर्पण के बाद भी ऐसा क्या रह गया कि सिया की आत्मा को मुक्ति नहीं मिली? क्या माँ-बाप के प्रेम की डोर इतनी मजबूत होती है? डोर कमजोर करनी होगी।

आंटी भड़कीं– ''पढ़े-लिखे कहलाते हैं और दिमाग में इतना कीचड़!''

सुशीला जी मम्मी से बोलीं– ''बहन जी, सुना, पोस्टमार्टम के लिए बदन के सारे कपड़े उतार देते हैं। सुरेश कह रहा था बहू से कि उसने देखा, वह लाल रंग की पैंटी और ब्रा....''

मम्मी के आँसू बलबला पड़े– ''मेरे घर में लाल रंग की पैंटी-ब्रा कोई नहीं पहनता।''

उस दिन शाम चार बजे सिया अग्नि की राह धर शरीर से उठकर सभी के मन में जा समायी। मगर मन का क्या करें जो शरीर की तरह नहीं दिखता। इसलिए देह की हरकतों की तरह इसकी हरकतें भी दिखती नहीं। वरना मिसेज खान और कमिटीवालों की रीति, नीति, चाल और शह व मात के दाँव-पेंच देह हिलने की तरह दिखते।

अन्त्येष्टि से लौटे सभी को आंटी ने जबरन थोड़ी खिचड़ी खिलायी। खुद भी खायी। देह तो चलाना ही है। यही जग की रीति है।

देह चल रही थी। संगीत बज रहा था। आंटी चौंकी– ''गरबा? अक्कल नहीं है इन सो कॉल्ड पढ़े-लिखों को?''

कुनिका पर-नुँचे पंछी की तरह निरीह, कातर नजरों से उसे देख रही थी– ''मगर तुम कैसे रोक सकती हो? सोसाइटी का मामला है।''

''सिया भी इसी सोसाइटी की एक बच्ची थी... हाउ कैन दे...?'' आंटी दनदनाती सीढ़ियाँ उतर गयीं।

माता जी के भजन, आरती, पूजा के बाद सिया की आत्मा की शान्ति के लिए एक मिनट का मौन रखा गया। प्रसाद वितरण हुआ और लो जी, रीति-नीति की चाल के साथ गरबा संगीत शुरू हो गया– महाष्टमी की रात का गरबा, शनिवार की रात का गरबा, कल के इतवार के लिए आज की रात की निश्चिन्तता का गरबा।

सर्कल बन रहा था। डिनर सज रहा था। सदमाग्रस्त सिया की सहेलियाँ बिन सजे-धजे बैठी थीं। बाकी औरत-मर्द-बच्चे सज-धजकर आ रहे थे।

सर्कल के बीच में खड़ी आंटी गला फट जाने की हद तक चिल्लायीं– ''आप लोगों में कुछ इंसानियत है कि नहीं?''

''मैडम! हमने उनकी आत्मा की शान्ति के लिए अभी-अभी प्रे किया है न! आज का प्रोग्राम तो कल ही तय हो चुका था। खाने का ऑर्डर चला गया था।''

''तो आप ऑर्डर कैंसल नहीं कर सकते थे? सुबह आठ बजे से अब तक आपको पता नहीं चला? आपके घर में ऐसा हुआ होता तो क्या आप अपने घर का ऑर्डर कैंसल नहीं करते? अभी अगर बम फट जाए तो भी आप नाचते-खाते रहेंगे?''

''घर की बात अलग होती है! यहाँ इतने लोगों के पैसों का सवाल था। कैटरर पैसे नहीं लौटाता।''

''कुछेक सौ बिन खाये निकल जाते तो सभी दिवालिया हो जाते? या दो सौ, चार सौ के गम में पागल हो जाते या आप पर मुकदमा ठोक देते? यह सोसाइटी कँगलों की है?''

ऑफिस से लौटे लोगों में से भी कुछेक इकट्ठे होने लगे थे– सिया की घटना से अंजान! जाना तो आँसू बह निकले- ''हाऊ पीपल कैन बी सो इंसेंसिटिव!''

मिसेज खान बेटे, बहू, शौहर के साथ पहुँच गयीं– ''सोसाइटी की एक बच्ची की जान गयी है।''

पति ने जोड़ा– ''वह भी इतनी अननैचुरल।''

बेटे ने कहा– ''रात दो बजे तक इसी पंडाल में वह लड़की नाचती रही और उसी की डेथ पर...''

बहू बोली– ''वही तो। फिर भी लोग गरबा और डिनर...'

सुशीला जी बिफरीं– ''तो आपने सुबह ही मना क्यों नहीं किया?''

मिसेज खान चिल्लाईं– ''आप सब सोसाइटी के बड़े-बड़े ऑफिस बेयरर्स हैं। क्या आपमें इतनी कर्टसी नही है? और सुशीला जी, आप तो सिया की मम्मी की पक्की सहेली हैं। उन्हें लेकर मन्दिर, सत्संग सब जगह जाती हैं। आपको नहीं सूझा कुछ?''

लोग धड़े में बँट गये। सजे-धजे लोग मना करने वालों को घूर रहे थे। एक ने अपनी मम्मी को टोका– ''चलो मम्मी! ये सोसाइटी वाले साल-भर लगता है भूखे पेट और सफेद कपड़ों में रहेंगे।''

मिसेज खान की बहू की देखा-देखी सुशीला जी की बहू भी मैदान में आ गयी– ''पॉलिटिक्स खेलती है। कमिटी में नहीं हैं न! चाहती हैं कि कमेटी मुसलमानों के हाथ में रहे और बिल्डिंग में बकरे कटते रहें। ...सुबह क्यों नहीं मना किया? ...आंटी, आप इनकी बातों में मत आओ।''

आंटी बमकी तो बहू दब गयी– ''कमिटी में तो सबकी सुननी पड़ती है न!''

''तो ऐसा करो, कुँवर जी को सपरिवार गरबा खेलने बुला लाओ। उन सबको खाना भी खिलाओ। नहीं कर सकती तो खाना उनके यहाँ दे आओ। चन्दा तो उन्होंने भी दिया है न!''

आयोजक बोले– ''जीवन-मरण तो चलता ही रहता है।''

''आपके घर के किसी सदस्य के साथ ऐसा हो जाता, तब भी आप यही दलील देते?''

सुशीला जी घर पहुँचकर बड़बड़ाई– ''ये लोग बहुत सर चढ़ गये हैं। इनके बकरे कटने चाहिए, हमारी माता की आरती नहीं होनी चाहिए। और ये ऊपरवाली? चिल्ला तो ऐसे रही थी, जैसे उसी की बेटी मरी हो। लोग सही कहते हैं, अपने लोग होते ही ऐसे हैं– पीठ में छुरा भोंकने वाले। दगाबाज। उस चुड़ैल का पक्ष ले रही थी। कोई मुसलमान हमारा पक्ष लेता है?''

लिफ्ट में मिसेज खान की गम्भीरता अब मुस्कान में बदल गई। मि. खान बोले– ''भई, तुम तो बड़ी होनहार हो।'' बेटे-बहू मुस्काकर अपने कमरे में चले गये। मि. खान ह्विस्की खोलकर बैठ गये। मिसेज खान दो ग्लास ले आईं। बर्फ भी। बर्फ तरावट भी देता है और उसके चाकू से अच्छे-अच्छे धराशाई भी हो जाते हैं– कोल्ड ब्लडेड मर्डर!

❑

कहानी

नाच

इन्दिरा दाँगी

हर तरह के इस्तेमाल के लिए, औरत से सस्ता प्राणी हमारी तरफ दूसरा न मिलेगा!

तीन माह की नवजात गुड़िया रात-भर रोती रही थी और उसकी साँस रुक रही थी। सत्रह साल की माँ वन्दना बेटी को रात-भर खाट पर कभी इस करवट, कभी उस करवट लेकर लेटती रही। टहलकर चुप करने की कोशिश करती रही। आँगन पार, बैठक में सास-ससुर सो रहे थे। सुनते तो रहे होंगे; लेकिन न बहू उन्हें बुलाना चाहती थी, न ही वे आते बुलाने पर। बाहर गेल किनारे के शीशम की पथोकी चिड़िया रह-रहकर बोल उठती है। कौन पथिक इतनी रात को इस पथ पर आ-जा रहा? कहीं साक्षात् मृत्यु ही तो नहीं, जो बाहर चहलकदमी कर रही है? किसको ले जाने? वन्दना अपनी गुड़िया को कसकर चिपटा लेती है सीने से।

सुबह के उजास में, ओस से नहायी लाल मुरम की धरती लहू की तरह दमकती है। जहाँ-तहाँ मुनिया, सुआ, गिलगिलिया या कौवा कोई बोल उठता है। गाँव बाहर के प्राचीन वृक्षों से मोर की केका सुनाई देती है। सूर्योदय में तो अभी डेढ़-दो घंटा रहा होगा। वन्दना कब की उठ गयी या कि सोयी ही नहीं? उसने आँगन के हैंडपम्प से बाल्टी भरी और जलघरा में जाकर जल्दी-जल्दी नहा कर निकल आयी। वो इसी समय हर दिन नहाती है, मौसम चाहे जो हो। सास रामदासी का सख्त हुकुम है कि नहाकर रसोई में जाए।

वन्दना रसोई करके ही बेटी को इलाज के लिए ले जा पायेगी, वो जानती है। सूर्योदय होने तक उसने रसोई कर ली। बेटी के जन्म के बाद उसे भोर से ही भूख लगती है और अब वो बिना सास-ससुर से पूछे ही किसी कोने में बैठ, जल्दी-जल्दी दो-तीन रोटियाँ निगल लेती है– कभी दूध में मींड़ कर, कभी अचार से, कभी रूखी ही। बड़बड़ाती रहे सास, अब पेट-भर रोटी तो वो खाएगी। फिर दिन-भर गैया-भैंस, घर-गृहस्थी, बच्ची के काम करने को पेट में ईंधन तो चाहिए ही हाल की प्रसूता को!

जल्दी-जल्दी काम निबटाकर वो सास के सामने अनुमति लेने की मुद्रा में जा खड़ी हुई, ''गुड़िया रात-भर रोई है। साँस नहीं ले पा रही है। इन्दरगढ़ अस्पताल ले जाना पड़ेगा।''

''तो कौन यहाँ बैठा है तेरे सपूत को इन्दरगढ़ ले जाने! ये तो अभी पुरा में निकल गये हैं। फिर गये भी तो दिन-भर के खेत के काम का हर्जा होगा। कल-परसों देखेंगे।''

''कल तक तो मर जाएगी बच्ची मेरी!''

''मर जायेगी तो कौन इस घर की नाठ हो जायेगी! मरे तो मर जाए! जाओ तुम, ढुरउ बखरी में। ढोर भूखे होंगे।''

''मेरी बेटी की हत्या तुम्हारे सिर होगी!'' कहकर बहू रुकी नहीं; आँसू पोंछती, पीतल की बाल्टी उठाकर ढुरउ बखरी चली गयी।

रामदासी सनाका खाये बैठी रह गयी। साल-भर से ऊपर हो गया बहू को आये। न अब तक घूँघट उठाया, न जवाब दिया। आज पलटकर कैसी जलती बात कह गयी! मतलब उसका धैर्य सीमा रेखा तक पहुँच गया है। अब अगर और सताएगी इस बहू को तो, वो या तो बेटे के साथ शहर चली जायेगी या अपने मायके जाकर बैठ जायेगी।

रामदासी ने अटाई में जाकर देखा; थककर सोई बच्ची नींद में भी बेचैन है। सीने से घर्र-घर्र की आवाज आ रही है। जरूर डबल निमोनिया हो गया है। साँस नहीं ले पा रही; हाफनी चल रही है। इस नासपिटी बहू से कितना कहा जचकी के बाद खाने-पीने में परहेज रखे; इसे तो भकोसना रहता है खाद्य-अखाद्य! बैगन ये खाए! अरहर की दाल ये कटोरी भर-भर पिये! मठा की चटोरी ये! प्रौढ़ा सास मन ही मन बहू को बातें सुनने लगी।

बच्ची रोने लगी तो उसे गोद में उठाना पड़ा। तीन माह में पहली बार उसने पोती को उठाया है। उसको भी पहली जचकी में लड़की ही हुई थी जो होने के पन्द्रह दिनों के भीतर ही न जाने कैसे अचानक मर गयी थी। तब ससुर क्या तो सुनाते थे, ''मौड़ी का मरना, भोर का सपरना! ...भोर जल्दी स्नान हो जाए तो दिन-भर का सुख और बेटी मर जाए तो जीवन-भर का

सुख!''

फिर दो बेटे हुए उसके और समाज में, घर-परिवार में, रिश्तेदारी में वो राजरानी हो गयी। अब बहू ने बेटी जनी तो उसके सास-ससुर की क्रूरता जैसे उसमें उतर आयी है। पन्द्रह दिन न हो पाये जचकी के और रामदासी ने बहू को ढोर-ढंगर, घर-गृहस्थी सबके काम पर लौटा दिया। नवजात की सूरत भी देखने से मना कर दिया। अब देख रही है हूबहू उसके बड़े बेटे की शक्ल है; लेकिन कितनी सूखी-दुबली! हड्डियों से बनी कोई गुड़िया हो जैसे! क्या इसकी हत्या कर दे? उसे भी तो सदैव सन्देह रहा कि उसकी नवजात बेटी को सास ने तम्बाखू खिलाकर मार डाला था! रामदासी ने बच्ची के सिर पर हाथ फेरा, माथा चूमा और फिर लिटा दिया उसे। किसी ने देख तो नहीं लिया कि वो पोती को दुलारती है?

बाहर आकर बैठ गयी। बहू सानी-पानी करके बड़ी जल्दी लौट आयी है। घूँघट में रो रही है, सो दूर से ही समझ आता है।

''आँसू ढार-ढार कर दुनिया को न दिखाओ कि तुम मताई-बिटिया को हम लोग मारे ही दे रहे हैं! जाओ, बच्ची को जनवा के पास ले जाओ।''

सास ने गाँठ से दस-दस के दो नोट निकाल कर बहू की ओर बढ़ाये।

बेटा हजारों कमाता है। खेतों में लाखों की फसलें होती हैं लेकिन इस अभागी वन्दना को बिन्दी का पत्ता भी खरीदने के लिए सास के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। पति है जीवन में सिर्फ इतना कि माँग में सिन्दूर उसका है और पन्द्रह दिन या कभी महीने-भर में आता है और रात-भर ऐसा वीभत्स व्यभिचार करता है कि अगले आधे दिन तक वो अधमरी-सी लड़खड़ाती फिरती है।

अँधेरे में रन्ध मिला रोशनी का, और वन्दना अपनी बीमार बच्ची को ले तुरन्त भागी। गाँव पार जनवा के यहाँ लेकिन अकेली कैसे जाए? पड़ोस की बहू सेवा को साथ ले जाए? वो बेआवाज, लम्बा घूँघट निकाले, दबे पाँव बगल के घर भीतर जाती है। सेवा की सास उसे भीतर जाती देख अनदेखा कर देती है। इस पगली सेवा को ये सखी कैसे मिल गयी! वास्तव में, सेवा पगली नहीं है, सास अपने हृदय में सत्य जानती है। बस अभागिन है जो बच्चा न जन सकी; तो बेटे ने शहर में दूसरा ब्याह कर लिया। अब ये जाए कहाँ? रोटियों के बदले में घर-खेत के काम में मईंदारों-नौकरों की तरह खपी रहती है। अब वो गाँव के कच्चे घर के कोने में पड़ा भरा घड़ा है जिसके रसपान को उसका पति कभी दो-चार महीने में चला आता है।

चित्र : कबीर राजोरिया

तब शहर वाली पत्नी लगभग पागल हो उठती है। एक बार तो वो गाँव ही चली आई थी बच्चों को लेकर। बाकी समय, सेवा खेतीबाड़ी, गैया-भैस, घर-गृहस्थी के कामों में कोल्हू के बैल की तरह जुती रहती है। पर कभी-कभार ऊपरी हवा का चक्कर आता है। वो घर की सबसे अँधेरी अटाई में दिन-दो दिन पड़ी रहती है; फिर उठकर अपने आप काम में लग जाती है। पुरा-मोहल्ला, रिश्तेदारी में सब उसकी छाया से अपनी बहू-बेटियों को बचाते हैं। जिस जनी को ऊपरी हवा एक बार पकड़ ले, फिर वो जीते-जी नहीं छूट पाती! अभी भी उस पर ऊपरी हवा है। वन्दना ने देखा, सहेली खाट पर अधमुँदी आँखों से, शून्य में देख रही है। सिर में गूमड़ उठा दिख रहा है, बाल नुचे हुए, होंठ सूजे और गाल शायद थप्पड़ खाये हुए। वो जान गयी, इसके ससुर ने फिर बलात्कार किया है। इसकी सास क्यों नहीं कुछ कहती? रहने-खाने के सहारे के बदले में क्या आत्मा तक बेच देती हैं औरतें? कुछ तो उस लोक का भी भय हो; देखने-दिखाने को तो इतना पूजा-पाठ, माला-कंठी, नियम-धरम करती है इसकी सास!

वन्दना जितने चुपचाप गयी थी, उतने ही चुपचाप निकल आयी। अब घर लौटी तो फिर न निकल पायेगी। अकेली ही चल दी गाँव पार जनवा के पास जाने को। गाँव के कच्चे-पक्के घरों को पार करती वो खेतों से आगे बने स्थान तक पहुँचती है। पीपल के नीचे बने चबूतरे पर एक औरत झूम रही है। मोरपंख की झाड़ू से जनवा उसे झाड़ रहा है। परिजनों ने महिला को

इन्दिरा दाँगी

जन्म : 4 अक्तूबर 1980

शिक्षा : एम. फिल, पी-एच डी.

प्रकाशित कृतियाँ : बारहसिंगा का भूत, एक सौ पचास प्रेमिकाएँ, शुक्रिया इमरान साहब, दरअसल (कहानी-संग्रह); हवेली सनातनपुर, रपटीले राजपथ, विपश्यना (उपन्यास); आचार्य, रानी कमलापति, राजकुमार पिथोरा और नर्तकी प्रलेक (नाटक) प्रकाशित। अमेरिका, कनाडा, नेपाल और भारत में नाटकों का मंचन। अँग्रेजी, नेपाली, कन्नड़, ओड़िया, तेलुगु, मराठी, सन्ताली, उर्दू, तमिल, पंजाबी तथा गुजराती में कहानियाँ अनूदित।

पुरस्कार/सम्मान : कोहेनूर सम्मान, चन्द्रगुप्त शिखर साहित्य सम्मान, गायत्री कथा सम्मान, साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार, भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन अनुशंसा पुरस्कार, बालकृष्ण शर्मा नवीन अवार्ड, मोहन राकेश अनुशंसा पुरस्कार, रमाकान्त स्मृति पुरस्कार, सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार, कलमकार अवार्ड, वागीश्वरी पुरस्कार, रामजी महाजन राज्य सेवा सम्मान, डॉ. सुषमा तिवारी सम्मान, हिन्दी सेवा सम्मान, सावित्री बाई फुले राज्य सेवा सम्मान से सम्मानित।

सरकारी बैंक में 32 साल मुख्य प्रबन्धक (राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में) पद से सेवानिवृत्ति।

सम्पर्क : खेड़ापति हनुमान मन्दिर, सूद पेट्रोल पम्प के पीछे, लाउखेड़ी, एयरपोर्ट रोड, भोपाल-462030 (म.प्र.)

मो. 9179131980

पकड़ रखा है।

वन्दना को भय-सा लगा। वो लौट जाना चाहती है। बेटी को देखती है। बेटी साँस नहीं ले पा रही, दूध नहीं पी पा रही और अब तो रो भी नहीं पा रही। उसे देख, जनवा ने झोंपड़ी के अन्दर आने का इशारा किया।

''बच्चे के कपड़े उतार कर उसे धरती पर लिटा दो।''

उसने बच्ची को लिपी भूमि पर लिटा दिया। जनवा ने कुछ मन्त्र पढ़े, मोरपंख फेरे, फिर जलते अंगारों पर एक सलाख गरम करने लगा। वन्दना सोच रही है, आखिर हो क्या रहा है?

''दगनी करनी पड़ेगी! निमोनिया बिगड़ गया है। वहाँ किवडिया के बाहर बैठ जाओ। इधर नहीं देखना।''

वो उठी है लेकिन जाते-जाते लौट रही है। और इधर जनवा ने क्षण-भर में जलती सलाख से बच्ची की देह पर निशान ही निशान बना दिये।

''अरे! अरे! छोड़ो!''

''इसकी लँगोटी क्यों नहीं उतारी? लड़की है क्या?''

इससे पहले कि वन्दना आगे बढ़कर बच्ची को उसके हाथों से छीन लेती, जनवा ने कपड़ा हटाकर शिशु के गुप्तांग पर भी जलती सलाख से दाग दिया।

बच्ची जान छोड़ कर चीखी। जनवा अर्ध-विक्षिप्त-सा उठा और चला गया गरम सलाख लिये बाहर उस झूमती स्त्री का इलाज करने जिसे उसके परिजनों ने पकड़ रखा है।

किशोरी माँ ने अपनी नवजात बच्ची समेटी और भागी वहाँ से। धूल-भरी पगडंडियों पर भागती जाती है और रोती जाती है। क्यों आई वो जनवा के पास? क्यों मानी सास की बात? वो तो आठवीं पास है। अखबार भी पढ़ती थी मायके में। क्यों नहीं उसने सोचा कि जन्म लेकर धरती पर गिरने से लेकर इस धरती से जाने तक नारी का शरीर हिंसा का सीधा निशाना है! मरने के बाद ही जब बलात्कार होते हैं इन शरीरों से; तो उसकी बच्ची तो जिन्दा है। कैसे उसने अपनी जिन्दा बच्ची सौंप दी जनवा के हाथों में?

वो भागती ही रही; तीन किलोमीटर दूर गोला सड़क तक पहुँचने तक। यहाँ से इन्दरगढ़ जाने की बस मिलती है। बस के आने तक वो बच्ची के जख्म देखती है। खाल छिल गयी है, जल गयी है, खून छलछला आया है। नवजात अबोध कष्ट में सिसक रही है, और माँ अपनी की असमर्थता में!

बस में बैठी और इन्दरगढ़ तक का टिकिट लिया– बीस रुपये का! वन्दना के पास दस और पाँच के भी कुछ नोट हैं छिपे हुए; मायके में कभी पैर छूने में मिल जाते हैं पड़ोसियों या रिश्तेदारों से। आखिर उसके पास पैसे रहते क्यों नहीं- वो सोचती है। वो तो पढ़ना ही चाहती थी। पढ़-लिखकर कुछ बनने की जो बातें हेडमास्टरनी मैडम प्रार्थना के समय बताती थीं, उन्हीं बातों के छोर को थाम कर वो अपनी दुनिया बुनती थी। आठवीं के बाद गाँव में स्कूल था नहीं; और चार किलोमीटर दूर के दूसरे गाँव माँ-बाबा ने जाने नहीं दिया। लोक-लाज, ऊँच-नीच क्या-क्या काल्पनिक आरोप थे उनके पास कि घर की दहलीज पर भी खड़े होने की मनाही थी। हाँ, लेकिन काम उससे भरपूर लिया जाता था। चार भाई-बहनों की पूरी गृहस्थी सँभालती थी वन्दना। माँ तो अधकपारी के दर्द से जब-तब लेटी ही रहती थी। असमय गृहिणी बन गयी छोटी-सी वन्दना लेकिन एक हुनर चुपचाप सीख गयी थी पुरा की दीदियों, भाभियों से। क्या गजब सिलाई करती थी वो! घर में ही रहकर ऐसे-ऐसे डिजाइनदार ब्लाउज, कुर्ते, फ्रॉक सिलती कि आन गावों से भी सिलाई आने लगी थी उसके पास। सोलह की हुई तो माँ-बाबा ने ब्याहकर अपने सिर का बोझ उतारा। उसकी सिलाई छोटी बेटी के लिए रख ली माँ ने। ससुराल में किसी ने दिलाई नहीं

ये कहकर कि नाखून नहीं गिर गये हैं हमारे, जो औरतों की कमाई खायेंगे! वो अपार काम करती और फिर भी पाँच-दस रुपये की जरूरत के लिए भी सास के सामने हाथ फैलाती! उसका पति कितना कमाता है, उसे तो ये भी नहीं पता। पूछती है तो कहता है, बस कुछ और पैसा कमा ले, फिर ले जाएगा उसे शहर। सास के अत्याचार और ससुर-देवर की कुदृष्टि को वो अभी सह रही है, आगे शहर में पति के व्यभिचार-बलात्कार को सहेगी? जीवन आगे क्या है? मायके वाले तो ससुराल वालों से भी ज्यादा बुरे हैं। कहीं कोई रोशनी नहीं, कोई रास्ता नहीं सामने। ...उसने बेटी को सीने से चिपटा लिया और बस की खिड़की से बाहर देखने लगी। दूर-दूर तक पथरीला उजाड़ है। तपन है। सूखा है। छोटी-छोटी झोंपड़ियों के गाँवों में भूख है। बेकारी है।

इन्दरगढ़ बस स्टैंड पर उतरी। अस्पताल यहाँ से डेढ़ किलोमीटर दूर है। किसी साधन का किराया कैसे दे? पैदल ही चल पड़ी। घर पर जब पता चलेगा कि वो इन्दरगढ़ अकेली गयी थी तो क्या हश्र होगा उसका? सास ने एक बार भरा लोटा फेंककर मारा था; उसकी पसलियाँ बहुत दिनों तक दुखती रही थीं। कभी धक्का दे देती है सास, कभी हाथ से कुछ छीन लेती है। और दुत्कार-फटकार, जली-कटी तो आठों पहर उसकी वाणी है। तो भी वन्दना चाहती है कि सास घर में बनी रहे; ससुर के साथ घर में अकेले रहने की कल्पना से ही उसको मारे भय के फुरहरियाँ आने लगती हैं।

अस्पताल सामने है। अस्पताल क्या, तीन-चार कमरों की डिस्पेंसरी है। उसने कम्पाउंडर साहब को बच्ची को दिखाया।

''पागल होते हो तुम देहाती लोग! अनपढ़! मूर्ख! बच्चों को सलाखों से दगवाते हो और जब बिल्कुल मरने की हालत हो जाती है तब हमारे पास लाते हो!''

वन्दना हाथ जोड़े खड़ी है; निवेदन को भी शब्द नहीं उसके पास।

''इसको दतिया के बड़े अस्पताल ले जाओ। यहाँ तो नहीं बचा पायेंगे इसे!''

कम्पाउंडर साहब ने जिला अस्पताल को रेफर कर दिया; सरकारी डॉक्टर साहब लोग तो खैर इतने दूरस्थ अस्पतालों से हमेशा गायब ही रहते हैं। छह माह पहले जिन डॉक्टर साहब का यहाँ तबादला हुआ उन्होंने ज्वॉइन ही नहीं किया आकर। वहीं अपने महानगर में जोड़-जुगाड़ कर स्टे ले आये। इससे पहले जो डॉक्टर साहब थे सात सालों तक, वे साल में एक या दो बार ही कभी आते थे जब इंस्पेक्शन होना होता था और उन्हें इंस्पेक्शन करने वालों को उपहारों में तोल देना होता था। उनसे पहले जो डॉक्टर साहब थे, वे तो अपनी जगह एक किसी रजिस्टर्ड झोलाछाप डॉक्टर को भेजते थे जिसे वे, सुना, सौ रुपया रोज देते थे। उसके हाथों जब दो-चार मर गये तब ऊपर से ये कार्यवाही हुई कि उनका तबादला कर दिया गया। सुना, छह महीने की तनख्वाह देकर बच पाये थे वे डॉक्टर साहब उन हत्याओं के आरोपों से।

वो अस्पताल से बाहर निकल आयी है। अब जाए कैसे? परिसर में एम्बुलेंस खड़ी है, लेकिन ड्राइवर कह रहा है इसमें पेट्रोल नहीं है। यह महीनों से ऐसे ही खड़ी है।

वन्दना क्या करे अब? बटुवे के दस रुपये, पाँच-पाँच के सिक्के गिनने लगी। भाग्य से एक नोट पचास का भी निकल आया।

''सत्तर रुपये के पेट्रोल से एम्बुलेंस दतिया तक नहीं जा पायेगी!''

अस्पताल परिसर के सागौन तले चबूतरे पर सिर थम कर बैठी है किशोरी माँ– करे तो करे क्या? क्या आते-जाते लोगों से भिक्षा माँगे? माँ-बाबा ने स्कूल का बस्ता छीन कर गृहस्थी में झोंक दिया। वो क्या करती? नाबालिग उम्र में उसकी शादी करने के लिए फर्जी आधारकार्ड बनवाया था बाबा ने। ससुराल में सब अत्याचार सहती है। दिन-रात काम करती है और वो करे भी तो क्या? बेटी पैदा हुई; ये उसकी जान है। न चाहे कोई इसे, न स्वीकारे; उसका तो यही जीवन-धन है। न मिले एम्बुलेंस; वो दतिया जाएगी। बस से जायेगी, पैदल जाएगी लेकिन अपनी बच्ची को बचायेगी। लौटकर ससुराल में अब जो हश्र होना होगा, सो होगा ही! बहुत होगा तो यही न कि पिटाई होगी!

वन्दना ने अपने देवी-देवता सिमरे। दतिया जाने के लिए चबूतरे पर से उठ खड़ी हुई। ये क्या? कुछ हरकत नहीं?

...रुकती साँसों, जलते जख्मों और खूनमखून देह को छोड़कर नवजात प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

''गुड़िया!'' रुआँसी माँ अपनी लाड़ली को हिलाती-डुलाती है। थपथपाती है। सीने से लगाती है। गोद में लेकर दुलारती है। फिर हक्की-बक्की चारों ओर देखने लगती है। हर दिशा में उसका ही जीवन पश्च-दृश्य दर्पणों में घूमता दिख रहा है उसे। चबूतरे के चारों तरफ वो ही वो है! नहीं! गुड़िया-ही-गुड़िया है! वो है कि गुड़िया है! कि वो ही गुड़िया है!

माँ ने हँसकर बेटी को चबूतरे पर लिटाया और चबूतरे के चारों ओर नाचने लगी। कोई जनी रोकती है तो वो और जोर-जोर से नाचने लगती है। ...वो नाचती रही जब तक कि बेसुध होकर गिर ही न पड़ी!

❑

कहानी

सड़क

जमुना बीनी

पहाड़ की तराई पर बसा यादा एक किसानी गाँव है। गाँव का बाहरी दुनिया से सम्पर्क कम ही है। गाँव में अब तक कोई सड़क नहीं बनी। हाँ, पगडंडियाँ बहुत हैं, आप इसे पगडंडियों वाला गाँव जरूर कह सकते है। अरुणाचल प्रदेश के इस सीमावर्ती गाँव की सबसे नजदीकी शहर है नॉर्थ लखीमपुर, जो पड़ोसी राज्य असम में पड़ता है। बच्चों की शिक्षा और हारी-बीमारी में चिकित्सा-जैसी आपात स्थिति के लिए गाँव वाले नब्बे किलोमीटर दूर इसी लखीमपुर शहर पर पूरी तरह आश्रित हैं। अमूमन जून महीने की आग बरसाती धूप में स्कूलों में एडमिशन का सीजन शुरू हो जाया करता है। यादा गाँव से जत्थे के जत्थे यानी माता-पिता बच्चों-सहित बेडिंग पीठ पर लादकर लखीमपुर की ओर कूच कर देते। शहर के अँग्रेजी माध्यम के मिशनरी स्कूलों के होस्टलों के परिसरों में पहुँचकर वे पसीने से तर-बतर, हाँफते हुए मारे थकान के बेसुध पसर जाया करतें। और वापसी में वहाँ की भीड़-भड़क्का वाले बाजार से खरीदी साइकिल पीठ पर ढोकर अपने गाँव को लौटतें। यानी किसान की पीठ कभी खाली नहीं रहती, कभी बाँस की टोकरी, कभी बेंत से बना बैग नारा वगैरह कुछ न कुछ माल असबाब पीठ पर लदा रहता है।

बिन सड़क वाली इस गाँव में माना कि जीवन तनिक कठोर है, पर इसका मतलब यह थोड़ी है कि गाँव बदहाल है और गाँव वाले उदास, दुःखी, हताश! कड़ी मेहनत, परिश्रम के आदी यहाँ के बाशिन्दे अपने किसानी जीवन में खूब रमे हुए हैं। खूब मशक्कत से धान रोपा जाता, पुरुष आदि खेतों के विश्रामगृह में दिन-रात बिताकर जंगली जानवरों से फसल की रखवाली करते, बेचैनी-बेसब्री से फसल पकने का इन्तजार होता और फसल कट जाने के बाद नये चावल की शान में धूमधाम से दावतों का आयोजन होता।

आज गाँवबूढ़ा यानी गाँवप्रधान तामेन के घर पर फसल कटने की खुशी में दावत है। कामा भी उसमें आमन्त्रित है। तय समय पर कामा गाँवबूढ़ा के घर के करीब पहुँचा। मेहमानों का आना अभी शुरू नहीं हुआ था।

घर की सीढ़ी से पैरों की आहट आयी।

गाँवबूढ़ा तामेन ने छोटे बेटे से कहा, ''जरा बाहर जाकर देखो, कौन आया है?''

हवा की फुर्ती से बेटा दौड़कर बाहर गया, फिर भीतर आया।

गाँवबूढ़ा तामेन ने उड़ती निगाह से देखते हुए पूछा, ''बता कौन आया है?''

बेटे का भोला-सा जवाब, ''एक अँधेरा आदमी!''

उत्तर सुनकर गाँवबूढ़ा तामेन सकपका गये, ''इसका क्या मतलब?'' फिर बीवी की ओर मुखातिब होकर बोले, ''यह क्या उल्टा-सीधा बक रहा है?''

सादोर में मदिरा छानने में व्यस्त बीवी याका पहले हँसी, उसके बाद बोली, ''अँधेरा आदमी मतलब काले रंग का कोई आदमी।''

तभी काली रंगत वाला कामा घर में नमूदार हुआ। गाँवबूढ़ा तामेन ने लपककर उसका स्वागत किया और अपने पास पेचे यानी बाँस की दरी पर उसे बिठाया। चूल्हे में नाचती आग की नीली-पीली रोशनी लगभग बुझने को थी। लपटों को सुलगाने के लिए और लकड़ियाँ चाहिए। गाँवबूढ़ा तामेन याद दिलाये, इससे पहले ही बीवी याका खुद मदिरा छानना बन्द कर, लकड़ियाँ लाने बाहर भाग पड़ी।

तीन-चार रोज से लगातार घनघोर बारिश हो रही थी। यह बारिश भी बड़ी गजब... रात होते ही बरसना बन्द। मगर सुबह के मद्धिम उजाले में आकाश से बूँदों के रूप में तीर बरसने लगते मानो आनअ दोन्यी यानी सूर्य माता के साथ न्यीमाक (युद्ध) छिड़ा हो! कभी-कभार दोपहर में बारिश की तीव्रता कम जरूर पड़ जाती, फिर भी बरसना जारी और साथ ही हल्की धूप भी खिल आती।

बड़ी बेटी कहती, ''जरूर जंगल में बाघ की शादी हो रही

होगी।''

याका मुस्कराकर पूछती, ''यह तुमसे किसने कहा?''

आँखें मटकाकर बड़ी बेटी बोलती, ''दादी ने कहा है जब बूँदाबाँदी के साथ धूप खिले तो समझ जाना कि जंगल में बाघ का ब्याह रचाया जा रहा है।''

तिलमिलाहट में याका कहती, ''ये बाघों का ब्याह खत्म होगा कि नहीं, जाने कब से घर में दुबके पड़े हैं हम! जलाऊ लकड़ी का अम्बार खत्म होने को है।''

चित्र : कबीर राजोरिया

लेकिन याका की चिन्ता से बेपरवाह बारिश अपनी धुन में बरसी जा रही थी, इसलिए जलावन के इन्तजामात के लिए याका जंगल नहीं जा पायी। सो मचाननुमा आँगन बाग में पड़ी बाँसों की सूखी लकड़ियाँ उठाकर घर के अन्दर ले आयी। तब तक बड़ी बेटी कामा को मदिरा और तअपाक नाम के रूप में भुना हुआ सुअर के मांस में नमक और मिर्च छिड़ककर परोस चुकी थी।

याका धारदार दाव से बाँस के मोटे लट्ठों को बीच से फाड़ती हुई कहती जा रही थी, ''इन बाँस के लट्ठों को इस तरह न फाड़ो तो आग में तेजी से फूटते हैं।''

याका तन्मयता से लट्ठों को फाड़ती जा रही थी और बड़ी बेटी लट्ठों को एकत्र कर चूल्हे में डालकर आग को तेज कर रही थी। यकायक लट्ठों और दाव को पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण न जाने किन-किन अलग-अलग दिशाओं में फेंकती हुई याका चीख पड़ी, ''साँप, साँप!''

घर के भीतर मामूली-सा कोलाहल मचा। शोर-शराबा के बीच साँप जाने दीवार या फर्श के किस सूराख से सरककर निकल भाग गया। सूखे बाँस के अन्दर साँप कैसे! आश्वस्ति के लिए गाँवबूढ़ा तामेन ने कैरोसिन लैम्प की मरियल रोशनी में कटे बाँस को उठाकर गौर से देखा, ''मूर्ख औरत! यह बाँस तो जिन्दा है, मेरा मतलब हरा है। इसे क्यों उठा लायी?''

याका अपनी सफाई में, ''धुँधलका में ठीक से देख नहीं पायी। अब तक मुझे यह बात नहीं पचती यह साँप बाँस के भीतर घुसकर अंडा कैसे देते हैं?''

गाँवबूढ़ा तामेन ने देखा कामा का बाँस का मदिरा वाला मग पताक औंधा पड़ा है, ''यह देखो सारी मदिरा फैल गयी।''

''हाँ, हाँ! अभी की अफरातफरी में।'' कामा ने भी खाली पताक उठाकर बोला।

पिता के आदेश के पहले ही बड़ी बिटिया चुपचाप कामा के पताक में चावल की मदिरा डाल गयी।

सुअर का गोश्त और होन्योर साग के साथ नया चावल परोसा गया। कामा भी पेट की आग से विकल हुआ जा रहा था। इसलिए हड़बड़ाहट में हाथ धोकर बड़े कौर निगलने की जल्दी में उसके हाथ से चावल के चन्द दाने फर्श के सूराख से नीचे गिरे। गिरे हुए दानों को खाने के लिए घर के फर्श के नीचे सुअरों और कुत्तों में जबरदस्त भिड़न्त शुरू हुई।

खाते-खाते कामा बोला, ''गाँव में कुछ सुगबगाहट हो रही है।''

''हाँ-हाँ, सही सुना तुमने। गाँव में सड़क आने वाली है। इस बाबत मैं जल्द ग्राम परिषद बाँगो की बैठक बुलाने वाला हूँ।'' गाँवबूढ़ा तामेन ने सूचना दी।

''तब तो गाँव का कायापलट हो जाएगा!'' हैरत में कामा ने कहा।

''हाँ, यह समझो कि गाँव का स्वर्णिम दौर शुरू होने वाला है।'' भौंहों को झपकाते हुए गाँवबूढ़ा तामेन बोले। आगे बात जारी रखते हुए, ''जिला हेडक्वॉर्टर के रूरल डेवलपमेंट डिपारमेंट दफ्तर से मुझे बुलावा आया था। इंजीनियर साहब के साथ मीटिंग थी मेरी। इस महाबदलाव और गाँव की तरक्की का हम सबको स्वागत करना होगा। और यह तरक्की मुफ्त में नहीं

आएगी, इसके एवज में हमें बड़ी राशि मिलेगी।''

''मैं समझा नहीं! सरकार हमारे लिए सड़क बनाएगी और हमें राशि भी देगी? क्यों भला?'' आशंकित कामा ने पूछा।

''जब हमारी जमीनों पर सड़क बनाएगी तो कीमत तो देनी पड़ेगी न! है कि नहीं?''

''अब समझा, तो सड़क के लिए हमें अपनी जमीन सरकार को देनी पड़ेगी!''

''और नहीं तो क्या! तो सड़क कहाँ बनेगी? हमारे सिर पर तो सड़क बन नहीं सकती।'' गाँवबूढ़ा तामेन कुछ झल्ला पड़े।

''वह सब तो ठीक है। लेकिन सड़क बनाने के लिए बड़े पैमाने पर जंगल काटे जाएँगे, जमीनें रौंदी जाएँगी।''

''नहीं तो सड़क बनेगी कैसी?'' गाँवबूढ़ा तामेन की झल्लाहट रोष में बदली।

''अगर जंगल उजड़ गया तो सदियों से हमारी पुश्तैनी जमीन-जंगलों की रक्षा करने वाली वनदेवी यापोम कहाँ जाएगी? एक दफा रुष्ट होकर यापोम उड़ गयी तो सारी सुख-समृद्धि भी उसके साथ चली जाएगी। आखिर गाँव वनदेवी से ही तो आबाद है!'' कामा चिन्तित हो उठा।

गाँवबूढ़ा तामेन व्यंग्यात्मक हँसी के साथ, ''सुख-समृद्धि? नये जमाने के साथ सुख-समृद्धि की परिभाषा भी बदल जाती है। सोचो जरा, सड़क आएगी तो स्कूल खुलेगा गाँव में। हमें अपने बच्चों को पीठ पर लादकर यूँ मीलों पैदल चलकर लखीमपुर के दड़बेनुमा होस्टलों में उन्हें गाय-गोरू की तरह ठूँसने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। हम सबके द्वार के समीप ही स्कूल खुलेगा। यह क्यों नहीं सोचते, सड़क तो जीवनरेखा होगी। तुम्हें याद नहीं तातर की बीवी का क्या हुआ! बाँस की खप्पचियों के बिस्तर पर लिटाकर लखीमपुर ले जा रहे थे मगर रास्ते में ही बच्चा और जच्चा दोनों खत्म। तुम्हें तो पता ही है इस तरह भयावह मौत मरने वाली औरत पुरखों के संसार उईमोक में प्रवेश नहीं कर पाती है, मजबूरन प्रेत बनकर यहीं-कहीं आस-पास भटकती है। तुम क्या चाहते हो हमारी औरतें ऐसी घिनौनी मौत मरती रहें और यह सुन्दर गाँव भूतहा गाँव में तब्दील हो जाय?''

कामा खाना खत्म कर हाथ धो चुका था, ''मैं आपकी बातों का कहाँ विरोध कर रहा हूँ। अस्पताल तो हर हालत में बनना चाहिए।''

''विरोध करना भी नहीं चाहिए और अस्पताल तभी बन पाएगा जब सड़क बनेगी। बिना सड़क के अस्पताल कोई आकाशी-मार्ग से उड़कर तो आने वाला नहीं। देखो जब कभी तरक्की, प्रगति और क्रान्ति आती है तो वह यूँ सस्ते में नहीं

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

चतुर्वेदी चन्द्रिका

सामाजिक बदलाव के 125 साल

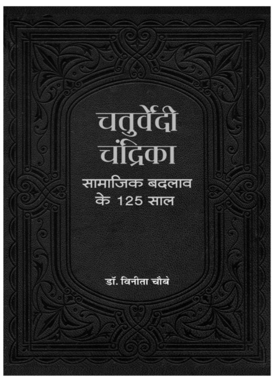

डॉ. विनीता चौबे

मूल्य ₹ 350/-

'चतुर्वेदी चन्द्रिका' का आगाज ऐसे समय में हुआ, जब एक ओर अँग्रेजों का शासन था तो दूसरी ओर हिन्दी भाषीय पत्रिकाएँ अपने शैशवकाल में ही थीं। सन् 1890 में माथुर चतुर्वेदी समुदाय की दीर्घजीवी मासिक पत्रिका 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' का प्रारम्भ हुआ। तब से अपनी सतत् 130 वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा में पत्रिका ने माथुर चतुर्वेदी समुदाय को जोड़ने, हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार, सामाजिक जागरूकता और साक्षरता को बढ़ावा देने, सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियों के संकलन और शिक्षा, साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में अद्वितीय अवदान देने वाले व्यक्तित्वों से समाज को रूबरू कराने वाले असाधरण कार्य किये हैं। 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका की यह दीर्घजीवी यात्रा बेहद बहुआयामी तथा श्लाघनीय है। सामुदायिक पत्रिका होते हुए भी इसने अपने समकालीन सभी राष्ट्रीय पत्रिकाओं के समानान्तर अपनी उपयोगिता सिद्ध की है। 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका के 250 से ज्यादा अंकों का गहन अध्ययन और विश्लेषण कर इस शोधपरक कृति में 'चतुर्वेदी चन्द्रिका' पत्रिका की सम्पूर्ण यात्रा का विवरण उपयुक्त तथ्यों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आती। चन्द आहुतियाँ तो माँगती ही है। हमें करना क्या है... सिर्फ अपनी जमीनें देनी है। वह भी मुफ्त में नहीं, इसके बदले में एकमुश्त तगड़ी राशि मिलेगी। उस राशि से मोटरबाइक या पिक-अप ट्रक ले लेंगे। ये जो हमारे बागानों में मकई, कद्दू पड़े-पड़े सड़ जाते हैं, अब ऐसा नहीं होगा। एक बार सड़क तो बन जाने दो, फिर देखो कैसी मालढुलाई होगी! हमारे खेत-बागानों की पैदावार को बाजार मिलेगा। लखीमपुर के हाट-बाजारों में हमारे अनाज होंगे, हमारी औरतों की बुनी रंगीन गालअ और गालुक कपड़े टँगे होंगे, फॉर्म की दवाइयों वाली दुबली मुर्गियों नहीं बल्कि पौष्टिक दाने चुगी हमारी मोटी-तगड़ी मुर्गियाँ होंगी। देखना, गाँव वालों के जीवन-स्तर में भारी उछाल आएगा।'' कहते-कहते गाँवबूढ़ा तामेन स्वप्निल संसार में खो गये।

जाड़े के मौसम में बारिश तो होनी नहीं, इसलिए जमीन अधिग्रहण और फिर सड़क बनने का काम युद्ध-स्तर पर आरम्भ हुआ। देखते-देखते ही फरवरी महीने तक कच्ची सड़क बनकर तैयार हो गयी। अब केवल तारकोल की परत बिछानी बाकी थी।

आज गाँवबूढ़ा तामेन के घर पर खूब चहल-पहल थी। इंजीनियर ने मुआवजा बाँटने के लिए आज का ही दिन मुकर्रर किया था। सवेरे से ही वह अपने सहायकों के साथ गाँवबूढ़ा के आतिथ्य का लाभ उठाते हुए चावल की मदिरा ओपो गटके जा रहा था। गाँव में लगभग अस्सी परिवार होंगे। यहाँ हरेक परिवार के मुखियाओं का जमावड़ा लगा हुआ था। बैंक खाते के अभाव में इन जमीनदाताओं को इंजीनियर ने मुआवजे में कैश बाँटा।

लखीमपुर शहर के बाहरी छोर पर स्थित सैकिया मोटर्स शोरूम में बाकी दिनों से उलट आज बिल्कुल अलग नजारा था। अजीब खामोशी, खालीपन और वीरानियत पसरी हुई थी। अपनी चमचमाहट और टिमटिमाहट से चाँद-सितारों की रोशनी को भी मात देने वाले सारे नये-नये मोटरबाइक एकदम से गायब। मोटरबाइकों का चमन अचानक उजाड़ पड़ा हुआ था। जान पड़ता है, अभी-अभी यहाँ कोई डकैती पड़ी हो। कहीं उल्फा-वल्फा जैसे भूमिगत संगठनों के कैडेटस् आकर मशीनगन का डर दिखाकर सारे मोटरबाइक उड़ा तो नहीं ले गये!

मगर नहीं।

शोरूम के अन्दरूनी कोने वाले ऑफिस में मैनेजर साहब इत्मीनान से बैठे हुए थे। सिर गंजा और तोंद यूँ निकली हुई मानो पाँच माह प्रेग्नेंट कोई महिला हो। होठों में तामुल-पान चबाते हुए नोटों की गड्डियाँ गिनने में मगन। जीवन-भर की कमाई तो आज एक दिन में ही हो गयी। मैनेजर लाल रँगे होठों से गुनगुना रहे थे– ''आजी बिहु बिहु लगी आसे!'' (आज बिहु उत्सव-सा माहौल लग रहा है)!

इधर यादा गाँव की कच्ची सड़क पर धूल का बवंडर उड़ा– भयंकर बवंडर! अस्सी मोटरबाइक सरपट दौड़े चले आ रहे थे मानो मोटरबाइक की रेस आयोजित हो। किसान से बाइकर बने मोटरवाहक उत्साह, उत्कंठा और उत्तेजना में हॉर्न पर हॉर्न बजाये जा रहे थे। हॉर्न की लम्बी, तीखी फटी बाँस-सी आवाज से गाँव की कुँवारी धरती बुरी तरह थरथरा उठी। आराम, अलमस्त, निश्चिन्त विचरण करते सुअर, कुत्ते, बिल्ली, बकरी, मुर्गी, मारे डर के घरों के नीचे दुबककर छिप गये। पेड़ों की शाखों पर फुदकते पक्षी किसी रहस्मयी साया के साथ दूर अनन्त क्षितिज को उड़ गये। यह किसकी साया थी? वनदेवी यापोम की! घर के आँगन में धूप दिखाने के लिए दरी पर बिछा धान, उसके थोड़ी दूर अन्न-भंडारगृह नुसु और किसानी बाइकर के चेहरे सारे धूल के गुबार में गड्डमड्ड और एकमेक हो गये। हम्म! इस गाँव को विकास की नजर लग गयी।

❑

जमुना बीनी

जन्म : 20 अक्तूबर 1984

शिक्षा : एमए (हिन्दी), पी-एच डी.

प्रकाशित कृतियाँ : जब आदिवासी गाता है (कविता-संग्रह); अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ (कहानी-संग्रह); दो रंगपुरुष– मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड (आलोचना); उईमोक (न्यीशी लोककथा-संग्रह) प्रकाशित। कहानियाँ एवं कविताएँ असमिया, अँग्रेजी, मलयालम, मराठी, सन्ताली, तेलुगु, उर्दू तथा तुर्की, बुल्गेरियन आदि भाषाओं में अनूदित। इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मिजोरम विश्वविद्यालय एवं इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक (म.प्र.) के एमए तथा बीए पाठ्यक्रमों में कविताएँ शामिल। नागालैंड विश्वविद्यालय, सिक्किम विश्वविद्यालय के एमए पाठ्यक्रम तथा सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु (उ.प्र.) के बीए एवं राजस्थान एनसीईआरटी के गवर्न्मेंट स्कूली पाठ्यक्रमों में और सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया के पाठ्यक्रम में कहानियाँ शामिल।

पुरस्कार/सम्मान : अखिल भारतीय हिन्दी सेवी संस्थान द्वारा राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान, पूर्वोत्तर हिन्दी अकादेमी का सरस्वती सिंह सम्मान, न्यीशी न्येम अचाम द्वारा वीमेंच अचीवर सम्मान, माननीय राज्यपाल अरुणाचल प्रदेश द्वारा नारी शक्ति पुरस्कार आदि कई पुरस्कारों/सम्मानों से सम्मानित।

सम्पर्क : हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख-791112 (अरुणाचल प्रदेश); मो. 9436044327

कहानी

साहिल फिर से कहो

सविता पाठक

दिमाग में ढेरों बातें चलती रहती हैं। जैसे पूरा दिमाग रेलवे स्टेशन हो। हर तरफ से आवाज आ रही है। खिलौने वाला चला जा रहा है। किसी को देर हो रही है। कोई तेजी से दौड़ कर आ रहा है। कोई बड़े इत्मीनान से चल रहा, जैसे उसे कहीं नहीं जाना है। तो कोई थक कर सो गया है, बेपरवाही से हाथ-पैर फेंक कर। दिमाग में मची अफरातफरी के बीच समझ में नहीं आता कि इसमें से मैं कौन-सा हूँ। मैं थक के सो गया, इंसान हूँ या हाथ में चाबी के गुच्छे लेकर भटकता हुआ कोई वेंडर या जल्दी-जल्दी चिप्स-कुरकुरे पैकेट खरीदती हुई कोई औरत। मेरे दिमाग में एक जमघट-सा लगा रहता है। बार-बार उसे नियन्त्रित करने की कोशिश करता हूँ कि मैं कौन हूँ? लेकिन मैं खुद को ढूँढ़ नहीं पाता। अपने ही भीतर अपने नाम को पुकारता हूँ। फिर ऐसे लगता है कि इस नाम से तो मेरा कोई परिचय नहीं है। जब बाहर से कोई बुलाता है तो फोकस करके उस आवाज को सुनता हूँ, जैसे कोई अनाउंसमेंट हो। बार-बार दिमाग को नियन्त्रित करने की कोशिश करता हूँ।

वो बोलता जा रहा था। बेतरतीब बातों को बड़े ही सिलसिलेवार तरीके से, लेकिन पहले के मुकाबले इस बार ज्यादा थकी हुई आवाज थी। शाम घिरती जा रही थी। जैसे उसमें अँधेरा भर रहा था और रोशनी आहिस्ता-आहिस्ता गायब हो रही थी। ठीक वैसे ही उसकी आवाज थी। दोनों मेट्रो स्टेशन के बाहर लगी पटरी पर चाय पी रहे थे। चाय वाले ने हमेशा की तरह समझ लिया कि वो दोनों दो कप चाय पिएँगे। उसने फिर एक कप थमा दिया। दोनों बगल में रखे एक बिजली के खम्बे की बेंच पर बैठे थे और मच्छर उन्हें उठाने के लिए जोर-जोर से सिर पर भनभनाने लगे।

यार ये सब छोड़, तू ज्यादा दिमाग लगाता है। जिन्दगी ज्यादा बुद्धि लगाने से नहीं चलती। वह रुक-रुक कर यही बोल रही थी।

तुम्हें क्या पड़ी है इस सबसे, परे हटाओ यार।

खुशबू ने किसी तरह उसे समझाने की कोशिश की। वैसे उसके पास समझाने के लिए कुछ खास नहीं था। एक मामूली-सी नौकरी थी और जिन्दगी के हजार पचड़े। अपने तईं हर दृश्य को देखकर आँख मूँदने की कोशिश करती थी, लेकिन साहिल का क्या करे। वह तो जब भी बोलता है, लगता है किसी ठहरे तालाब में कोई खूब सारे पत्थर फेंक रहा हो। जिससे पूरा तालाब हिल गया हो। बरसों की जमी काई फट गयी हो, लेकिन वह तो ऐसी इंसान थी जिसे बहुत ही कम धूप में जीने की लत लग गयी थी। उसके शरीर को, उसके मन को, दो कमरे के सीलन वाले कमरे के फ्लोर पर टिके रहने की आदत लग गयी थी, लेकिन साहिल को तो जैसे धूप की कुलबुलाहट हो। जैसे कोई बेचैन पेड़ जिसको कैसे भी करके अपने हिस्से की धूप लेनी हो।

साहिल बातें करते हुए छटपटाने लगता है। मन के भीतर की छटपटाहट उसके शरीर पर तारी हो जाती है। वो बोलते-बोलते काँपने लगता है। कहाँ-कहाँ की बातें करता है जैसे बहुत सारे लोग रूहानी बातें करते हैं। बात-बात पर कोई फलसफा सुनाते हैं वैसे वह बात-बात पर किसी न्यूज की कोई लाइन सुनाता है।

आइए-आइए, देखिए, यह देश कैसे बिक रहा है? आपको क्या चाहिए, बताइए-बताइए, रेल चाहिए कि बैंक। ओह आपको तो सिर्फ खाद फैक्टरी चाहिए।

साहिल धीरे बोलो, खुशबू उसकी तेज होती आवाज से घबरा जाती थी। अगल-बगल के लोग पलट कर देखने लगते। वह किसी न्यूज एंकर की तरह हाथ हिला-हिलाकर बोलने

लगता और हँसने लगता। वह हँसी उसे हर दिन और उलझन में डाल देती थी। ऐसे लगने लगता कि जल्दी ही वो इस बातचीत से भी दूर निकल जाएगा या कहीं सड़क के किनारे खड़ा होकर बड़बड़ाएगा। फिर वह क्या करेगी!

खुशबू ने चाय की ठेकी पर अपना मुँह दुपट्टे से छुपा लिया ताकि कोई उसे न पहचाने। साहिल ने उसकी उलझन भाँप ली।

उसकी आवाज मध्यम हो गयी। ठीक है, चल बड़ी छोटी-सी बात बताता हूँ, मेरी गली में एक छोटा-सा पिल्ला है। उसके पाँव में चोट लगी है। उसको रोज अंडा खिलाता था। जब उस दिन अंडा खरीदने गया, नवरात्रि चल रहे थे। मैंने पूछा अंडा है क्या? दुकान वाले ने मुझे घूर कर देखा। यार यकीन मान, मुझे अजीब-सी सिहरन हो गयी, कई बार मुझे लगता है कि दुकान पर अंडा लेने जाऊँगा और भीड़ मुझे पकड़ लेगी कि देख ये नवरात्रि में अंडा लेने आया है।

ये उसके लिए छोटी-सी बात नहीं थी। कुछ ही दिन पहले मीट बेचने वाले लड़के को पकड़कर कुछ लोगों ने बेवजह पीटा था। या कहें तो वजह इतनी जरा-सी थी कि किसी ने उड़ा दिया कि लड़का मंगलवार के दिन चोरी से मीट बेचता है। साहिल तब से बहुत ही परेशान रह रहा था।

साहिल बोलता जा रहा था। पतला-दुबला साहिल हलकी-सी दाढ़ी रखता था, लेकिन पिछले कुछ महीनों से उसने दाढ़ी बढ़ा ली थी। बिलकुल वैसे ही जैसे ज्यादातर लड़कों ने दाढ़ी बढ़ा ली थी, थोड़ी नुकीली बनाकर। खुशबू का ध्यान उसके शरीर पर लगा रहता है। उँगलियों के नाखून बहुत बढ़ गये हैं, आँखें बहुत रातों से न सोने से पथराई-सी लग रही हैं। वो पलकें भी कितनी कम झपकाता है! खुशबू का भीतर-ही-भीतर मन करता है कि नेलकटर लेकर उसके नाखून काट दे, लेकिन अगले ही पल सोचती है कि इससे क्या होगा!

उस बरस शहर की हवा साफ हो गयी थी। चिड़ियों ने नयी-नयी जगहों पर आशियाना बनाना शुरू कर दिया था। लेकिन घरों के भीतर की घुटन बढ़ गयी थी। शहर में दो खबरें एक साथ तैर रही थीं। एक ओर कोरोना की खबर थी तो दूसरी ओर दंगों का माहौल बन रहा था। लेकिन उन दोनों की जिन्दगी में एक तीसरी खबर और पसर चुकी थी। वह यह थी कि कम्पनी जल्दी ही बड़ी छँटनी करने वाली है। छँटनी का तनाव हर दिन बढ़ता जा रहा था। लगता था कि एचआर से आई हर अगली कॉल पर उन्हीं का नाम लिखा है। कर्मचारियों के व्हाट्सऐप ग्रुप बन गये थे। उसमें भी किस कम्पनी में कितनी छँटनी हो रही है, उसकी खबरें मिलती थी। सबकुछ अजीब था। सोशल मीडिया पर कोई कोई व्यंजन की रेसिपी डालता था

चित्र : कबीर राजोरिया

या फिर अपने हुनर को जाहिर करता था, लेकिन यहाँ सारा हुनर डर की आग में जल गया था। खुशबू को काम से नहीं निकाला गया था लेकिन तनख्वाह आधी हो गयी थी।

तभी उसे एक झटके से अकाउंट वाले गुप्ता जी ने बताया– ''मैडम, साहिल तो पागल हो गया है।''

''पागल हो गया मतलब!''

''अरे मैडम, आपने देखा नहीं कि वो बहुत बोलने लगा है, पता नहीं क्या-क्या बोलता है।''

खुशबू ने कोई जवाब नहीं दिया।

पागल शब्द पर उसे लगा कि वो खुद पागल हो रही है। पिछले कितने दिनों से उसे खुद नहीं समझ में आ रहा है कि वह क्या सोच रही है। पिछले कितने दिनों से एक लड़के को रोज गौर से देखती है। मेट्रो स्टेशन के बाहर एक कोने में बैठा रहता है, कुछ-कुछ बुदबुदाता रहता है, वह लाख कोशिश कर ले, लेकिन उसका ध्यान उधर जरूर जाता है। फिर कोशिश करती है कि उसकी ओर ध्यान न दे, लेकिन ऐसा कहाँ हो पाता है! आँखें उतनी भी दुनियादार नहीं होती है।

वह लड़का मेट्रो के पास वाली सड़क के एक कोने में बैठा रहता है। शरीर से भी लगातार कमजोर होता जा रहा है। आते-जाते लोगों को देखता रहता है। भीड़ का एक रेला बसों

से उतरता है, फिर बस ढेर सारे लोगों को अपने मुँह में भर लेती है। ऐसे ही मेट्रो का दरवाजा खुलता है। एक धक्का-सा लगता है और लोग उसके पेट में समा जाते हैं। फिर वही पेट कितने लोगों को उगल देता है। वह रोज इन भागते-दौड़ते लोगों को देखता है। क्यों देखता है वो सबको, क्या उसका कोई घर होगा, क्या उसके रिश्तेदार होंगे या कोई इसकी परवाह करने वाला होगा? जब भी उधर आँख जाती तो यही सवाल चुभने लगता। एक दिन खुशबू ने किसी से पूछा कि ये लड़का कौन है? ये ऐसे क्यों बैठे रहता है, कुछ खाने को दो तो लेता भी नहीं है।

मेट्रो की तरफ वह भी सबकी तरह तेजी से भागती थी, लेकिन एक दिन उसकी आँखों ने उसे गुमसुम बैठे लड़के के बारे में बात करने पर मजबूर कर दिया। फल वाले ने बताया कि ये घर शिफ्ट कराने वाले के यहाँ मजदूरी करता था। एक बार तीन मंजिले पर किसी का लोहे का बक्सा चढ़वा रहा था। बालकनी के ऊपर से हाईटेंशन तार जा रहा था। उसी से करंट लग गया। वहीं गिर पड़ा। अपने घर का इकलौता यही कमाने वाला था। इसकी माँ अब भी घरों में बर्तन माँजती है। दिन-दिन-भर भूखा रहता है, लेकिन किसी से भीख नहीं लेता है। माँ शाम को कभी-कभी पकड़ कर ले जाती है, खाना खिलाती है। वो भी क्या करे, बूढ़ी हो गयी है।

खुशबू के भीतर एक डर चिलक कर उठा और लगा कि कन्धे के पीछे की नस टूट गयी है। उसे लगा, उसका बैग उसके हाथ से गिर जाएगा। अगर साहिल को ऐसा हो गया तो वह क्या करेगी!

गुप्ता जी ने जब से कहा है कि साहिल पागल हो रहा है, उसका दिमाग किसी और चीज में लग ही नहीं रहा है। उस दिन ऑफिस का समय जैसे दु:ख की काली रात हो जो बिताये बीत नहीं रही थी। उसे कैसे भी करके साहिल को समझाना है।

साहिल को उसने मैसेज किया– ऑफिस के बाहर मिल। चाय पिलाऊँगी।

उसके और साहिल के बीच की सबसे सुन्दर कड़ी चाय थी। शाम को जब ऑफिस लोगों को निचोड़ के बाहर फेंक देते थे तो ये चाय ही थी जो दुबारा जान भरती थी। दोनों किसी तरह की भी चाय पी सकते थे। वे चाय पर कभी मौसम की तो कभी ऑफिस की बातें करते। चाय की इस हल्की-सी मीठी दोस्ती में साहिल ने खुशबू को कभी कोई ऐसी बात नहीं कही जिससे उसके भीतर की डरपोक लड़की और सिमट जाती। पहले वो अक्सर चुप ही रहता था। खुशबू ही दुनिया-जहान की बात करती थी।

लेकिन साहिल आज चाय की पटरी पर भी बोलता जा रहा था। अगल-बगल के लोग कभी हैरानी से उसे तो कभी खुशबू को देखने लगते। कभी हाँ में हाँ मिलाने लगते तो कभी कुछ समझ कर थोड़ी दूरी-सी बना लेते। साहिल तो जैसे लोगों की उपस्थिति से ही नावाकिफ-सा हो गया हो। अब तो उसे किसी के साथ से भी कुछ खास मतलब नहीं लग रहा था।

वह बोलते-बोलते खुशबू के बहुत करीब आकर बोलने लगा– ''जानती हो अनप्रोडक्टिव होना क्या होता है, बेकार होना क्या होता है? बेकार होना यूजलेस होना है। मैं यूजलेस हूँ। वैसे इस सिस्टम में हर आदमी यूजलेस है। एक साथ दस हजार लोग यूजलेस हो जाते हैं। कम्पनी उन्हें कहती है आउट। गेटआउट। जब तक गेट के अन्दर हैं यूजफुल, बाहर हैं तो बेकार।''

फिर कुछ थम कर बोला– ''लाखों लाख लोग ऐसे हैं यार, बहुत डर लगता है सबसे। मरने का डर उतना बड़ा नहीं होता है, नौकरी जाने का डर बहुत बड़ा होता है। आप अपने ही घर में बेकार हो जाते हो, माँ की नजर में, बाप की नजर में, खुद अपनी नजर में बेकार।''

उसकी आवाज फिर से तेज होने लगी। आस-पास के लोगों तक जाने लगी।

''ये देखो बेकार यूजलेस पीपल, इनके पास कोई काबिलियत ही नहीं। देखो मेरे दिमाग में समस्या है, यही कहोगी ना। काउंसलिंग, हर घंटा दो हजार चाहिए इसके लिए हा-हा। देखो ट्रेन आने वाली है। नहीं-नहीं मेरी कोई ट्रेन नहीं आती है, मुझे कहाँ जाना है, कहीं नहीं जाना है, मैं तो रोज यहीं आदतन आकर खड़ा हो जाता हूँ।''

खुशबू ने आहिस्ता से उसका हाथ पकड़ा। जब उसे कुछ नहीं आता तो वह किसी का हाथ पकड़ लेती है। उसे लगता है कि उसके हाथ उसके भीतर की बातों को ज्यादा सही-सही कह पाएँगे। वह अपनी भीतर की सारी ऊष्मा उन हथेलियों में भरती जा रही थी, लेकिन एक सन्देह भी भीतर समाता जा रहा था कि उसने ये करने में बहुत देर कर दी है।

''तुम बहुत सोचते हो, चिल करो यार, भाड़ में जाए सबकुछ। तुम अपने बारे में सोचो, तुम सोचो आंटी तुम्हारे बिना कैसे रहेंगी।''

उसके पास कुछ कहने के लिए खास नहीं था। बस यही बात वह बार-बार दुहरा रही थी।

''यही तो मैं कहता हूँ चिल करो, जस्ट चिल-चिल।'' साहिल उसे चिढ़ाने लगा। खड़े होकर फिर अजीब-सी हरकत करने लगा। ''देखो– अनुलोम विलोम, एक गहरी साँस लो, एक अन्दर जा रही उसे जाते हुए देखो, देखो वो गयी। गले में, फेफड़े मे रोक लो, गिनती गिनो, एक-दो-तीन, फिर साँस

धीरे-धीरे वापस छोड़ो।''

वो इस नाटक को भी पूरा नहीं कर पाया। जैसे कोई भूचाल आया हो, उसका पूरा शरीर हिलने लगा, फिर एकाएक शान्त हो गया। वह बोलता जा रहा था जैसे किसी बड़े से खाली गुम्बद में कोई फुसफुसाहट गूँज रही हो, फिर खुद ही यूँ फड़फड़ाने लगता जैसे वहाँ कोने-कतरे में दुबके सैकड़ों कबूतरों को किसी ने छेड़ दिया है।

''अरे छह दिन हो गये मामा का फोन आये। आगरे में बैंड और घोड़ी का काम था। कोरोना ने सब बर्बाद कर दिया। पूरे दो सीजन कुछ कमाई नहीं हुई। ऊपर से उनको कोरोना हो गया। अस्पताल ने पूरे ढाई लाख वसूल लिये। तुम भी पूछो कि इनश्योरेंस क्यों नहीं करवाया। अरे अब क्या बोलें! कितने दिन उन्होंने बैंड वाले लड़कों को भी खाना खिलाया, लेकिन कोई कब तक खिला सकता है, बैंड वाले लड़के सब टूट गये। घोड़ी बेचनी पड़ी। छह दिन से रोज फोन कर रहे हैं। नहीं, मुझे चिल करना है। अब मामा को कैंसर पता चला है। मैं गया था एम्स, कितनी मुश्किल से कार्ड बना। ...मुझे वापस उल्टी गिनती गिननी चाहिए।'' वह फिर से अनुलोम-विलोम का नाटक करने लगा।

चाय की दुकान पर कुछ एक लोग खड़े थे, उन्होंने कनखी से देखा फिर कुछ समझ के अनदेखा कर दिया। खुशबू के कन्धे की नस तेजी से चीसने लगी और जिन हाथों को इतना काबिल समझती थी कि वो किसी से भी उसके दिल की बात कहने में सक्षम हैं, वो आज बहुत कमजोर लग रहे थे। उसे अपने हाथ की नस इतनी कमजोर लगने लगी कि साहिल के हाथ से उसका हाथ आप ही छूट गया।

वायरस आधी तनख्वाह ले गया। फिर एक दिन ये आधी तनख्वाह भी कुछ लोगों को मिलनी बन्द हो गयी। लॉकडाउन शुरू हो गया। एक चुप पसर गयी। खटर-पटर करती प्रेस की मशीनें बन्द हो गयीं। स्कूलों को किताबें नहीं चाहिए थीं। कोचिंग संस्थानों को प्रतियोगी पत्रिकाएँ नहीं चाहिए थीं। खुशबू के ऑफिस में छोटे-बड़े जोड़कर सौ लोग काम करते थे, साठ लोगों को निकाल दिया गया। मालिकान ने बताया कि ऑनलाइन वर्क होगा। दूसरे क्लाइंट ने काम देना बन्द कर दिया है।

ये चुप समय था। कोई आवाज नहीं। सन्नाटे में सिसकियाँ और मातम जायज था। चलन था कि कोई किसी के साथ नहीं रोयेगा। रोना है तो किस्मत को रोइये।

साहिल को कोई काम नहीं मिला। मिलता भी क्या! काम की जगहों से तो लोग बेकार होकर निकल रहे थे। एक ऐसी फुर्सत का समय सबको मिला जिसमें सिर्फ उदास होने की फुर्सत थी। जिस फुर्सत के लम्हे के लिए लोग तरसते थे, वो किसी श्राप की तरह घर में भन्नाने लगी थी।

हवा में जैसे मांस जलने की गन्ध भर गयी हो।

खुशबू ने कितनी मिन्नत करके उसे मिलने बुलाया था, लेकिन वो अपने आपे में नहीं था। 'आइ वांट अ जॉब ह्वेयर माई बॉडी एंड सोल कुड स्टे टुगेदर!' यही लिखा था साहिल की सीवी पर। खुशबू ने इसे तुरन्त एडिट किया और लिखा– 'आई वांट टू सर्व द बेस्ट फॉर द ग्रोथ ऑफ ऑर्गेनाइजेशन।' भला ये भी कोई बात हुई कि आत्मा और शरीर एक साथ रहें! खुशबू थोड़ा-सा हँसी भी। लेकिन सर्व द बेस्ट का भी कहीं से जवाब नहीं आया। साहिल का हौसला पूरी तरह टूट चुका था। उसने खुशबू से एक-दो बार फोन पर बात की, लेकिन अब अक्सर उसका फोन स्विच-ऑफ रहने लगा। अब वो सोशल मीडिया पर भी नहीं आता था। खुशबू ने मैंसेजर पर उससे कहा कि प्लीज आकर मिल। अर्जेंट है।

उसका भी छह महीने बाद जवाब आया, मिलता हूँ।

खुशबू के घर वह पहले कभी आया नहीं था। बड़े शहरों के चलन के मुताबिक दोनों ने एक-दूसरे के घर जाने में कोई रुचि नहीं दिखाई थी। उनके घर किन्हीं मोहल्लों में थे। उन मोहल्लों की पहले से एक अजीब-सी साख थी। उन मोहल्लों के नाम रोज गार्डन हो सकते थे, लेकिन वहाँ झूठे ही सही कोई गुलाब आँखें उठाकर सूरज को नहीं देखता था। पतली-पतली तंग गलियों में हाई-टेंशन तारों और ढेर सारे कैमरों के बीच भी उदासियाँ घरों में घुस आती थीं। ये कहानियाँ रूप रंग बदल-बदल के लोगों का उपहास करती थीं। वो इतनी बार इतनी दफा वहाँ आती रहती कि उनका होना किसी एक्सीडेंट की तरह नहीं था। वहाँ घरों की खिड़कियाँ, दरवाजे, बालकनी इतने सटे हुए थे कि उदासियाँ कहीं से कहीं पहुँच जाती थीं। कई बार लगता है कि एक ही कहानी बारी-बारी से हर घर में घट रही है। आश्चर्य होता है कि उन कहानियों के कपड़े, डायलॉग कैसे बगैर बताये वहाँ पहुँच जाते हैं!

खुशबू ने साहिल को बहुत मिन्नत करके बुलाया था। हमेशा की तरह हँसता हुआ साहिल भीतर आया। खुशबू ने एक आश्वस्ति की साँस भरी।

''और सब मस्त है?''

''हाँ।''

फिर वो बेवजह मुस्कराने लगा, फिर वही बड़े से खाली गुम्बद में फुसफुसाहटें गूँजने लगीं और उसका शरीर खुद ही दुबके कबूतरों की तरह फड़फड़ाने लगा। चारों तरफ गर्द उड़ने लगी और खुशबू का दम घुटने लगा। उसे लगा कि मेज पर रखा

पानी का गिलास अभी ढलक कर नीचे आ गिरेगा।

''देखो-देखो, ये है वो जगह जहाँ यूक्रेन का जहाज खड़ा है। ठीक से देखिए, गौर से देखिए! और ये वो जगह है जहाँ अभी-अभी एक मिसाइल आकर गिरी है– भड़ाम-भड़ाम।'' वो बोल रहा था, पूरे कमरे में नाच रहा था। वह बोले जा रहा था, किसी न्यूज एंकर की तरह। दोनों एक साल बाद मिले थे। इस दौरान एक-आध बार दोनों ने फोन पर बात की थी। उनके बीच क्या पनपता, क्या नहीं, कोई कैसे कहे! मिट्टी के भीतर दबे अमोले भी तो बिन पानी के, बिन धूप के मर जाते हैं, कहाँ अँखुआते हैं! खुशबू के भीतर बस एक ही डर समा रहा था कि साहिल इतनी जोर-जोर से बोल रहा है, पड़ोसियों को पता नहीं क्या लगेगा! दूसरे कमरे से भाभी निकलकर वहाँ बैठ गयीं, जैसे कोई अनहोनी होने वाली हो और वो उसे रोक देंगी।

वो फिर सोफे पर बैठ गया। जल्दी-जल्दी बोलने और तेज-तेज हाथ-पाँव झटकने से साहिल की पीठ का दर्द और बढ़ गया। फिर वह फुसफुसाने लगा, ''मैं अपने पेट की समस्या से परेशान हूँ। सारा ग्लूटन बन्द कर दिया है, लेकिन फिर भी पेट ठीक नहीं रहता है। ऊपर से मेरे पीठ का दर्द, वो ठीक ही नहीं हो रहा है। तुम्हारे कन्धे का दर्द कैसा है? ...मैं चाहूँ तो फेसबुक पर लिख सकता हूँ लेकिन क्या होगा! दो-चार लोग लाइक करेंगे और दो-चार लोग गाली देंगे। माफी चाहता हूँ, आप बुरा नहीं मानिएगा। यूपी और बिहार वालों से, यार भूख से लोग मर गये और कितने मर जाते अगर लोग खाना नहीं खिलाते, लेकिन सवाल पूछा किसी से कि क्यों लोगों को मरने के लिए छोड़ दिया गया? कौन पूछता है ये सवाल। आप भी तो यूपी वाले हो।''

''यार तुम क्यों बोल रहे हो, हम तो दोस्त हैं, परे हटाओ यूपी-बिहार।'' खुशबू ने थोड़ा माहौल हल्का करने के लिए कहा।

''दोस्त, हाँ हम दोस्त हैं, हा-हा-हा! आई ऐम ओके, यू आर ओके दोस्त, दोस्तों का हाल नहीं देखा तुमने। वो भी कहते हैं कि वो दोस्त हैं। वो पुलिस भी कहती है कि वो लोगों की मित्र है।''

''यार पुलिस की बात कहाँ से आ गयी?'' खुशबू बार-बार उसे बातचीत का सिरा पकड़ा रही थी, लेकिन वह तो जैसे किसी अदृश्य ताकत से बात कर रहा हो। उस ताकत से बात करने के लिए वह अपनी पूरी ताकत लगा रहा था जैसे अपनी जीभ को किसी चीज से छुड़ा रहा है और इस प्रक्रिया में उसकी जीभ बार-बार बाहर निकल रही हो। भीतर की छटपटाहट से उसका हलक सूख रहा था। उसके होंठ सूखकर फट गये थे, उनमें से हलका-सा खून निकल आया।

वह बोले जा रहा था जैसे कोई तेजी से गोल-गोल पेन कागज पर घुमा रहा हो, शुरू में लगा कि गोला बना है लेकिन देखते-देखते वो रेखाओं का जंजाल बन गया।

''हमें पचहत्तर साल की आजादी से सिर्फ पाँच किलो चना चाहिए। चना देखा है, अन्दर उसमें कीड़े भरे हैं, पूरा चना खोखला है, लेकिन कैसे लाइन लगी है। रोजगार मिले न मिले, लेकिन ऐसा भी नहीं है, आदमी डरता है, वो कहाँ बोल पाता है। ...जानती हो वर्क क्या होता है! वर्क यानी काम होता है, यानी ऐसे ताकत लगाना जिससे कोई चीज अपनी जगह से हिल जाए।'' साहिल ने बोलते हुए मेज अपनी जगह से खिसका दी। ''इसे कहते हैं वर्क।'' भाभी थोड़ी और सतर्क हो गयीं।

''हमने क्या हिलाकर रख दिया, बताइए-बताइए। हम काम करके किसी चीज को हिलाकर रख देते हैं। हम लोग जो खुद हिल चुके हैं, मजाक है ये!''

''साहिल बस करो यार, मत परेशान होओ, सब ठीक हो जाएगा।'' खुशबू के पास दिलासा देने के लिए बहुत कम शब्द थे। सच तो ये है कि खुद उसकी जबान कुछ बोलने से पहले टूट जाती है। उसने अपने हर परिचित को साहिल की नौकरी के लिए पूछा था, सच तो ये था कि उसे खुद अपनी आधी तनख्वाह वाली नौकरी का भरोसा नहीं था। यह सोचते ही दु:ख की कहानियाँ प्रेत की तरह उस पर छाने लगतीं।

''मेरा नाम क्या है मैं बताता हूँ, साहिल। मेरी बहन का नाम सबा है। आपको भी लग रहा होगा कि मैं मुसलमान हूँ। यही तो प्रॉब्लम है आपको, नाम ही सुनकर कुछ का कुछ लग जाता है। हमारे यहाँ आदमी इतनी जल्दी कोई धारणा क्यों बना लेता है? आप भी बना लीजिए उस झा की तरह, जिस तरह उसने मुझे कहा था कि और बताइए साहिल साब, क्या हाल हैं? तख्ते ताउस तो गया आपका! यार वो किस इतिहास की बात कर रहा था। मेरा कौन-सा तख्ते ताउस। मेरे बाबा तो बँटवारे के वक्त आगरे में गट्ठर कन्धे पर लाद कर कपड़े बेचते थे, फेरी लगाते थे। फिर दिल्ली आये। मालूम आपको, उन्होंने उम्मीद नहीं छोड़ी थी। मेरी माँ मुझे ये रोज कहानी सुनाती है, मैं और मेरी बहन आगरे में पैदा हुए, मेरी माँ ने नाम रखा था मेरा साहिल। किसका साहिल, किसका किनारा, वैसे तुमको भी ये जानने में क्या इन्ट्रेस्ट है! ...मेरी पीठ में बहुत दर्द होता है। ये मत सोचो कि वैसे ही हो रहा है। मुझे लगता है कि मेरी पीठ पर कुछ लदा है। वो बहुत भारी है। पहले वो मुझे भारी नहीं लगता था। अभी भारी लगता है। क्या लदा है मेरी पीठ पर? देखो तो शायद इतिहास है या फिर उम्मीदें या फिर मेरी नाकामी। मेरी पीठ पर

कुछ लदा है।''

''साहिल बैठ जाओ, प्लीज। हम आराम से बातें करते हैं।'' खुशबू ने किसी तरह ये बोलने की ताकत जुटायी, लेकिन वह उससे बात कर रहा हो तब न! जैसे वह है ही नहीं, जैसे वह उससे नहीं किसी सिस्टम से बात कर रहा हो।

वह बोलता जा रहा था– ''यार! तुमने कभी रात को चाँद-तारे देखे हैं, देखकर देखना, जबरदस्त लगता है। रात कितनी सुन्दर होती है, काली शान्त। कुछ पल के लिए। यहाँ पूरे समय एक साथ लाखों इंजन चलते हैं घरररररर! इतने इंजन एक साथ, हर समय एक शोर भरा रहता है। लेकिन कई बार रात को लगता है कि ये घररर की आवाज कम हो जाती है। मैं इस आवाज को ढूँढ़ता हूँ। मेरे कान को इतनी खामोशी की आदत ही नहीं, हर समय आवाज की आदत है। रात को जब सब लोग सो जाते हैं तो बिल्लियों की आवाज सुनाई देती है। वो लड़ती हैं। दिन में उन्हें एक-दूसरे की आवाज नहीं सुनाई देती होगी। ये रात में जागकर तारे देखना क्या है, कभी देखना तुगलकाबाद के किले की वीराने में, वो लड़के तो रात को इकट्ठे होकर तारे देख रहे थे। आसमान, जैसे किसी कालीन पर सुनहरी बूटियाँ जड़ी हों। उनको क्या मालूम कि लोग इतने पागल हो चुके हैं। लोग इकट्ठा हो गये। उनकी जीप पर चढ़ गये। वो कहते रहे कि वो सब स्टूडेंट हैं। रात के आसमान को देखने के लिए इकट्ठा हुए हैं, वो डकैती करने नहीं आये हैं। लेकिन साला कौन सुनता है! भला शरीफ लोग तारे देखते हैं, ऊपर से दो ने तो दाढ़ी भी बढ़ाई थी। भीड़ में से कोई चिल्लाया– बांग्लादेशी हैं, चोर हैं। आप भी तो नहीं सुन रहे हो, आपको ही क्या फर्क पड़ता है!''

''यार मैं सुन रही हूँ।'' खुशबू ने किसी तरह बात को सँभाला। बात भटकाने के लिए कहा, ''चल मेरा हाथ देखकर बता कि मेरी शादी कब होगी...'' लेकिन उसे इन सवालों से क्या वास्ता था। ऐसा लगता है वो एक साथ दो दुनिया से बातें करता है।

''हाँ, मैं सितारे देखता हूँ, कुंडली देखता हूँ। मुझे बड़ा अच्छा लगता है कि जब कोई मुझसे अपना भविष्य पूछता है। भविष्य जाए जहन्नुम में, मैं तो मजे लेता हूँ। भविष्य जानने की इच्छा क्या है, जैसे पता ही न हो क्या भविष्य है। यार अखबार पढ़ लो, अपने अड़ोस-पड़ोस झाँक लो, भविष्य ही तो दिख रहा है। पूरी धरती का भविष्य, बच्चा नहीं हो रहा, बच्चा हो रहा, पढ़ाई, उसकी नौकरी, उसकी शादी, उसका बच्चा, बच्चा नहीं हो रहा, मुझे बच्चे पसन्द हैं। मुझे वो कुत्ते के छोटे-छोटे बच्चे पसन्द हैं, मैं दुकान पर अंडा लेने गया था।'' साहिल बातों को

सविता पाठक

जन्म : 2 अगस्त 1976

शिक्षा : उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में। हिन्दी की कई प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लेख और कहानियाँ प्रकाशित। इसके अलावा अनुवाद कार्य करती हैं। डॉ. आम्बेडकर की आत्मकथा 'वेटिंग फॉर वीजा' का अनुवाद। क्रिस्टीना रोसोटी की कविताओं के अलावा कई लातीन अमरीकी कविताओं का अँग्रेजी से अनुवाद। 'पाखी' के सालाना अनुवाद पुरस्कार से सम्मानित। वीएस नायपॉल के साहित्य पर शोध।

हाल ही में इनका पहला कहानी-संग्रह 'हिस्टीरिया' लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है जिसकी काफी चर्चा हुई। फिलहाल सविता पाठक दिल्ली विश्वविद्यालय के मैत्रेयी कॉलेज में अँग्रेजी साहित्य का अध्यापन करती हैं।

सम्पर्क : बी-93, आदर्श अपार्टमेंट, गली नम्बर-3, सन्त निरंकारी भवन के सामने, मटियाला एक्सटेंशन, उत्तम नगर, दिल्ली-110049

मो. 7042100247

दुहरा रहा था। कमरे में एक धुन्ध-सी छा गयी। ऐसे हो गया जैसे ढेर सारी कहानियाँ एक साथ, एक जगह बैठकर कोई डरावना खेल खेल रही हैं।

साहिल पहले के मुकाबले और डिस्टर्ब हो गया था। उसकी पतली लम्बी उँगलियों के नाखून और बढ़ गये थे, उसमें गन्दगी जमा हो गयी थी। बाल कटे नहीं थे। खुशबू उसकी दोस्त थी। कितनी थी, कह नहीं सकती, लेकिन उससे बड़ा ही अजीब-सा लगाव था। उसे हमेशा लगता कि इसके नाखून काट दूँ, बालों में तेल डाल कर कंघी कर दूँ। हो सकता है कि कुछ ठीक हो जाए। वह समझ नहीं पाती थी कि उससे कैसे बात करे। बातचीत हवा में तो नहीं हो सकती है। वैसे भी जब कोई पूछे कि कैसे हो उसके बदले कोई लगातार एक घंटे बोलता रहे तो पूछने को कुछ नहीं बचता। पूछने वाला भी घबरा जाता है। कई बार रस्मन हाल-चाल पूछने का मतलब कुछ जानना नहीं है, बस रस्मन हाल-चाल है।

वह दोनों एक ही जगह काम करते थे। साहिल ने उससे पहले ऑफिस ज्वाइन किया था। जब नयी-नयी थी तो उसका भी ध्यान साहिल की ओर उसके नाम की वजह से गया था, साहिल।

''आप मुस्लिम हैं?'' खुशबू ने पहला सवाल ही यही करके अपने गँवई मिजाज का हाल बता दिया।

साहिल हँसने लगा, ''हाँ जी।''

लेकिन बातों-बातों में पता लगा कि वह पंजाबी है।

''अरे कोई नहीं, नाम तो कुछ भी हो सकता है! मेरी भाभी का नाम चिन्ता है।''

''चिन्ता? हा-हा-हा!'' साहिल हँसने लगा।

''और मेरे गाँव के दोस्त का नाम सनम था और उसकी बहन का नाम फोटू।''

''सनम और फोटू, हा-हा-हा!''

बकलोल की तरह वह जितना मुँह खोल रही थी उतना ही अपने दिमाग की वायरिंग दिखा रही थी।

''लेकिन साहिल और सबा में ऐसा कुछ नहीं है मैडम। साहिल का अर्थ किनारा या मंजिल है और सबा मतलब सुबह।'' कहकर के साहिल हँसने लगा।

उसकी बातों में कोई मलाल नहीं था तो कोई बोझ भी नहीं बढ़ा। दोनों धीरे-धीरे टिफिन के साझेदार हो गये। साहिल की माँ टिफिन में मसालेदार अरबी की सब्जी भेजती थी। एकदम से सधी हुई भुनी अरबी, उसकी लाल रंग की परत चार घंटे बाद तक सही-सलामत रहती थी। कितनी बार हुआ कि खुशबू ने उसे अपनी टिफिन दी और उसकी टिफिन का खाना खाया।

साहिल एडिटिंग टीम का सबसे अलहदा लड़का था। वह एक रोटी गिलहरी के लिए लेकर आता था। लंच ब्रेक में से खुद खाना खाने के बाद पाँच मिनट तक गिलहरियों को रोटी के टुकड़े तोड़कर देता था। गिलहरियाँ उसकी टी-टी की आवाज सुनकर मानो हवा से उतर आती थीं। वो उनकी पीठ पर हाथ फेरता था। एकाध बार तो खुशबू साथ में खड़ी होती तो कहता, दूर जाकर खड़ी हो, नहीं तो वो डर जाएँगी। नेताजी सुभाष प्लेस की इस विशालकाय इमारत में अनगिनत ऑफिस थे, लेकिन पीपल का पेड़ इकलौता था। वह पहले खूब हँसती थी कि एक रोटी मेरे लिए और एक गिलहरी के लिए लाना इसकी आदत हो गयी है।

साहिल कभी-कभी वह बड़े सूफियाना अन्दाज में कहता था, ''यार जिन्दगी में क्या चाहिए! एक पेड़ हो, उस पर घोंसला हो, आस-पास गिलहरियाँ हों और आपके डिब्बे में दो रोटी ज्यादा हो।'' कहकर आस-पास उलझा माँझा उठाने लगता।

खुशबू हँसने लगती थी, ''क्योंकि एक रोटी तुमको मुझे देनी है और एक गिलहरी को।''

''यार ये माँझा, क्या करें इसका! लोगों को पतंग काटनी है, लेकिन वो तो आदमी की गर्दन तक काट दे रहा है। अपने मजे के लिए आदमी ऐसा कैसे हो जाता है!'' वो माँझे की गट्ठी बनाने लगता। उसको काट तो पाता नहीं था, लेकिन उसकी ऐसी गुड़री बनाने की कोशिश करता कि किसी के खोले न खुले। खुशबू इस नाजुक, नर्म दिल तबियत वाले आदमी को भीतर-ही-भीतर बहुत प्यार करती थी। बातों ही बातों में किसी से कहता, अपना हाथ दिखाओ और हाथ दिखाने का मामला हो या भूत का किस्सा, कौन भला खुद को रोक सकता है! भूत में यकीन करो न करो, लेकिन जो बातें भूत की बात करने में हैं, जो रोमांच है, वो भला कहीं और कैसे मिल सकता है! लोग चोरी से केबिन में आते और हल्के से मुस्करा कर कहते, साहिल भाई जरा हाथ देखना यार।

साहिल शुरू हो जाता। ज्यादातर बातें किसी के अतीत की। तुम्हारा ये था, तुम्हारा वो था, तुम्हारा एक्स और तुम्हारा वाई। खुशबू को हँसी आ जाती कि इसकी साहित्य की पढ़ाई इस ऑफिस में काम आती है। वो भी कहानियाँ सुनाने में। साहिल उसे समझाने लगता, इंसान की कहानी कहाँ एक-दूसरे से अलग है, तकरीबन एक-जैसी। जितनी दूर से सुनाओ, उतना ही एक-जैसी। समस्या करीब आकर कहने में है।

लेकिन ये बताते हुए कभी उसके इतने करीब नहीं आया कि कुछ बात हो पाती।

महामारी सब जगह पसर चुकी थी। सरकारी आदेश आ गया था वर्क फ्रॉम होम का। साहिल बहुत परेशान था। उसने बताया कि ऑफिस में ओवर स्टाफिंग है और हो सकता है कि लोगों की जॉब कट हो। वो खुद भी परेशान हो गयी। दो गज की दूरी की हिदायत लोगों के सुख-दुःख से दूरी में बदल गयी।

खुशबू को घर पर रहते हुए साल-भर हो गये थे। सैलेरी आधी आने लगी थी। किसी से शिकायत नहीं कर सकते थे। यह चुप समय है। साहिल की नौकरी चली गयी थी। वैसे ये नौकरियाँ जाती हैं तो खुशगप्पियों को लेकर चली जाती हैं। कोई दोस्त किसी को डर-डर के ही फोन करता है। लगता है कि कोई ये न कह दे कि ये तो खलिहर है।

खुशबू साहिल को समझाती, यार ऐसे नहीं सोचा करते हैं। लेकिन जब चुप समय में कोई एक बोलने लगे तो वह लोगों को पागल लग सकता है। साहिल कुछ ऐसा ही होता जा रहा था।

''यार कोई कैसे रोटी चलाएगा, बताओ मेरी बिल्डिंग में जो सीढ़ी पार्किंग की सफाई करती थीं, उनको लोगों ने काम से निकाल दिया है। कल वो आई थीं, बताओ क्या करे? यार देश ऐसे चलता है क्या?'' साहिल अकसर ही फोन पर देश-अर्थव्यवस्था और नौकरियों की हालत पर बात करता था। ये बातें वो बातें थीं जिनको करना नहीं था। भले लोग भला ऐसी बातें कहाँ कहते हैं!

इसी दौरान खुशबू को पता चला कि साहिल की माँ को हार्ट अटैक आया है। उसके पापा पहले से नहीं हैं। इस सूचना ने उसे भीतर तक झिंझोड़ दिया। पता नहीं वो कैसे सँभाल रहा होगा।

खुशबू को लगने लगा था कि ये देश युद्ध की आग में जल रहा है। हर घर में कहर बरपा है। डरे हुए, घबराये हुए रहना क्या होता है! एक दिन किसी ने ह्वाट्सऐप पर मैसेज भेजा कि देश में नमक खत्म हो गया है– जल्दी से जल्दी नमक खरीद कर रख लें। उसकी भाभी भी हाँफते हुए दुकान पर पहुँचीं। कोरोना से बचने के लिए बने गोल-गोल घेरे टूट चुके थे। लोग एक-दूसरे पर गिरे जा रहे थे। किसी तरह उन्होंने सौ रुपए में एक पैकेट नमक लिया।

ये डर के मोहल्ले थे।

कुछ दिन पहले गली के दो कुत्ते जो अब अपने ही हो गये थे, उनको खुशबू दूध से गीला करके ब्रेड दे रही थी। सूरज को अँधेरा तब तक निगल चुका था। तभी एक बुर्जुग-सी महिला उसके पास आई, माथे पर उन्होंने आँचल खींचा था। धीरे से बोली कि बेटा हमको भी कुछ दे दो। हम भी तो कुत्ता हैं, जो माँग रहे हैं। खुशबू को लगा जैसे किसी ने उसे बिजली का झटका दे दिया है। ऐसा लगने लगा कि एक खाई है जहाँ लोगों के हाथ फैले हैं और उनकी आँखों से सारे सपने गुम हो चुके हैं। वो उस खाई के किनारे खड़ी है और जमीन तेजी से दरक रही है।

एक बार फिर से साहिल से बात करने की तड़प बढ़ गयी। उसने एक-दो जानने वालों से बात की। कुछ पता नहीं चला। खुशबू की खुद की भी तबियत खराब थी। घर पर भाई और भाभी के झगड़े सुनती रहती थी। भाई को बेगारी निगल चुकी थी। उसने पता नहीं कितने तरह के पर्सनल लोन लिये थे, कोई कोई ऊपर आता और लोन नहीं चुकाने का परिणाम धमका कर जाता। कभी भाभी उनको सँभालतीं तो कभी भाभी पूरे दिन गाली देती रहतीं। भाभी की प्रेग्नेंसी का छठा महीना चल रहा था। उदासियों की कहानी कई रात कई दिन तक चलती है। उसमें कोई हामी भरे न भरे, वो बदस्तूर जारी रहती है। खुशबू की भाभी को डॉक्टर ने बेड रेस्ट कहा था। खुशबू ने कुछ दिन सबकी तरह मोमो बनाना सीखा, कुछ एक तरह का हलवा बनाया लेकिन पॉजिटीविटी उसकी गली में नहीं आयी।

रात के दस बजते नहीं कि घर के सामने गालियों का सीधा प्रसारण शुरू हो जाता है। इतनी चित्रात्मक गालियाँ पहले उसने शायद ही सुनी थीं। सामने वाले फ्लोर का मकान मालिक किरायेदार को चीख-चीख कर बुलाता है, फिर उससे अपने घर की हर चीज लेने का न्यौता देता है, साले ले ले मेरा फ्रिज ले ले, मेरा सोफा ले ले, कमरा तो कब्जा लिया। फिर गुस्से में पैंट पर कभी सामने, तो कभी पीछे हाथ रख कर कहता है कि ये भी ले ले। मकान मालिक छोटे से कद का कमजोर-बीमार-सा आदमी था। पन्द्रह बाई बीस गज के चार मंजिला मकान के दो फ्लोर का मालिक है। उसी में एक फ्लोर पर उसका परिवार रहता है। घर में दो जवान बेटियाँ हैं। उनके चेहरे सूखे और उदास ही दिखते हैं, जैसे लौकी में बीज पड़ गये हों, वो रुढ़ा गयी हो, उसके भीतर का पानी सूख गया हो।

किरायेदार तीन बच्चे का बाप है। पिछले चार महीने से किसी तरह घर चला रहा है। पिछले तीन महीने से किराया नहीं दे सका है। नौकरी छूट चुकी है। सुबह घर से निकल जाता है और रात वापस आता है। तीसरा बच्चा हाल में ही पैदा हुआ है, घर के दोनों छोटे बच्चे बाहर बिल्कुल नहीं निकलते। किरायेदार को देखकर लगता है कि वो किसी दिन खुद को मार लेगा या मकान मालिक को मार देगा। मकान मालिक को देखकर लगता है कि इसका परिवार मानसिक सन्तुलन खो देगा।

खुशबू को अड़ोस-पड़ोस की खबर दुकानदार औरत देती रहती है। वह कभी-कभी बालकनी के बाहर आकर खड़ी होती थी। वहाँ से खुद उसकी जिन्दगी किसी शून्य में जाती दिखाई देती थी। ठीक वैसे ही जैसे हाईटेंशन तार किसी शून्य में जाता है। घर के सामने वाले घर में एक डॉक्टर का क्लीनिक था। कोई बी.ए.एम.एस. डॉक्टर था। उसके यहाँ लोगों की भीड़ लगी रहती थी। कभी-कभी लोग ठेले पर मरीज लेकर आते थे। रात को कभी-कभी जोर-जोर से कोई गेट बजाता था। अन्दर से कोई गेट नहीं खोलता था। कुछ दिन हो गये डॉक्टर वहाँ से चला गया है। अब भी मरीज आते हैं, घंटी बजाते हैं, वापस चले जाते हैं।

पूरे दो महीने हो गये हैं। उसे आधी रात को गेट की बेल सुनाई देती है। उसकी नींद टूट जाती है। भाई-भाभी सबने कह दिया है कि कोई घंटी नहीं बजती है, तुम्हारे दिमाग का वहम है। खुशबू रात को अक्सर ही उठती है। उसे घंटी सुनाई देती है। वह फिर से सबकुछ चेक करती है कि कहीं कोई छुप जाता हो। लेकिन बाहर रात का निचाट अँधेरा होता है। अब वह बिस्तर पर उठकर खुद को समझाती है कि कुछ नहीं है, कुछ नहीं है।

साहिल किसी सोशल मीडिया पर नहीं है। उसको रह-रह कर याद आती है। किसी तरह दिल को बहलाती है कि शायद उसका परिवार आगरा शिफ्ट कर गया हो।

एक दिन दोपहर में उसे बड़ा ही अजीब-सा ख्याल आता है–

फर्नीचरवाला, सब्जीवाला।

फेरीवाला, सब्जीवाला।

रिक्शावाला, सब्जीवाला।

बारदाना वाला, सब्जीवाला।

कबाड़ीवाला, सब्जीवाला।

पर्सवाला, सब्जीवाला।

फ्रेम वाला, सब्जीवाला।

गली में हर आदमी सब्जीवाला बन गया है। क्या पता कहीं साहिल भी सब्जी तो नहीं बेचने लगा है।

एक कागज ने सबकुछ रोका था। एक कागज ने सबकुछ फिर से खोल दिया। जिन्दगी में धुआँ और धूल वापस आ गयी। मेट्रो और बसें लोगों को उगलने-निगलने लगीं। खुशबू वापस ऑफिस आने जाने लगी है। उसने पहले से आधी सैलरी पर दूसरी नौकरी ज्वाइन कर ली है। लोगों के पास जितने मौत के किस्से हैं, उतने ही जीते जी मरने के किस्से। मौत के किस्से को भी सुना लेते हैं और आँखों से कुछ बूँदें गिरती हैं, लेकिन दूसरे किस्से को दिल में ही दबा कर रखते हैं। वह तो चुप समय का चलन हो गया है।

पूरे चालीस मिनट हो गये हैं। मेट्रो नहीं आई है। एक अनाउंसमेंट हो रहा है– सॉरी फॉर द डिले इन दिस रूट। इनकनविनियेंस इज रिग्रेटेड। स्टेशन पर भीड़ बढ़ती जा रही है। इस भीड़ में भी खुशबू सोचती रहती है कि कहीं साहिल दिख जाए। वैसे वह खुद भी साहिल-जैसी कुछ हो रही थी। खैर वो कहीं नहीं दिखा।

मेट्रो आई। यात्री आपस में बोले जा रहे थे, ''यार वो इतने अचानक कूदा कि कुछ समझ नहीं आया। कैसे कोई कर लेता है सुसाइड!''

खुशबू का दिल घबराने लगा। हड़बड़ा के पूछा– ''कौन था, आपने देखा कि कैसा लड़का था?''

बगल में खड़ी लड़की उसे नॉर्मल करने के लिए थोड़ा मुस्करा कर बोली– ''अरे परेशान नहीं होइए, आजकल ये तो हो ही रहा है। दरअसल ट्रैक साफ करने में टाइम लग गया, लेकिन है तो बहुत ट्रैजिक।''

लोगों से पूरा डिब्बा कसा हुआ था। खुशबू को लगने लगा कि उसकी साँस घुट रही है। वह कुछ बोलना चाह रही थी लेकिन मुँह से कुछ निकल नहीं रहा था। लग रहा था कि गला बिलकुल सूख गया है।

उसने किसी तरह बगल में खड़े आदमी से कहा– ''प्लीज मेरी तबियत खराब है, मुझे उतार दीजिए।''

एक नौजवान लड़के ने हाथ पकड़कर उसे उतारा। खुशबू को लगा कि इस मेट्रो को छूकर देखे, लेकिन मेट्रो नहीं रुकी, चली गयी। उसके एक कोने पर खून लगा था।

खुशबू के दिमाग में साहिल की आवाज गूँज रही थी।

वो बोले जा रहा था– ''लोग क्यों मर जाते हैं! यार क्यों न मर जाए स्साला, ये कोई नौकरी होती है! आज है, आज नहीं है, सारी वर्कलोड, नहीं, जाओ एचआर से मिल लो। आपको पता है इस देश में इतने लोग बेरोजगार हैं। कल ही वो अभिषेक का फोन आया था कि कहीं कोई भी ओपनिंग हो तो बता दूँ। यार मैं क्या बताता कि मेरी नौकरी का खुद कुछ पता नहीं। आपको पता है दुनिया में डर क्या है! मैं बताता हूँ मेट्रो के आगे कूदना डर नहीं है, सबसे ज्यादा डर तब लगता है कि आप इस सिस्टम से आउट कर दिये जाओगे।''

जिस लड़के ने उसे मेट्रो से उतारा था, वो कुछ पूछ रहा था। खुशबू को उसकी एक बात नहीं समझ आ रही थी। उसके मुँह से जैसे कोई विनती निकल रही हो कि प्लीज मेरा हाथ अभी नहीं छोड़िएगा और बड़बड़ाने लगी– साहिल मुझसे बात करो, मेरे साथ बैठो एक बार। तुम कहाँ हो साहिल? यकीन मानो मैं बहुत बीमार हूँ, मुझे तुम्हारी जरूरत है।

साथ उतरा लड़का एक गहरे असमंजस में उसका हाथ थोड़ा ढीला करता है, फिर थोड़ा मजबूती से पकड़ लेता है।

''आप ठीक हैं न?''

''हाँ, थैंक्यू। मैं ठीक हूँ।''

खुशबू मेट्रो स्टेशन से बाहर निकलना चाहती थी। किसी तरह खुद को संयत किया और बाहर आ गयी। सड़क पर माँझा बिखरा पड़ा था। वह गिरते-गिरते बची। मेट्रो स्टेशन के बाहर पटरी पर रखे पत्थर पर जाकर बैठ गयी। दिमाग ने तेजी से सारे कनेक्शन काट दिये। आँखों ने तुरन्त बात मानी और आँसू तेजी से नमक में बदल कर गले में घुल गया।

सूरज अपने डूबने की ड्यूटी पूरी कर रहा था। सामने के पेड़ पर एक घोंसला था। उसी घोंसले के बाहर एक कौआ माँझे के गुच्छे में अटककर उलटा लटककर मर चुका था, जैसे किसी के पर काटकर उसके घर के सामने ही फाँसी पर लटका दिया गया हो। पेड़ की शाख पर एक गिलहरी तेजी से चढ़ उतर रही थी और इन सबमें एक साथ लाखों मोटरों के इंजन घरररर की आवाज हो रही थी। खुशबू की आँखें इस घर्र-घर्र में साहिल को सुन रही थी। वो बड़े सूफियाना अन्दाज में बोले जा रहा था– यार जिन्दगी में क्या चाहिए! एक पेड़ हो, उस पर घोंसला हो, आस-पास गिलहरियाँ हों और आपके डिब्बे में दो रोटी ज्यादा हों।

❑

साहब-बीबी की कहानी में होना एक गुलाम का

सपना सिंह

कहानियों का क्या है, चलती रहती हैं। एक मुँह से दूसरे मुँह, दूसरे से तीसरे मुँह तक तैरती हुई। लोग हुँकारी भरकर सुनते भी रहते। बड़े लोगों की बड़ी कहानियों में बातें भी बड़ी-बड़ी। न रहे महल-दुमहले, न रहे राजे-महराजे... सब कहने की बातें। होने को राजे-महराजे भी हैं, उनकी महल-अटारी भी और वही शान-मान भी।

अब यहीं का ले लो न, दूर क्यों जाना! ऐसा कोई नामी-गिरामी राज्य-रजवाड़ा न सही, पर थी तो राजशाही ही। राजा का सिंहासन भी था/है, भले राजतिलक न होता हो अब।

पर कभी तो होता ही था। इस राज्य की खास बात ये थी कि, इस पर न मुगलों की नजर गयी न अँग्रेजों की। दोनों के लिए ये राज्य महत्त्वहीन रहा। वो भी अगल-बगल के राज्यों तक भूल-भटकते आये भी तो आगे नहीं बढ़े। अनुपजाऊ पथरीली जमीन और दीन-हीन जनता ने राज्य को बचा लिया। निरापद रहकर अपनी ही गति से यहाँ का राजकाज चला। अपनी उम्र पूरी करके राजा लोग स्वर्ग सिधारते रहे और उनकी जगह उनके उत्तराधिकारी राजा बनते रहे। इतिहास की किसी किताब में किसी लड़ाई, किसी हार-जीत का इस राज्य से सम्बन्ध नहीं रहा। किसी ऐतिहसिक सन्धि, कूटनीति मे कहीं इसका नाम नहीं था। पर था तो सम्प्रभुता-सम्पन्न राज्य ही। सरदार पटेल जब हिन्दुस्तान में सभी रजवाड़ो का विलय करा रहे थे तो इस राज्य के राजा के पास भी विनयपूर्ण निवेदन आया था, जिसे न स्वीकारने पर देश का नक्शा जाने क्या होता। आखिर बीचोंबीच था ये राज्य!

इस राज्य की जनता अब भी किले के रहवासी को राजा ही कहते हैं अपने भीतर शिकायतों का पहाड़ उठाये। जनता को शिकायत कि राजा-राजा जैसा नहीं लगता। माने, न अपने बाप-जैसा आन-बान-शान, न वैसी देह-गठन। एक व्यक्तित्वहीन व्यक्ति। अब, राजा होने-मात्र से तो व्यक्तित्व पैदा हो जाना तो इन छोटे लोगों की ज्यादती ही है। नेपोलियन कौन-सा लम्ब-तड़ंग था! इतिहास की किताबों में साफ-साफ लिखा है, नेपोलियन नाटा-नूटा आदमी था।

हाँ तो बात चल रही थी, बड़े लोग की बड़ी कहानी में शामिल बड़ी-बड़ी बातों की...

इस राजघराने की भी कई सच्ची-झूठी कहानियाँ लोग कहते थे। एक जो सबसे प्रचलित कहानी थी, जो शहर से लेकर गाँव तक में चौपालों, पान के दुकानों में कही जाती, वो थी कि रानी तो ड्राइवर के साथ भाग गयी थी। रानी माने वर्तमान राजा साहब की पत्नी। वैसे कहने वाले तो कहते हैं, राजमाता यानी राजा साहब की माताजी भी कुछ भगोड़ी-टाइप की ही थीं। जब नहीं तब राजमहल छोड़, राजा को छोड़ कभी लम्बे समय के लिए अपने मायके चल देतीं या जो राजा साहब की आसपास के इलाकों में गढ़ियाँ या महल थे वहाँ चली जातीं अपने लाव-लश्कर समेत। उनके बारे में भी यही कहा जाता कि वो महल छोड़ भाग गयी हैं।

'भागना' शब्द एक स्त्री के साथ जुड़कर बहुअर्थी सन्दर्भ गढ़ लेता है।

बात बहुत पहले की बतायी जाती है। सचमुच के महाराज साहब की बात है ये... सचमुच के महारानी साहब की भी बात है ये। तब सिर्फ ये शहर ही नहीं, आसपास के पाँच-छह जिलों के वही महाराजा माना जाता था। रानी साहिबा पश्चिम के उस राजघराने से ताल्लुक रखती थीं जहाँ की राजकुमारियाँ विश्व की खूबसूरत औरतों के समकक्ष हमेशा दूसरे-तीसरे पायदान में रहतीं। कहते हैं, महाराजा साहब विवाह के लिए अपने दल-बल के साथ शान-शौकत से बारात लेकर जब अपनी होने वाली ससुराल पहुँचे तो विवाह की रात-भर चलने वाली रस्मों के बीच चुहल करती एक सोनी-सी लड़की ने उनका मन मोह लिया था।

बारात दुल्हन लेकर वापस अपने राज्य आ गयी। लम्बे सफर की थकान और महल में चलने वाले जश्न, रीति-रिवाजों और टूटटे बदन की बाकायदा मालिश करवाकर थकान से निजात पाकर, और नवेली पत्नी के सान्निध्य-सुख से तन-मन को तृप्त कर जब फारिग हुए तो फिर नजरों का रुख दीगर बातों की तरफ गया। पत्नी तो खैर राजकुँवर ही थीं। आन-शान में कुछ इक्कीस-सा ही पड़ता था उनका मायका। राजघराने का खून पत्नी की रीढ़विहीन भूमिका में बहुत सफल नहीं होना था, ये तय ही था। इतिहास मे ऐसे ढेरों रानियाँ हुई हैं, जो पति के दिल में नहीं रह पायीं पर राजरानी के ओहदे पर पूरी गरिमा और ठसक से बनी रहीं। हमारी ये दुल्हन साहब भी आगे के जीवन में राजा साहब के जीवन से कम होती गयीं। राजा साहब ने विवाह से एक कुलीन स्त्री तो पा ली बतौर रानी, जो उनको उत्तराधिकारी देती पर उनका दिल तो उस सोनी लड़की ने चुरा लिया जो उनकी पत्नी के साथ आयी थी। सहेली थी या लौंडी, नहीं पता। उस जमाने में तो छोटे-मोटे जमींदार, बड़े वकील या व्यापारी की बेटियों के साथ भी एक नाउन अथवा सेविका आती थी, जो अपनी बहिनी का ख्याल रखती। वो क्या, कितना खायेगी, कब नहायेगी। उसका कपड़ा लत्ता सँभालना, जेवर गहनों का ध्यान रखना। बक्सा, अटैची खोलकर कपड़े निकाल कर देना, निकाले कपड़े रखना। बाल धुलाना, सुलझाना। चोटी जूड़ा बनाना। दुल्हनों के साथ लौंडी भेजने का रिवाज शायद इसलिए रहा होगा कि दुल्हनों की निजता बनी रहे। ससुराल पक्ष के नौकर-नौकरानियों में दुल्हन के कमर की नाप या उसके वक्ष की उठान के चर्चे न हों। नये परिवेश और नये लोगों के बीच खुद को अच्छे से स्थापित करने के लिए साथ में आईं ये लौंडी या नौकरानी बड़ी सहायक होती थीं। ज्यादातर ये लौंडी या नौकरानी वहीं अपनी मालकिन के साथ रह जाती थीं। सेवा करने में इनका जीवन खर्च हो जाता था।

साहब-बीबी की कहानियों में गुलामों की एक खास भूमिका होती। दरअसल ये ही असली वाचक होते थे महल की कहानियों को लोक में फैलाने के।

हाँ तो हुआ ये कि महाराज साहब का दिल रानी की सेविका पर आ गया। अब महाराज को तो किसी का डर-वर होता नहीं है, उन्होंने एक कोठी कुछ चाकर अपनी दिल की रानी के नाम किये और ज्यादातर समय उसी कोठी पर रहे आये। दरअसल जो सचमुच की राजकुमारियाँ होती थीं, उनके ताव कुछ कम नहीं होते थे तो वो रानियों वाली इज्जत मान तो पा जाती थीं पर एक पुरुष की प्रेमिका बन पाने में नाकामयाब ही रहती थीं। पुरुष चाहे राजा-महाराजा हो या सामान्य नागरिक, उसे पूरी तरह समर्पित स्त्री ही जीतती है।

इस राजघराने की रानियाँ भी राजपरिवार को वारिस देकर अपना राजधर्म निभाकर राजा-महाराजा की कारगुजारियों से निर्लिप्त हो जाती थीं। कई पीढ़ियों से ऐसा ही चलता आ रहा था।

तो राजा किसके साथ सो रहे हैं और किसके पहलू में उनकी सुबह हो रही है, रानी के कमरे से आधी रात को किसको निकलते देखा गया, कौन राजा का खासमखास है तो कौन रानी साहिबा का खास, फलाने राजा साहब को औरतों से ज्यादा आदमी भाते थे, उनकी सेवा में राज्य-भर के कमसिन सुन्दर लड़के लगे होते– ऐसी कहानियाँ राजमहल के प्रांगण से निकलकर मुँह-मुँह होते हुए कुछ और नया किस्सा जुड़ते-जुड़ाते एक नया किस्सा बन जातीं जिन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी पौनी परजा अपने गाँव-घर में कहती-सुनाती रहती।

इन्हीं राजा साहब के छोटे भाई, जिनको दादासाहब के नाम से जाना जाता था, को तो सारी परजा दबे-दुबे स्वर में हिजड़ा कहती थी। बेचारे के कोई बच्चा नहीं था और छोटी रानी साहिबा अपने भाई के बेटे को बाकायदा कानूनन गोदनामा लिखाकर गोद ले चुकी थीं। महल की इस रानी के बारे में महल के दास-दासियों के साथ-साथ बड़ी रानी और उनके दास-दासी सखी-सहेली सब में ये बात मानी जा चुकी थीं कि, उन्होंने लालसाहब के निजी सेवक के लड़के को रख रखा है।

अब ये रख रखना भी इन लोगों के सन्दर्भ में एक अलग ही मायने रखता था। निजी सेवक के जिस बेटे को रखने की बात होती थी, वो शहर में रहकर पढ़ाई करता था। छुट्टियों में घर आता तो रात-दिन छोटी रानी के कमरे में बन्द रहता। कमी तो छोटे राजा में थी, लिहाजा वो इस सबसे निर्लिप्त रहते। निजी सेवक के लड़के का सारा खर्चा छोटी रानी उठातीं। वो शहर में पढ़ता। हफ्ते-दस दिन में गाँव आता। रानी को प्रणाम करने जाता। दोनों घंटों के लिए कमरे में बन्द हो जाते। रानी फिर बड़ी उदार, बड़ी खुशदिल बनी रहती अगले कई दिनों तक। फिर एकाएक से उनका मिजाज बिगड़ने लगता। सेविकाओं पर झल्लाने, बिगड़ने लगतीं! फिर किसी सेवक को शहर भेजतीं। सन्देश मिलते ही उनका युवा सेवक हाजिर हो जाता।

कालान्तर में ये सेवक पुत्र एक कस्बाई शहर में प्रोफेसर हुए। जब तक छोटी रानी जीवित रहीं, उनके एक बुलावे पर वह उनकी सेवा में हाजिर होते रहे। रानी उम्रदराज होने के क्रम में शरीर की कामनाओं से उदासीन होती गयीं पर सेवक पुत्र के प्रति उनका स्नेह मृत्यु तक बना रहा। सेवक पुत्र ने भी अपनी वफादारी उनके प्रति बनाये रखी। उसने कभी अपने उनके

सम्बन्ध का किसी से हँसी में भी जिक्र नहीं किया। न उनके रहते, न उनके बाद। ये किस्से महल के दास-दासियों से फुसफुसाहटों में कहे सुने और वितरित किये जाते। प्रत्यक्ष प्रमाण किसी के पास नहीं था।

पीढ़ियों से सच्ची-झूठी कहानियाँ चलती रही हैं। तो ये कहानी भी किसी भी राजमहल, राजा-रानी और गुलाम की हो सकती है। बहरहाल किसकी कहानी है, महत्त्वपूर्ण ये नहीं है। महत्त्वपूर्ण कहानी है और कहानी के पात्र हैं।

वर्तमान राजा जो चालीस साल पहले राजकुमार थे और राजा महाराजाओं वाली विशेष आदतों से लैस हो रहे थे और शायद जब स्कूल में ही थे तभी एक विजातीय लड़की के प्रेम में पड़ गये। प्रेम, वो भी किशोरावस्था का– एक तो करेला उस पर नीम चढ़ा। स्कूल से कॉलेज और फिर विश्वविद्यालय। प्रेम अपर्वतनीय रहा। और राजकुमार महोदय राजा साहब, रानी साहिबा और सारी रिआया की परवाह किये बिना सेना के कर्नल की बेटी से कोर्ट मैरिज कर आये।

रिआया, राजमहल और राजा-रानी कोई नकली तो थे नहीं। असल के थे। आज तक राजवंश में राजपूत राजवंश की ही राजकुमारियाँ रानी बनकर आती रही थीं। ये पहला मौका था कि एक दीगर कास्ट की लड़की से होने वाले महाराजा साहब ने विवाह कर लिया। पूरी रिआया तो बातें बना ही रही थी। राजमहल में भी इस शादी को स्वीकार नहीं किया गया। कहने वाले कहते हैं, नयी-नवेली युवरानी को महल में घुसने नहीं दिया गया था। वह दूसरी कोठी में बसाई गयीं।

युवरानी आर्मी अफसर की बेटी थीं। राजमहल के रंग-ढंग उन्हें रास नहीं आते थे पर प्रेम से वशीभूत थीं तो निभा रही थीं। पहलौठी में ही बेटा जन कर उन्होंने महल वालों का दिल भी पिघला दिया। डेढ़ साल बाद ही बेटी भी हो गयी। राजा-रानी भी आखिर थे तो इंसान ही। कहते हैं मूल से प्यारा सूद होता है। तो वो भी पोता-पोती के प्रेम में पड़कर युवरानी पर लगाये नियम-कानून में धीरे-धीरे ढील देने लगे। पहले बच्चों का महल में आना-जाना शुरू हुआ, फिर युवरानी भी आने लगीं और अन्ततः महल ने अपनी युवरानी को स्वीकार कर लिया। महल के बाहर किस्सों में किस्से जुड़ते रहे, दो बात की चार बात बनती रही और महल की जिन्दगी चलती रही।

राजा और रानी में नहीं पटती थी। रानी ऐसे राजघराने से थीं जहाँ हर त्यौहार उत्सव पर नृत्य-संगीत होता रहता था। उन्होंने बकायदा शास्त्रीय नृत्य-संगीत सीखा था। महल में भी अक्सर वो मगन होकर नाचने गाने लगतीं और नौकर-चाकर-परिचारिकाएँ हैरत से मुँह बाये उन्हें देखते– ये कैसी रानी हैं? जरा भी लाज

चित्र : कबीर राजोरिया

नहीं। इस राजघराने की स्त्रियाँ नौकर-चाकरों के सामने भी हाथ-भर घूँघट काढ़े रहतीं पर ये रानी तो अलग थीं। मूड़ उघारे कभी बगीचा कभी मन्दिर चली जातीं।

ये कुछ या शायद इससे ज्यादा आपसी कुछ मसले थे राजा-रानी के। महल वाले बताते, दोनों की बिल्कुल नहीं पटती। रानी अक्सर अपने मायके गुजरात या मुम्बई में अपनी कोठी पर चली जातीं। अगर वो महल में होतीं तो राजा साहब लाव-लश्कर-समेत अपनी अन्य जागीरों की ओर निकल जाते या शिकार खेलने चल देते। अगर राजा महल में होते तो रानी बाहर, रानी महल में होतीं तो राजा बाहर।

रानी साहिबा भले अपने ससुराली अदब-कायदे को अपनाने में अरुचि दिखाती थीं पर थीं तो वो भी राजघराने की ही। राजघराने के पुरुषों के सारे छल-छछन्दों से पूरी तरह वाकिफ। तो राजा साहब उन्हें छोड़ कहाँ-कहाँ, किस-किससे अपने मनोरंजन के सरंजाम बनाकर रखे हैं, उनके जासूस उन्हें पूरी खबर देते। वो भी अपनी तरह से अपनी जिन्दगी जीतीं। राजघराने का खून उन्हें भी किसी के सामने झुकने की इजाजत नहीं देता था, भले वह उनके पति परमेश्वर ही क्यों न हों! न जाओ सइयाँ छुड़ाके से बइयाँ वाला कोई सीन नहीं था।

पर उनकी बहू न तो राजघराने की थीं, न राजपूत थीं। वो तो एक आर्मी अफसर की बेटी थीं। अलग माहौल में पली-बढ़ीं। अनुशासन से ओतप्रोत लोगों को ही उन्होंने अपने इर्द-गिर्द देखा था। यहाँ महल की दीवारों के भीतर जिन्दगी बिल्कुल अलग

थी। सार्वजनिक जीवन में जो राजा-रानी-राजकुमार साहब एक विशेष अदब-कायदे के हिमायती थे, जनता से, पौनी परजा से एक दूरी बना कर रखते, लोग उन्हें फर्शी सलाम करते पर निजी जिन्दगी में ये सब लोग बेहद अनुशासनविहीन लोग थे। सोने-जागने का कोई समय नहीं। न नहाने का कोई समय न खाने का कोई समय। महल के भीतर कुत्सित और अनैतिक सम्बधो की गुपचुप चलने वाली श्रृंखला। बेचारी नयी-नवेली दुल्हन के लिए ये कायदे, ये माहौल अपरचित तो थे ही, अग्राह्य भी थे। ये लोग कुछ नहीं करते थे। जब आँख खुली तभी सवेरा हुआ, जब मन किया बिस्तर से नीचे पाँव धरे। मन हुआ तो मुँह धोये नहाये, नहीं मन हुआ तो पड़े रहे। साड़ी के अलावा कुछ और पहनने की इजाजत नहीं। सुविधा के लिए भारी साड़ियों की जगह दामी शिफॉन पहनतीं उनकी सास। उस महल में एकमात्र अपनी सास का व्यक्तित्व ही उन्हें प्रभावशाली लगता। इस दमघोंटू महल में वो अपनी तरह से बिन्दास जीतीं। महाराजा साहब के समानान्तर अन्दरखाने में उनका भी दरबार लगता। नक्काशीदार चौकी पर बैठ वो एक हाथ में शराब का गिलास थामे और दूसरी हाथ की उँगलियों में लम्बी पाइप में सिगरेट लिये ठसके से सबकी सुनतीं। उनकी इस छवि को महल के बाहर तरह-तरह से गढ़कर बताया-सुनाया जाता और किस्सों में एक नया किस्सा और जुड़ जाता।

नयी दुल्हन जिसे महल के भीतर दुल्हन साहब कहा जाता था, उनके लिए महल के भीतर की दुनिया असह्य थी। जिस राजकुमार पर रीझ कर उन्होंने विवाह-जैसा बड़ा कदम उठा लिया था, वो तो दिनोंदिन किसी और व्यक्ति में बदल गया था। राजाओं वाली कोई विशेषता तो उसमें थी नहीं, हाँ राजाओं वाले सारे दुर्गुणों से सुसज्जित थे। महीनों उनके दर्शन भी नहीं होते थे महल में। सास दबंग थीं। वो जब महल में होतीं तो युवरानी निश्चिन्त रहतीं। पर, रानी साहिबा की अपनी एक अलग दुनिया थी। वह लम्बे समय के लिए महल से गायब हो जातीं। फिर तो युवरानी को बड़ा डर लगता इस बड़े से महल में। उन्हें आर्मी क्वार्टर में रहने की आदत थी।

छोटा-सा सुन्दर-सा बगीचे वाला घर, इतना ही चाहा था। जब सचमुच के राजकुमार से प्रेम हुआ और राजकुमार की जिद पर शादी हुई तो सचमुच महलों की रानी बनने के उनके सौभाग्य पर सभी परिजनों के मुँह खुले रह गये थे। पर जब सामान्य तरीके से शादी हुई और विदा होकर वह महल में नहीं, एक पुराने ढंग के साधारण से घर में गयीं तो बहुत से सपने चूर हुए। पर वो प्रेम का दौर था, ये बातें नगण्य थीं। जब जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए तो सुना गया महल में खूब खुशियाँ मनायी गयी थीं। पर उन खुशियों में उन्हें नहीं शामिल किया गया था। बच्चे जब बड़े हुए तो राजा साहब उन्हें मिलने के लिए महल बुलाने लगे। अन्ततः बच्चों-समेत वो भी महल में आ गयीं। महल ने उन्हें अपनी युवरानी स्वीकार कर लिया।

इधर पत्नी और बच्चों को महल की मान्यता मिलते ही राजकुमार साहब को निश्चिन्तता मिल गयी। प्रेमिका को पत्नी और फिर अपने बच्चों की माँ बनाते ही राजकुमार साहब पत्नी से पूरी तरह ऊब गये। उन्हें नयी अंकशायिनी चाहिए थी। युवरानी के ये सब बर्दाश्त से बाहर था। उड़ती-उड़ती खबर तो ये भी थी कि राजकुमार साहब ने किसी दूसरे शहर में एक रखैल रख छोड़ी थी। युवरानी इतनी जल्दी अपने सपनों के चकनाचूर होने पर विचलित थीं। जो प्रेम एक ईश्वरीय उपहार-जैसा लगता था कभी, अब वह जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना लग रहा था।

हालाँकि, ये कोई बड़ी बात नहीं थी। राजघरानों में ऐसा होता रहता था। राजघराने की स्त्रियाँ ये सब देखने-सहने की आदी हो जाती थीं। ज्यादातर राजे-महराजों का सम्बन्ध अपनी रानी से तभी तक रहता था जब तक उन्हें एक उत्तराधिकारी न मिल जाता। उत्तराधिकारी मिलते ही मन और देह के सम्बन्ध धूमिल होते-होते खत्म हो जाते, बस पदवी रह जाती। इस बात के

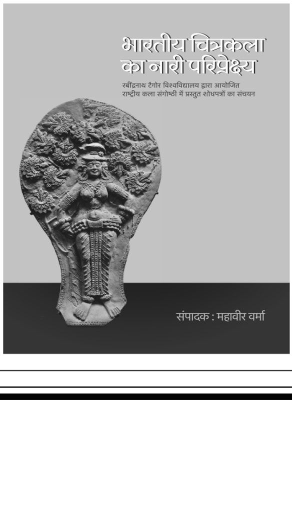

आईसेक्ट पब्लिकेशन

भारतीय चित्रकला का नारी परिप्रेक्ष्य
सं. महावीर अग्रवाल
मूल्य 1500 रु.

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा आयोजित 'विश्वरंग' के अन्तर्गत राष्ट्रीय कला संगोष्ठी में प्रस्तुत शोधपत्रों का संचयन है– 'भारतीय चित्रकला का नारी परिप्रेक्ष्य'। भारतीय चित्रकला में समाज के इस आधी आबादी का प्रतिनिधित्व किस प्रकार हुआ, इसका आकलन प्रस्तुत पुस्तक में बखूबी हुआ है। सभी लेख बेहद तथ्यपरक और निर्भीक हैं, साथ ही चित्रों के संयोजन से यह पुस्तक और भी संग्रहनीय बन गयी है।

अपवाद हो सकते हैं, होते होंगे पर इस राजघराने में तो कई पीढ़ियों से ऐसा ही होता आया। कई पीढ़ियों से यहाँ राजाओं को एक ही पुत्र उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त होता रहा और राज्य को अपना राजा मिलता रहा। हाँ इस नयी युवरानी ने जरूर जुड़वाँ (एक बेटा एक बेटी) पैदा कर चली आ रही कड़ी को तोड़ दिया था। कई पीढ़ियों बाद इस राजघराने में बेटी पैदा हुई थी। ऐसी बेटी जिसने एक अनाम-सी रियासत को अपने हुनर से एक समय पूरे देश में चर्चा का विषय बना दिया। ये कहानी आगे बतायी जाएगी, अभी तो बेटी की माँ की सुनिए!

इसी बीच महाराजा साहब स्वर्ग सिधार गये। अब राजकुमार साहब की ताजपोशी हुई और वो नये महाराजा बने। भले सांवैधानिक रूप से राज्य और राजाओं का अस्तित्व न हो, पर आज भी उनका ताम-झाम पुराना ही चलता है। तो राजकुमार हुए राजा, युवरानी हुईं महारानी और महारानी हुईं राजमाता!

राजा बनते ही राजा साहब और निर्द्वन्द्व हो गये। पहले तो पिता का कुछ लिहाज भी था, अब वो भी जा चुके थे। राजमाता अपनी ही दुनिया में रमी थीं। महँगी शराब और सिगरेट उनके शौक थे। जब कभी नशा ज्यादा हो जाता तो बेसुध नाचने लगतीं और धाराप्रवाह अँग्रेजी में दिवंगत राजा साहब और उनके खानदान को गाली देतीं जिसका आशय होता ये जाहिल-गँवार डांस-जैसे आर्ट की समझ नहीं रखते, इसे हेय दृष्टि से देखते हैं। सिवाय खाने-सोने के इस महल में कुछ नहीं होता। इतने बड़े और पुराने महल में एक ढंग का पुस्तकालय भी नहीं है। आर्ट कल्चर से कोई वास्ता ही नहीं रहा इस महल के लोगों में। राजमाता की फ्रस्ट्रेशन इस तरह निकलती पर युवरानी युवा थीं। उनमें जोश था और राजमहलों की रवायत के प्रति खास आदरभाव भी नहीं था। उन्हें अपने बच्चों के लिए राजमहल में कोई भविष्य नहीं नजर आता। वह महल से निकल भागने को व्यग्र थीं पर जातीं कहाँ! रानी-महारानियों के लिए एक प्रोटोकॉल तो इस महल में भी था। महल की स्त्रियाँ तो महल के बाहरी अहाते में बने मन्दिरों तक भी पर्दे में जाती थीं। सिर्फ महल का भीतरी आँगन ही उनके पायलों की रुनझुन सुन पाता। छतों पर जाना भी वर्जित था। जाने कितने कक्ष-गवाक्ष-अटारियाँ उनके स्पर्श से वंचित थीं। बाहर से महल कैसा दिखता है, कितनी रानियों ने कभी देखा ही नहीं।

प्रेम में पड़ी स्त्री स्वेच्छा से अपने साथी के साथ महल या बियाबान कहीं भी अपने सपनों को जी सकती है, पर रानी के हृदय से राजा का प्रेम जा चुका था। अब उन्हें सिर्फ अपने बच्चों की फिक्र थी। उन दिनों राजमाता मुम्बई में रह रही थीं। बहूरानी से बात होती थी। राजमाता को अपनी इस अन-इच्छित बहूरानी और उसके बच्चों से प्रेम था। फोन पर बहू की सिसकियाँ उनका हृदय मथ देतीं। बहू की रगों में राजघराने का खून नहीं था। अवसाद में वह कोई गलत कदम भी उठा सकती थी। एक बार राजा साहब से विवाद होने पर उसने हाथ की नस काट ली थी। समय पर पता चल गया तो बचा ली गयी। पर अब उसकी बातों से लगता था कि महल में रहना उसके लिए सम्भव नहीं।

आखिरकार उन्होंने एक निर्णय लिया और अपने निजी विश्वस्त अनुचरों को विश्वास में लिया और सारा कुछ बहू को समझा दिया।

उन दिनों राजा साहब महल से बाहर थे। कहाँ गये, कब लौटेंगे, राजा लोग ये सब बताना अपनी तौहीन समझते थे। जिसे फिक्र हो, पता करना हो, महल में इधर-उधर पूछता फिरे। कोई कुछ बताएगा, कोई कुछ और। राजमाता के विश्वस्तों को ये जानना-भर काफी था कि राजा साहब महल में नहीं हैं।

महल का एक ड्राइवर ढलती साँझ को महल के पिछले दरवाजे पर टैक्सी लेकर खड़ा था। रानी, दोनों बच्चे, कुछ सूटकेस और साथ में महल का वो ड्राइवर उस टैक्सी में बैठे। मुम्बई इस राज्य से बहुत दूर था और वहाँ के लिए जो रेलगाड़ी

सपना सिंह
जन्म : 21 जून 1969
शिक्षा : एमए, बी-एड
धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान के किशोर कॉलमों से लेखन की शुरुआत। पहली कहानी हंस, सितम्बर 1993 में प्रकाशित। हंस, कथादेश, परिकथा, कथाक्रम, सखी, समर लोक, सम्बोधन, निकट, माटी, इन्द्रप्रस्थ भारती, आजकल आदि पत्रिकाओं में दो दर्जन से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। प्रतिलिपि, सत्याग्रह, शब्दांकन, हस्ताक्षर, पहली बार, मेराकी, नॉटनल आदि वेब पत्रिकाओं में भी कहानियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी से कहानियों का निरन्तर प्रसारण।
प्रकाशित कृतियाँ : उम्र जितना लम्बा प्यार, चाकर राखो जी, बनते-बिगड़ते तिलिस्म, अपनी सी रंग दीन्ही (कहानी-संग्रह); तपते जेठ में गुलमोहर जैसा, वार्ड नम्बर सोलह इलाहाबाद रोड, धर्म हत्या (उपन्यास) प्रकाशित।
पुरस्कार/सम्मान : मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन का वागीश्वरी पुरस्कार, कमल टिक्कू कहानी पुरस्कार, दैनिक भास्कर का युवा पुरस्कार से सम्मानित।
सम्पर्क : 10/1467 अनहद, आलाप के निकट, अरुण नगर, रीवा-486001 (म.प्र.)
मो. 6387098089 / 9425833407

मिलती थी, उसका स्टेशन इस राज्य से करीब पचास-साठ किलोमीटर दूर था। अँधेरे में ही कार उस स्टेशन की ओर चल दी। मुम्बई की गाड़ी में ड्राइवर अपनी रानी साहिबा और बच्चों के साथ सवार होकर अपनी राजमाता के हुक्म का पालन करने चला। राजमाता का स्पष्ट निर्देश था कि रानी साहिबा और बच्चों को सकुशल मुम्बई में उनके निवास स्थान तक उसे पहुँचाकर ही वापस लौटना है। रानी अपने बच्चों के साथ सकुशल राजमाता के संरक्षण में पहुँच गयीं।

कुछ दिनों बाद महल के बाहरी लोक में एक अफवाह उड़ी कि रानी तो ड्राइवर के साथ भाग गयी। दिनोंदिन इस अफवाह की सचाई में लोग झूठे-सच्चे किस्से गढ़ने लगे। बरस पे बरस बीतते गये, किसी ने कभी रानी को राज्य में न महल में न राजा के साथ कहीं आते-जाते देखा। अफवाहों पर मुहर लग गयी। रानी को कभी किसी ने देखा ही नहीं। राजा थे और हर कुछ सालों बाद बदलती उनकी प्रेमिकाएँ थीं। कमउम्र युवती उनकी प्रेमिका बनती। कभी शादीशुदा तो कभी गैरशादीशुदा। उनके अधेड़ावस्था की ओर अग्रसर होते ही राजा साहब का दिल किसी दूसरी पर आ जाता। पहले वाली को कोई ऐतराज भी नहीं होता। जो जैसा फायदा वो और उनके परिवार वाले चाहते, वो सब राजा साहब उन्हें पर्याप्त मात्रा में दे चुके होते। शहर में उनकी किसी प्रेमिका का स्कूल चल रहा होता तो किसी प्रेमिका का ब्यूटीपार्लर और स्पा। किसी को जमीनें मिली होतीं तो किसी को दुकान-मकान।

इधर रानी साहिबा परिदृश्य से पूरी तरह गायब होकर अपने बच्चों के साथ अपनी सास की शरण में थीं। अपनी दबंग माँ से राजा साहब भी कन्नी काटते थे। इधर बच्चों की परवरिश मुम्बई में दादी और माँ की देख-रेख में होने लगी। राजमाता का अपने राज्य में आना-जाना लगा रहता। पर बच्चे और उनकी माँ राजमहल कभी आते थे या नहीं, इसकी कोई खबर लोक को नहीं थी। लोक में जब भी उनकी बात होती तो मुहावरे के जैसे एक ही बात कही जाती कि रानी तो अपने ड्राइवर के साथ भाग गयी थी।

बच्चों की शिक्षा-दीक्षा मुम्बई में ही हो रही थी। पोती में दादी की झलक दिख रही थी। पैरों में ठुमक और शरीर में लचक उसे बचपन से जैसे घुट्टी में मिली हो। उसका ठुमकना देख दादी खुशी से झूम उठतीं, खुद उसे सिखाने को तत्पर हो जातीं। बच्चे बड़े हो रहे थे। बेटी को नृत्य सिखाने के लिए घर पर ही गुरु जी आते। अपनी छोटी-सी शिष्या को कठिन से कठिन नृत्य-मुद्राएँ क्षण-भर में सीखने की क्षमता उन्हें अचम्भित कर देती। आखिरकार उन्होंने अपने हाथ खड़े कर दिये। फिर उसे एक नृत्य स्कूल भेजा गया। वहाँ से वह मुम्बई के सबसे नामी-गिरामी नृत्य सिखाने वाली अकादमी में गयी। जब कभी राजा साहब मुम्बई आते, बेटी को कभी लोकल कभी बस से डांस अकादमी आते-जाते देखकर भन्ना जाते। राजघराने की लड़कियाँ घुड़सवारी निशानेबाजी आदि सीखती हैं, यहाँ मेरी बेटी नाच की दीवानी है।

सचमुच राजकुमारी नाच की दीवानी थी। नाचने से उसे प्रेम था। नाचते हुए वह सुधबुध खो देती थी।

एक दिन राजमाता भी परलोक सिधार गयीं। पूरे राज्य में शोक मना पर रानी और बच्चों की कोई खबर तब भी लोक को नहीं हुई। रानी और बच्चे कहाँ थे, महल में थे या कहीं और, लोक में कोई ध्यान-बात नहीं।

अचानक एक दिन फिर लोक में राजा-रानी और उनके बच्चों, खासकर राजकुमारी की चर्चा बड़े जोर-शोर से होने लगी। हुआ ये था कि टीवी पर आने वाले किसी डांस कम्पटीशन की एक प्रतिभागी उनकी ये राजकुमारी भी थी। लोक बौरा गया अपनी राजकुमारी को देखने के लिए। जिसे देखना-सुनना लोक के लिए दुर्लभ था, वही अब जीती-जागती टीवी पर अवतरित होती थी। शरीर अजब-गजब तरीके से तोड़ती-मरोड़ती-नाचती ये लड़की ही उनकी राजकुमारी है, वो मुँह बाये उसे देखते। प्रतिभागियों में सबसे काबिल ये राजकुमारी ही थी। सबको उसका जीतना सुनिश्चित लगता था। अन्तिम राउंड का फैसला वोटों के आधार पर होना था।

प्रतिभागी अपने-अपने क्षेत्र में जाकर अपने पक्ष में जनता से वोट माँग रहे थे। अपनी ये राजकुमारी भी अपने राज्य में आकर खुली जीप में घूम-घूम कर अपने लिए वोट माँगती। राजा साहब ने भी अपनी बेटी को जिताने की गुजारिश अपनी प्रजा से की। राजकुमारी और राजा साहब का काफिला जिधर से गुजरता, लोगों की भीड़ जुट जाती। राजकुमारी निश्चिन्त होकर मुम्बई लौटी।

जब फाइनल रिजल्ट घोषित हुआ तो राजकुमारी को वोटों के आधार पर चौथा स्थान मिला। बाद में पता चला, उसके राज्य तो क्या, उस पूरे क्षेत्र से उसे सबसे कम वोट मिले थे। रियासत के हर बड़े-छोटे ने मुँह बिचका कर एक ही बात कही– एक जमाना था कि इनके यहाँ देश-भर से नचैये-गवैये बुलाते थे, अब इस घराने की बिटिया नचनिया बन गयी है।

राजकुमारी ने नाच छोड़ दिया या जारी रखा, फिलहाल लोक को इस बारे में कोई जानकारी नहीं है।

❑

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

घर बाहर

कविता-संग्रह

लेखक

संतोष चौबे

मूल्य : 200 रु.

'घर बाहर' प्रख्यात कवि-कथाकार और चिन्तक संतोष चौबे का नया कविता-संग्रह है। संतोष जी की ख्याति एक कथाकार के रूप में इस कदर हो गयी है कि बिल्कुल नयी पीढ़ी के पाठकों को यह पता भी नहीं है कि वे एक ऐसे समर्थ कवि हैं जो समकालीन कविता के सुनिश्चित दायरे का अतिक्रमण लगभग अपने आरम्भ से करते रहे हैं। चमकते लेकिन सिन्थेटिक काव्य-मुहावरों के बरक्स उन्होंने सादगी का वह मार्ग चुना है जो उन्हें कवियों के बीच विश्वसनीय बनाता है। उनकी कविताएँ पढ़ते हुए पाठकों को अक्सर लगता है जैसे वे अपनी ही आत्मा की इबारत बाँच रहे हैं।

संतोष चौबे एक सिद्ध कथाकार हैं इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनकी कविताओं में आख्यान के तत्त्व मिलें। इस संग्रह में शामिल उनकी कुछ कविताएँ सही अर्थों में वैश्विक चेतना की कविताएँ हैं। आश्चर्य नहीं कि इन कविताओं को पढ़ते हुए शिकायत का मन होता है कि इस कवि ने इतनी कम कविताएँ क्यों लिखी हैं!

विरल किस्म की पारिवारिकता इन कविताओं में विन्यस्त है। यह अकारण नहीं है कि संतोष चौबे की कविताओं में पाठकों को अपने जीवन की वे छवियाँ भी मिलती हैं जिन पर समय ने धूल तो डाल दी, लेकिन जिन्हें वह मिटा न सका। यहीं यह भी कहना उचित होगा कि संतोष चौबे की कविताओं और कहानियों में स्फीति बिल्कुल नहीं होती है और यह सर्वोपरि कलात्मक संयम है।

संतोष चौबे का चिन्तक पक्ष उनकी कविताओं का सहयात्री है। वे हिन्दी के बहुत थोड़े से बहुपठित सर्जकों में एक हैं। इस संग्रह और पूर्व के संग्रहों की कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनकी कविताएँ आस्वाद का एक भिन्न धरातल निर्मित करती हैं। सहजता इन कविताओं की प्राणवायु है तो अर्थ-सघनता और भाव-संश्लिष्टता इनका जीवद्रव्य हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस संग्रह की कविताएँ हिन्दी कविता का आयतन बढ़ाने वाली कविताएँ हैं।

–जितेन्द्र श्रीवास्तव

कहानी

चिराइँध

प्रीति चौधरी

इस गाँव में भला ऐसा कौन होगा जिसकी जिन्दगी में कोई कहानी न हो! महज चार दिनों के भीतर उसने इतने किस्से सुन लिये कि अगर वो लिखने बैठ जाय तो कहानी छोड़िए, पूरा उपन्यास ही तैयार हो जाय। एक से एक नाटकीय और हैरतअंगेज किस्से! रहस्य, रोमांच और एक्शन से भरपूर, पूरा पोथा बनाने लायक। सुगन्धा अब सचमुच अपनी माँ को याद करने लगी जो बात-बात पर कहती थी कि कथा सुननी है तो सोनबरसा चलो, यहाँ लन्दन में क्या मिलेगा? वैसे मिलने को तो उसे क्या, माँ को भी लगभग सबकुछ, जिसे दुनिया अक्सर सुख कहती है, वो यहीं लन्दन में मिला था। अमन-चैन, इज्जत-पैसा, इफरात खाना, कपड़ा और पढ़ना और सबसे बढ़कर बढ़िया नींद, माँ-बेटी को परदेस की इस जमीन पर सचमुच हासिल हुए थे। चीज जो बेहासिल रह गयी थी वो थी सोनबरसा की सुगन्ध, शायद सोनबरसा की याद में ही माँ ने उसका नाम रखा था सुगन्धा। सुगन्धा भी अपने नाम राशि के गुणों को धारण करने के चक्कर में खुद को हर समय सुगन्धित बनाये रखने में कोई कसर नहीं छोड़ती। सुगन्ध के इस शौक में दुनिया के सारे नामी-गिरामी परफ्यूम उसकी टेबल, पर्स और जेब की जद में थे। अपने आलीशान शहर से हजारों मील दूर, आज जब वो बचपन से सुनते आये गाँव सोनबरसा में, अपनी पाँचवीं रात बिताने वाली है तो शिद्दत से उसे उस लम्हे का इन्तजार है जिसमें वो उस किस्से तक पहुँच सके, जिसकी तलाश में वह महीने-भर की छुट्टी ले पूर्वी उत्तर प्रदेश के इस गाँव में आयी है, जिसे बाइज्जत ननिहाल कहा जा सकता है।

देखा जाय तो पिछले चालीस सालों में भारत-समेत पूरी दुनिया इतनी बदल चुकी है कि लन्दन या पेरिस से बनारस-गाजीपुर आना या देवरिया-बलिया से सिंगापुर और मलेशिया जाना अब कोई खास बात नहीं रह गयी है। होगा वो कोई जमाना जिसमें राजा बलि का घमंड तोड़ने के लिए विष्णु ने वामन रूप में एक कदम में पूरी धरती नाप दी होगी और उस पराजित दानवीर राजा बलि के नाम पर उसके जिले का नाम बलिया हो गया हो, आज के जमाने के राजा 'बाजार' ने तो सच में ही पूरी दुनिया को एक धागे से कसकर नाथ दिया है। इस धागे को आप चाहें तो इंटरनेशनल सप्लाई चेन के नाम से भी जान सकते हैं। उसके आस पास के जिलों– बलिया, गाजीपुर, बक्सर से परवल और मटर विदेशों को निर्यात हो रहे थे। दुनिया अब एक पैर नहीं बल्कि मोबाइल की स्क्रीन पर एक उँगली में अँटने वाली हो चुकी थी। अपने आखिरी दिनों से थोड़ा पहले ही उसकी अम्मा भी लन्दन के रसेल स्क्वॉयर के ब्रंसविक पार्क की बेंच पर बैठकर अपना आईपैड या मोबाइल खोले दैनिक जागरण और अमर उजाला का बलिया और गाजीपुर संस्करण पढ़ती रहतीं। सोनबरसा, नरही, महेन, लक्ष्मणपुर, गोड़उर की कोई मामूली खबर पाकर भी माँ खुश हो जातीं। लन्दन में मानो उनका गाँव-जवार उतर आता। कहने को माँ लन्दन में थीं पर जिन्दगी उनकी अपने चैत, बैसाख, आसाढ़ और सावन की स्मृतियों से चलती। कार्तिक मास में लन्दन के ब्रंसविक इलाके के फ्लैट में उनका जलाया दिया हर शाम मुस्कराता मिलता। माँ फोन पर अपने रिश्तेदारों को बतातीं कि यहाँ अगल-बगल अधिकतर अँग्रेज या अमीर चीनी लोग रहते हैं, भारतीयों की भीड़ तो उधर साउथ हॉल और हैरो की तरफ है।

हमारी बातचीत आपसे शुरू ही ऐसे हुई थी कि सुगन्धा, सोनबरसा में है और आज इसकी यहाँ पाँचवीं रात है। बहुत व्यवस्थित, प्रतिभाशाली और कामयाब कॉरपोरेटर है सुगन्धा, अगर उसने एक महीने की छुट्टी ली है तो जरूर वह किसी मिशन पर है। लखनऊ में हुई ग्लोबल इंनवेस्टर समिट में अपनी कम्पनी के सीईओ के साथ प्रदेश सरकार के साथ किसी एमओयू पर साइन करने के बाद पूर्वांचल एक्सप्रेस-वे से वो साढ़े चार घंटे में सीधे सोनबरसा चली आयी है। उसने बॉस को लन्दन की बोर्ड मीटिंग में पहले ही कह दिया था कि एमओयू

की बारीकियों पर ध्यान दे, समय बर्बाद करने से ज्यादा जरूरी है एमओयू साइन कर देना। भारत की उभरती अर्थव्यवस्था में योगदान देते दिखना इंडियन डायस्पोरा से अपेक्षित है और काम करते दिखते रहने की कला में उसकी कम्पनी को महारत हासिल है। सुगन्धा को लगा नहीं कि वह पहली बार आयी है सोनबरसा। माँ के साथ सोनबरसा भी लन्दन में हमेशा रहा और सुगन्धा माँ के साथ थी हमेशा, इस तरह सुगन्धा और सोनबरसा को भी एक-दूसरे के साथ रहने और पहचानने की आदत थी। सुगन्धा गाजीपुर के भरौली पर खत्म होते एक्सप्रेस-वे से उतर, लक्ष्मणपुर होते हुए सीधे अपने ननिहाल के दरवाजे पर गाड़ी से उतरी थी, जबकि माँ के जमाने में वे जब यूनिवर्सिटी से अपने गाँव आतीं तो उन्हें कम से कम कुछ किलोमीटर की दूरी पैदल तय करनी पड़ती थी। गाँव के सबसे पास के गाँव कथरिया से सोनबरसा तक रोड बनने में इतना समय लगा कि माँ ने बीएचयू से एमए करके बीएड भी कर लिया। माँ भी जब जीवित रहते आखिरी बार सोनबरसा आयीं तो घर के दरवाजे तक सरपट गाड़ी से पहुँच निहाल हो गयीं। पर माँ के अन्तिम दिनों में उनकी स्मृति में दुनिया के सारे परिवहन के संसाधन सिमट कर रेलगाड़ी में समा गये थे। यहाँ तक कि यमराज भी भैंसे की बजाय चार बजहिया पैसेंजर से करीमुद्दीन स्टेशन पर पहले उतरते, फिर अंडरग्राउड ट्यूब से पिकैडिली लाइन पकड़ उनको लेने रसेल स्क्वायर आते। वो खुद वैतरणी अपनी बाछी की पूँछ पकड़ रेलगाड़ी के साथ पार करतीं। सुगन्धा ने माँ की मन:स्थिति को देखते हुए गूगल मैप के सहारे उनके बचपन के परिचित रेलवे स्टेशनों– करीमुद्दीनपुर और ताजपुर डेहमा बड़े स्क्रीन पर उनको दिखा दिये, दिक्कत तब हुई जब माँ ताजपुर डेहमा से एक कोस आगे आने पर सोनबरसा के रास्ते में पड़ने वाले कुएँ और ढेकुल पर अटक जातीं और जिद्द पकड़ लेतीं कि रुको तनी ढेकुल पर पानी पी लेते हैं। वो बॉटल से पानी उड़ेल, चम्मच से माँ के मुँह में डालती और माँ अपनी दोनों हथेलियों को पेट पर रख अंजुरी बना मुँह चलाने लगतीं। जब तक वे हथेलियों को आपस में जोड़े रखतीं वो चम्मच से उनके मुँह में पानी डालती रहती। अचानक वे अपना हाथ हटा देतीं और कहतीं– बस! पर तब तक उनका फ्रॉक भींग जाता वे शरारत से कह उठतीं, ''आजुओ भे दिहलन न!'' (आज भी भिगो दिया न!) सोनबरसा आने के बाद सुगन्धा का पहला टास्क था इस रोज भिगोने वाले शख्स के बारे में पता लगाना। माँ के जीवन की अधिकांश बातों से वाकिफ थी सुगन्धा, कुछेक घटनाओं को तो इतनी बार सुना था उसने कि अब वे कंठस्थ हो चुकी थीं। मगर माँ के आखिरी वक्त में बार-बार

चित्र : कबीर राजोरिया

कही दो बातों के नयेपन ने उसे हैरान करने से ज्यादा उसके भीतर दिलचस्पी पैदा कर दी थी कि आखिरी समय में बार-बार दोहरायी जाती इन बातों का मतलब क्या है? पहली बात तो उनके भींगने से सम्बन्धित हो गयी और दूसरी बात का वास्ता किसी एक खास महक से था। सुगन्धा को अच्छा-खासा जोर लगाना पड़ा था कि माँ कह क्या रही हैं? माँ की लिप रीडिंग आराम से कर लेनी वाली सुगन्धा को कुल दो घंटे लगे पकड़ने में कि मृत्युशैय्या पर लेटीं माँ की जबान पर कौन शब्द अटक गया है! उसे माँ के साथ लगभग डम शेराड खेलना पड़ा यह समझने के लिए कि वे जो कह रही हैं उसका वास्ता किसी महक से है, पर महकने के ठीक पहले जो शब्द था वही पहेली थी। गुलाब, चमेली, पूड़ी, कढ़ी, समोसा, डीजल, पाखाना, पेशाब जैसे शब्दों के रास्ते से चल कर वह वो असल में बोले जा रहे शब्द तक पहुँच पायी थी। चिराईन था वो शब्द और चिराईन (चिराइँध) का मतलब होता है, कुछ जलने की गन्ध।

सुगन्धा ने पहले तो इसे बुढ़ापे में आये दिन होने वाली स्मृतियों के दिग्भ्रमण की अवस्था मान अनदेखा करने का सोचा पर माँ का चेहरा और आँखें देखकर वह चौंक गयी– न, कुछ ऐसा जरूर है जिसे माँ ने पूरी उम्र जतन से छिपाया पर अब वे उसे बता देना चाहती हैं। दो सूत्र थे सामने सुगन्धा के, पहला ये कि कोई था जो हर बार ढेकुल से पानी पिलाने में माँ को

भिगो देता था। कोई जिसकी मीठी याद माँ के चेहरे पर उग उसे और मुलायम कर देती। दूसरे सूत्र में माँ की नाक में घुसती कोई महक थी जिससे वे उद्विग्न हो जातीं। माँ की इसी बेचैनी को देखते हुए सुगन्धा ने माँ के जाते ही कुछ संयत होने पर उनके सामानों में कोई कागज, कोई लिखी हुई चिट्ठी, डायरी वगैरह तलाशी कि शायद माँ द्वारा बार-बार दोहरायी गयीं बातों का कोई सिरा उसके हाथ लग सके।

सुगन्धा की माँ नीलिमा का वश चलता तो वह मरने के लिए जरूर सोनबरसा चली आतीं, अपने पुरखों की मिट्टी और अपनी जानी-पहचानी आबोहवा में प्राण त्यागने। पर कोविड के लॉकडाउन में इसकी गुंजाइश ही कहाँ थी? कोविड महामारी ने बड़े-बड़े लोगों को घरों में कैद कर लाचार कर दिया था, हजारों हवाई जहाज अपने उड़ाये जाने की बाट जोहते निराश हो चुके थे। परमाणु शस्त्रों को लादकर हजारों किलोमीटर तक अचूक निशाना साध लेनी वाली मिसाइलें भी मुँह गिराकर पड़ी हुई थीं। ये वो दौर था जब दुनिया के सबसे ताकतवर समझे जाने वाले देश अपने अत्याधुनिक परमाणु संयन्त्रों के साथ कोरोना के विषाणु से तबाह अपने नागरिकों की लाशें गिन रहे थे। इस भयावह दौर में सुगन्धा की सबसे बड़ी कामयाबी यही थी कि उसने अपनी पचहत्तर साल की माँ को कोरोना से बचा लिया था।

माँ गयीं पर कोरोना से नहीं। कोरोना के पहले दौर में तो सुगन्धा ने भी माँ को दुनिया के असंख्य लोगों की तरह आई पैड पर तमाम चीजों से परिचित करा दिया था। हफ्ते में एक बार नियम से नीलिमा वीडियो कॉल करके गाँव-घर-परिवार सबका हाल-चाल लेती। माँ ने अपने व्हाट्सएप से न जाने कितने लोगों को फेसबुक फेम शैलजा पाठक की कोरोना के लिए चीन को दी गयी भोजपुरी गाली फारवर्ड की थी। कोरोना का पहला दौर मानो पूरी दुनिया को तकनीकी सिखाने का दौर था। सब हँसते-खेलते अपना हुनूर दुनिया को दिखा रहे थे। लोगबाग इधर अपने को डिजिटली शिक्षित होने में लगाये हुए थे, उधर प्रकृति अपनी सफाई में लगी हुई थी। नदियाँ साँस लेने लगीं, हवा की धुलाई हो गयी और हिमालय पर्वत की बर्फ से ढँकी चोटियाँ उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले से नजर आने लगीं थीं। पर कोरोना के दूसरे दौर ने दुनिया को स्तब्ध कर दिया। रोज लोगों के मरने की खबरों और इंसानों के इस बीमारी से हुए दुर्दान्त संघर्ष की बातों ने माहौल में दुख और अवसाद घोल दिया था। सुगन्धा के पक्ष में इस भयावह समय में भी अच्छी बात ये थी कि वो वर्क फ्रॉम होम के चलते माँ की देखभाल तसल्ली से कर पा रही थी।

सोनबरसा गाँव में वह माँ के जाने और कोरोना के थम जाने के तकरीबन दो साल बाद आ पायी है। लखनऊ में इनवेस्टर्स समिट न भी होती तो उसकी यह भारत यात्रा पूर्वनिर्धारित थी। सोनबरसा में उसकी यह पाँचवीं रात है और वह गाँव की खबरों से अब तक पूरी तरह अपडेट हो चुकी है। नीलिमा के कजिन प्रमोद पीछे वाले घर के बरामदे में टूटी चौकी पर लेटे-लेटे महीनों कराहने के बाद तीन महीने पहले अपने प्राण त्याग चुके थे। कमाऊ बेटा-बहू के रहते हुए भी अच्छे इलाज के लिए तरस गये प्रमोद, जबकि बेटा प्राइमरी स्कूल का मास्टर रहते हुए बीटीसी और टेट परीक्षा का सॉल्वर गैंग चला लाखों की जमीन लखनऊ में खरीद चुका था। सुगन्धा को शाम को छत पर चढ़ते ही पता चल गया कि उसके मामा के घर के तीन घर बाद जो गुलाबी रंग का मकान दिख रहा, उस घर की नयी-नवेली बहू अपने बीएफ (ब्वॉयफ्रेंड) को रात में बुला, धम्म से छत से कूद उससे मिलने चली गयी और अगले ही दिन ससुराल वालों ने उसे मायके भेज दिया। खैर सुगन्धा के लिए ये सब महज टाइमपास और बेकार खबरें थीं। जिन बातों का उसे पता लगाना था, वे अभी जहाँ की तहाँ पड़ी थीं।

नीलिमा की अपनी भौजाई से ठीकठाक बनती थी, शायद ही कोई दिन ऐसा गुजरता जब ननद भौजाई की बात नहीं होती। नीलिमा की तो दुनिया ही फोन थी, पिछले दस सालों से नीलिमा ने अपने मोबाइल के सहारे ही लन्दन में बैठे-बैठे भारत में अपने मायके-ससुराल सबको थाम रखा था। नीलिमा सुबह-सुबह फोन लगाती जो कि अक्सर स्पीकर पर रहता और सुगन्धा के कमरे तक जिसकी आवाज पहुँचती। नीलिमा अपनी भाभी से पूछती सवेरे-सवेरे– ट्रैक्टर कहाँ जा रहल बा? उधर से आवाज आती– बबुनी, आज गोड़उर वाला खेत जोताई।

नीलिमा एक ठंडी साँस लेकर कहती– आच्छा। सुगन्धा को लगता कि लन्दन के एक कमरे में बैठी माँ, खरहर से अपने दुआर पर लग रही झाड़ू को पहचानने के साथ ही ट्रैक्टर के स्टार्ट होने की आवाज के साथ सम रहती थीं। जाने-अनजाने ये सारी आवाजें अब सुगन्धा के जीवन का भी हिस्सा थीं। कई बार सुगन्धा जब ऑफिस से लौटती तो माँ को वीडियो कॉल पर मशरूफ पाती, माँ उसके घर लौटने पर मुस्करा कर आँखों से स्वागत जरूर करतीं, पर उनकी बातचीत बन्द न होती। वह वीडियो कॉल पर सामने वाले को बताते हुए कि सुगन्धा ऑफिस से घर आ गयी है, वीडियो कॉल के उपसंहार की भूमिका बनाने लगती। भूमिका तो सुगन्धा ने भी बना ली है, बार-बार भिगोने और चिराइँध महक तक पहुँचने की, बस सुबह

होते ही सीधे उसे मुद्दे पर आ जाना है।

उसने तय किया कि सीधे नीलिमा की भौजाई यानी अपनी मामी से पूछेगी वह। सुगन्धा के सामने चुनौती थी कि क्या सिर्फ नीलिमा की बेटी होने के कारण उसे वह लियाकत हासिल हो सकेगी कि वह अपनी माँ की तरह मीठी बोली और अन्दाज के दम पर सबके मन की झिर्रियों को खोल वह अपने जाने-भर की जगह बना ले? अपने हुनर की आजमाइश तो अब करनी ही थी। सुबह चाय पीकर तरोताजा वह आँगन में ही मामी के पास मचिया खींच बैठ गयी। नीलिमा गाँव की पहली ऐसी लड़की थी जो पढ़ाई के लिए गड़हा परगना से निकल बनारस के विश्वविद्यालय तक पहुँची थीं। नीलिमा बताती थीं कि वो और उनका छोटा भाई अपनी बुआ के दम पर सोनबरसा से बाहर निकल पढ़ाई-लिखाई कर सके थे। देखा जाय तो नीलिमा के पास अपने माँ की स्मृतियाँ बुआ की स्मृतियों की तुलना में बहुत कम थी। सुगन्धा भी नानी के नाम पर बुआ नानी को ही जानती थी। सुगन्धा ने जो सुना था, उसके हिसाब से उसकी नानी अपनी छह साल की बेटी और चार साल के बेटे को छोड़, ढिबरी के दिये से साड़ी में आग लगने के कारण मर गयी थीं। सुगन्धा ने कभी जलकर मरीं नानी की याद में माँ को विकल होते नहीं देखा, शायद उनका जाना नीलिमा के इतने छुटपन में हुआ था कि वह इसे लम्बे समय तक याद नहीं रख पायीं। नीलिमा का भाई जिसकी पत्नी से सुगन्धा बात कर रही है, वह तो इतना छोटा था कि उसकी अपनी माँ से पहचान घर में मौजूद उनकी इकलौती श्वेत-श्याम फोटो से है।

सुगन्धा ने मामी से साफ-साफ पूछा कि क्या फोन पर कभी उसकी माँ ने किसी चिराइँध गन्ध का जिक्र किया था? सवाल सुनते ही मामी का हाथ जोर से काँपा और कप के करवट ले लेने से चाय नीचे गिर कर फैल गयी। ''चिराइँध महक! बबुनी यही तो इस परिवार का सबसे बड़ा अभिशाप है।'' उसके सास-ससुर सभी मरते दम तक इस गन्ध से परेशान रहे। घर में झाड़ू-पोंछा लगाकर दीया-बाती होती रहती कि अचानक एक जलने की गन्ध नथूनों में भरने लगती। सुगन्धा को हैरानी हुई कि उसकी माँ के एक अदद दादा-दादी भी थे जिनके बारे में उसे कुछ खास पता नहीं था। उसे तो यही लगता कि माँ की बुआ, बाल विधवा थीं जिसे मायके और ससुराल दोनों जगह से खेत और बगीचे मिले थे जिसके दम पर उन्होंने नीलिमा और उसके भाई को बाहर रख कर पढ़ाया था। नीलिमा का भाई दूरसंचार विभाग के उपमहाप्रबन्धक पद से रिटायर होकर अपना समय नोएडा और सोनबरसा के बीच काट रहा था, फिलहाल इसी उपमहाप्रबन्धक की पत्नी के हाथ से चाय का कप अभी-अभी पलटा था।

पूछे गये सवाल का जवाब मिलने से पहले तपाक से एक प्रतिसवाल मामी की तरफ से सुगनधा के लिए उछला।

जब दस साल पहले नीलिमा दीदी भारत आयी थीं तो ऋषिकेश के पास एक बाबा से मिलने गयी थीं, क्या सुगन्धा को इस बाबत कोई जानकारी है? सुगन्धा ने कहा कि सिर्फ माँ ही क्यों, आप और मामा भी तो उनके साथ ऋषिकेश में ठहर गंगा दर्शन-पूजन कर रहे थे। मामी थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोलीं, ''हम लोग ऋषिकेश गये जरूर थे बेटा, पर मकसद आपके नाना की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करना था।''

सुगन्धा को लगा वह चकरा जायेगी, उसकी जानकारी के मुताबिक तो नाना फौज में थे जो सियाचिन की तैनाती के दौरान किसी हजारों मीटर गहरे खड्डे में गिर कर मर गये थे। मामी थोड़ी देर सुगन्धा का मुँह देखती रहीं, फिर बोलीं, ''तुम्हारा यही जानना बेहतर था बेटी। तुम्हारी माँ और मामा भी अपनी आधी उम्र बीतने तक यही जानते रहे कि उनके पिता सियाचिन में ऑन ड्यूटी शहीद हुए थे। बिटिया...'' मामी ने भर्राती हुई आवाज में कहा, ''नीलिमा दीदी बहुत सोचकर बीबीसी लन्दन में काम करने लन्दन चली गयीं और वहीं की होकर रह गयीं। कितना अच्छा हुआ कि नीलिमा दीदी ने वहीं लन्दन में शादी-ब्याह कर लिया। वैसे तो ऊँच-नीच हर घर में होती है पर इस घर में जो हुआ वो सिर्फ फिल्मों या नाटकों में होता है जिसे आप थियेटर में देखिए और वहीं छोड़ दीजिए।''

सुगन्धा की दिलचस्पी किसी पारिवारिक रहस्य-रोमांच से भरी कहानी को जानकर सदमा खाने की बजाय अपनी माँ की उस काबिलियत को दाद देने में थी जिसने इतनी बड़ी बात को ताउम्र पचाये रखा। कहाँ वो सोच रही थी कि माँ ऋषिकेश के फूलचट्टी आश्रम में योग साधना कर रही हैं और कहाँ ये पता चल रहा है कि माता जी अपने पिता का श्राद्ध कर रही थीं। सुगन्धा के मन में माँ के लिए गुस्सा या छल जैसा कोई भाव प्रकट होता, उससे पहले ही मामी बोल पड़ीं, ''बेटा, नीलिमा के पिता और मेरे ससुर सियाचीन में ड्यूटी करते हुए नहीं मरे थे, वे गाजीपुर जेल में उम्रकैद के सजायाफ्ता थे।''

माँ के पिता को उम्रकैद हुई थी? यहीं गाजीपुर जेल में कैद थे वे? जुर्म क्या था उनका?

सवालों की झड़ी लगा दी सुगन्धा ने। ''बेटा, तुम्हारे नाना पर अपनी पत्नी की हत्या का इल्जाम था। वे फौजी जरूर थे पर उन्होने जिस तरह से जुर्म का इकरार किया था, फौज भी उनकी मदद नहीं कर सकी। जयशंकर-जैसा फौजी अपनी पत्नी को मार देगा, वो भी जला कर! उसकी यूनिट में ये बात मानने

को कोई तैयार न था। पर पुलिस के सामने तुम्हारे नाना ने खुद ये कुबूला था कि उन्होने अपनी पत्नी की हत्या भूसा रखने के खोप में आग लगा कर की थी।''

सुगन्धा को थोड़ी देर के लिए लगा कि वह किसी वेबसीरिज की पटकथा सुन रही है, कमाल की बात है कि अभी भी सदमा-जैसा कुछ महसूस होने की बजाय वह पूरे होशोहवास में सोच रही थी कि उसकी माँ के पिता अपनी पत्नी के खूनी थे, क्या ये बात माँ को बहुत बाद में पता चली या उन्होंने जानबूझ कर कुछ सोचकर इस बात को उससे छुपाया। जाहिर है आप भी समझ गये होंगे कि सुगन्धा का अगला सवाल भी मामी से यही था।

जयशंकर ने जेल में जैसे सजा काटी और जैसे वे जेल में रहे, जेलर-समेत सारे कैदियों को लगता कि फौजी हत्यारे के वेश में वे कोई महात्मा हैं, जिसने किसी और का पाप अपने सर ले लिया है। गाजीपुर जेल के जेलरों के तबादले होते रहे पर जयशंकर की सच्चरित्रता के बारे में सबकी राय एक-जैसी थी। शुरू-शुरू में करीमुद्दीनपुर थाने के दरोगा ने भी जयशंकर को समझाने का प्रयास किया, पर वह अपने कुबूलनामा पर टिके रहे। हाँ, घर-परिवार से हमेशा के लिए मुँह मोड़ लिया उन्होंने। जयशंकर के परिवार में घटी घटना का सच धीरे-धीरे परिवार की चारदीवारी से बाहर निकल पूरे गाँव-जवार में फैल गया।

बाल विधवा बुआ जिसने माँ की तरह नीलिमा और उसके भाई की परवरिश की और उन्हें पढ़ाने-लिखाने में अपना धन खुल कर लगाया, वह नीलिमा की माँ की मौत से बुझ-सी गयी थीं। अपने वैधव्य से ज्यादा शोक उसे अपनी भाभी की मौत का था। वह भाई से मिलने जेल जातीं पर भाई हर बार मिलने से इंकार कर देता। धीरे-धीरे बुआ ने जेल जाना बन्द कर, खुद को भाई के बच्चों की परवरिश पर केन्द्रित कर दिया। फौजी भाई के बेटे को काबिल बना कर अफसर और बेटी को भी पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा करना बुआ की जिन्दगी का मकसद बन गया। लोग दबी जबान में बात करते कि ये बुआ का अपराधबोध है जिसकी भरपाई में वह खुद को खपा रही है। बुआ अकेले में बैठतीं तो सोचकर रोती-पछतातीं, पर रोने-कलपने की बजाय उठ कर काम में लग जाना उसे ज्यादा राहत देता। देखा जाय तो वह अपनी माँ से नफरत करती थीं, वह अक्सर सोचती– भरे यौवन में वैधव्य उसके हिस्से आया, उम्र उसकी थी देह के तपन की, तन और मन के सुख से वंचित थी वह, पर देह की जलन से वह अक्सर अपनी माँ को धधकते पाती। घर में सबकुछ होने के बावजूद वो अपने पति से सन्तुष्ट नहीं रहती। कई बार वो और उसका भाई जयशंकर बचपन में माँ को राह चलते देवरों के साथ खिड़की से अश्लील मजाक करते देख शर्मसार हो जाते पर पिता की सिधाई के चलते कुछ कर नहीं पाते। बेटा फौजी हो गया, घर में बहू आ गयी, बेटी कम उम्र में विधवा हो गयी, पर माँ की रंगीनमिजाजी बदस्तूर जारी रही। कभी कोई देवर तो कभी कोई जेठ हमेशा घर में बैठे मिलते। क्या मजाल कि कोई माँ की इस यारबाशी पर उँगली उठा दे, उसकी सात पुश्तों को खड़े-खड़े वो उघाड़ देती। पर नीलिमा की माँ को सास की हरकतें नागवार लगतीं, उसे यकीन नहीं होता कि उसके पति और ननद जैसे शरीफ इंसान उसकी सास की ही उपज हैं। नीलिमा ने एक दिन सास को कोठारी में दूर के किसी ननदोई के साथ देख लिया और वह आपे से बाहर हो गयीं। सीधे कोठारी में पहुँच वह ननदोई पर दनादन झाड़ू से वार करने लगीं। बहू के हाथ में झाड़ू देख, सास बिस्तर से उठी। पहले पिछले दरवाजे से उसने ननदोई को बाहर किया, फिर शोर मचाती बहू के मुँह पर हाथ रख उसे अड़ंगी मार गिरा दिया। रतिक्रिया में व्यवधान पड़ने के असहनीय क्रोध को झेलते हुए वो बहू को बाल से पकड़ कर खींचती हुई भूसा रखने के खोंप में ले गयी और भूसों के ढेर पर पटक दिया। नीलिमा की हतप्रभ माँ को सास का ये रूप भयावह लगा और वह रोते हुए जोर-जोर से सास को सबके सामने बेनकाब करने की धमकी

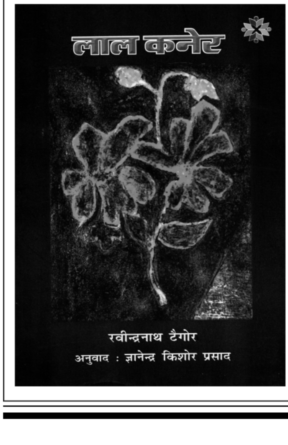

आईसेक्ट पब्लिकेशन

लाल कनेर (नाटक)

(रबीन्द्रनाथ टैगोर)

अनुवाद : ज्ञानेन्द्र किशोर प्रसाद

मूल्य 200 रु.

महापुरुषों की रचनायें स्थान, काल और पात्र के घेरे में सिमट कर नहीं रहती, बँगला भाषा में लिखी गयी कवि गुरु रबीन्द्र नाथ टैगोर की नाट्य पुस्तक 'रक्त कोरबी' उन्हीं कालजयी रचनाओं में एक है। भाषा की सीमाओं के आलोक में और वृहत्तर जनसमूह में रबीन्द्र नाथ टैगोर संदेश प्रसारित करने के विचार से श्री ज्ञानेन्द्र ने इस प्रख्यात पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर 'लाल कनेर' में किया है। उनके इस सराहनीय प्रयास से नाटक का पठन-पाठन और मंच प्रदर्शन अब हिन्दी में भी सम्भव होगा।

प्रणब मुखर्जी

देने लगी। बहू की इस धमकी से सास डरने की बजाय और प्रचंड हो उठी और उसने बहू को भुसावल में बन्द कर बाहर से तीली जला खोप में घुसा दी। देखते-देखते खोप धू-धू कर जल उठा और उसके आगे नीलिमा की माँ की ढिबरी से साड़ी में लगी आग से जल कर मरने की कहानी आपको पहले से ही पता है। तार जाने पर दो दिन बाद फौजी बेटा घर आया और आते ही घर पर हुए अग्निकांड की असलियत समझ गया। गाँव वालों ने बहू के मायके खबर की और मायके वालों ने पुलिस को। पुलिस के सामने नीलिमा के घर वाले उसकी सास पर बहू की दहेज हत्या का आरोप लगाते रहे और जयशंकर सिर झुका सब सुनते रहे। दरोगा माँ को हथकड़ी लगाने आगे बढ़ता कि जयशंकर बोल उठे– माँ ने नहीं, उन्होंने की है अपनी पत्नी की हत्या। थाना-पुलिस, घर-परिवार और वहाँ मौजूद तमाम लोगों को यह सुनते ही मानों साँप सूँघ गया। सबको मालूम था कि जयशंकर पत्नी की मृत्यु के दो दिन बाद आया है। जयशंकर बड़े संयत भाव से दरोगा को एक किनारे ले गया और हाथ जोड़ लिये– बेटे के रहते माँ कैसे जेल जा सकती है दरोगा जी, मान लीजिए मैंने लगायी थी वो आग। दरोगा ने पहले तो फौजी को घूरा, फिर उसके कान में कुछ कहा। पाँच लाख रुपये में हत्या की नामजदगी की बात फाइनल हुई। गाँव वाले कहते– इतने में तो तब के जमाने में हत्या के आरोपी छूट जाते। फौजी अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करता था, खोंप में पत्नी के साथ वो भी जल गया था। जो जेल गया था, वो जयशंकर नाम के आदमी का शरीर-भर था।

बताते हैं कि सालों बाद अब भी कभी-कभी गाँव में बहने वाली पछुआ-पुरुवा सब चिराइँध हो उठती हैं। सुगन्धा को जानकर हैरानी नहीं हुई कि उसकी माँ को मरते समय कौन-सी चिराइँध महक परेशान कर रही थी। बकौल मामी, नीलिमा की माँ की जला कर हत्या कर देने वाली सास इस घटना के बाद शान्त हो गयी और मिट्टी-चन्दन का लेप पोत रहने लगी। बेटे ने जेल जाने के बाद न तो कभी माँ का मुँह देखा, न पिता का, न ही बहन का। पूरी उम्रकैद के दौरान वे मिलते तो सिर्फ अपने पड़ोस के गाँव के दोस्त इरफान मियाँ से, जो उम्र में उनसे दसेक साल छोटे होने के बावजूद जिगरी यार का दर्जा रखते थे। इरफान मियाँ का घर महेन गाँव में था, वही महेन गाँव जो ताजपुर डेहमा से उतर सोनबरसा के रास्ते में पड़ता था। अपने खेत-बगीचे देखने-भालने के चक्कर में इरफान मियाँ इसी रास्ते पर अपने डेरा और ढेकुल के बीच मौजूद रहते। जयशंकर फौज से छुट्टी पर आते तो पहले इरफान मियाँ के ढेकुल पर पानी पीते, सुस्ताते-बतियाते, फिर आगे बढ़ते। अक्सर ही वो अपनी पत्नी और बिटिया नीलिमा को काँधे पर बैठाये इरफान मियाँ के ढेकुल पर ले आते जहाँ हर बार इरफान चाचा ढेकुल का पानी अपनी भौजाई और उसकी बेटी नीलिमा के ऊपर भी गिरा देते। जब कभी वो नीलिमा पर पानी नहीं डालते तो वो रूठ जाती और जब डाल देते पानी तो हर बार ठुनकती– ''ऐ चाचा, तू बार-बार भीजो देलअ!'' (चाचा, तुम बार-बार भिंगो देते हो!) पचहत्तर साल की नीलिमा, महेन से हजारों किलोमीटर दूर लन्दन के रसेल स्क्वायर में मरने से कुछेक दिन पहले बार-बार ढेकुल के पानी से भींगते हुए बिस्तर पर लेटे-लेटे अपना दाहिना पैर झटकते हुए बुदबुदाती, ''बार-बार भीजो देले!'' नीलिमा को बुआ बता गयी थीं कि जलते समय उसकी माँ बार-बार पानी माँग रही थी।

सुगन्धा को लगा कि उसके पर्स में रखे बरबरी के परफ्यूम से भी एक चिराइँध गन्ध आ रही है। ❑

प्रीति चौधरी

पेशे से लखनऊ के बाबासाहेब भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान की अध्यापक।

हाल ही में कहानियाँ लिखना शुरू किया है। पहली कहानी 'रेशमी लाल गमछा' तद्भव में प्रकाशित हुई और चर्चा में रही। दूसरी कहानी हंस में। इससे पहले अपनी समीक्षाओं और समसामयिक विषयों पर लेखन के जरिये प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में नजर आती रही हैं। तद्भव, हंस, शुक्रवार, नया ज्ञानोदय, कथाक्रम और समालोचन पर कई लेख और कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

साहित्य भंडार से प्रकाशित 'देह धरे को दंड' नामक पुस्तक जेंडर समेत तमाम सामाजिक-राजनीतिक मसलों पर बेबाक राय रखती है।

सन् 2018 में भारतीय विदेश नीति पर काम करने के लिए प्रतिष्ठित लोकसभा फेलोशिप के साथ ही वर्ष 2016 में प्रथम हरिकृष्ण द्विवेदी युवा लेखन पुरस्कार तथा उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला और यूजीसी की एसोसिएट फेलोशिप भी प्राप्त हो चुकी है। साहित्यिक गतिविधियों के अतिरिक्त आपको तमाम राजनीतिक-सामाजिक मसलों पर व्याख्यान हेतु राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में बुलाया जाता रहा है।

सम्पर्क : 903-बी, सीएसआई टावर, विपिन खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश)
मो. 7607680694

कहानी

गुनिता की गुड़िया

कल्पना मनोरमा

माँ, बच्चों का बसन्त होती है। मेरे घर बसन्त आ चुका है। आज वान्या कितनी खुश है, उसकी माँ मिताली पूरे एक महीने के बाद ऑस्ट्रेलिया टूर से लौटी है। वान्या की दादी गुनिता ने सोचकर राहत महसूस की। पोती के चेहरे पर एक पल की भी शिकन गुनिता को कभी मंजूर नहीं थी। वान्या अपनी दादी को दादी न कहकर अन्ना कहती है।

''वान्या, अब तुम मम्मा के साथ खेलो, मैं अपने कमरे में जा रही हूँ। मिताली, तुम भी थोड़ा रेस्ट कर लो बेटा! थकी होगी।'' अड़सठ साल की रिटायर गुनिता ने दो मिनट ठिठककर दोनों को देखते हुए कहा और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर बढ़ गयी।

बगीचे की ओर खुलने वाली कमरे की खिड़की आज पूरे एक महीने बाद खोली गयी है। पपीते, नींबू, आम और नीम के ऊपर पतझड़ अन्तिम अवस्था में ठहरा दिख रहा है। पेड़, पत्तों के बिना सूने लगते हैं, जैसे बच्चों के बिना घर। पुरानी कार के नीचे सूखे पत्तों का जमावड़ा देखकर बुदबुदाते हुए गुनिता चेहरे की झुर्रियाँ सहलाने लगी। पके पत्तों की रूखी-तिक्त गन्ध लिये हवा उसके अधपके बालों से उलझ रही है। गुनिता ने चश्मा उतारकर आँखें ऐसे खोलीं जैसे आकाश का खुलापन आँखों में भरना चाहती हो। कुछ सोचते हुए उसने हिन्दी पत्रिका 'आजकल' का ताजा अंक उठाया और आरामकुर्सी में पड़े कुशन में धँसकर बैठ गयी। वान्या के पापा ऑफिस जा चुके हैं, महीने-भर की बातें माँ को बताने के लिए वह उसके आगे-पीछे खरगोश की तरह दौड़ रही है। माँ-बेटी की खुश आवाजें गुनिता का मन आनन्द से भर रही हैं।

मिताली सभी के लिए लाये हुए उपहार खोलकर दिखा रही है। वान्या उसके कन्धों पर लदी उसका मुँह चूम रही है। माँ के चेहरे से ममता झर रही है। मिताली, सास के लिए क्रिस्टल की माला तथा साँवले रंग, ठिगने कद और छोटी आँखों वाली ऐना (सहायिका) के लिए ग्रे स्कर्ट और ब्राउन टॉप लायी है, जिसे देखकर ऐना भावुक हो रही है। वान्या के लिए हमेशा की तरह इस बार भी एक बार्बी का सेट आया है।

''मम, ये कैसी डॉल है? इसका पेट बाहर क्यों निकला है? ये स्लिम क्यों नहीं है?'' अवाक् वान्या ने भरभरा कर माँ से कई एक सवाल पूछ डाले हैं।

''क्योंकि ये प्रेग्नेंट डॉल है। ऑस्ट्रेलिया में मेरी फ्रेंड लीजा अपनी बेटी के लिए ऐसी ही एक डॉल खरीद रही थी तो मैंने भी अपनी प्रिंसेज के लिए ले ली। तुझे पसन्द आई न?''

''आँ... हाँ, बट इसका पेट क्यों निकला है? ये मुझे कम अच्छा लगा। मुझे तो स्लिम डॉल पसन्द है न मम्मा।''

''बोला तो! इसके पेट में बच्चे हैं। अच्छा इधर आओ, दिखाएँ। बेटे, ये अलग तरह की गुड़िया है। ये देखो, इसके बच्चे।'' माँ ने गुड़िया के पेट की जिप खोलकर बच्चे दिखाये। माँ-बेटी की बातों ने गुनिता का ध्यान बरबस अपनी ओर खींचा। वान्या को अभी ऐसे खिलौने नहीं देना चाहिए। गुनिता सोचकर उठने को हुई, लेकिन फिर ठिठक कर अपना सिर झटक दिया, मशीनी विकास ने सिर्फ भौतिक रूप से ही नहीं, आन्तरिकता से भी मनुष्य को बदला है। मिताली समझदार माँ है, हैंडिल कर लेगी। गुनिता फिर से पत्रिका पढ़ने लगी।

''नाव डू यू अंडरस्टेंड?'' मिताली ने बेटी से पूछा।

''ओके... ओके मम्म।'' माँ को टालने के भाव से वान्या ने कहा, लेकिन उसके चेहरे से अनभिज्ञता टपकते हुए देख ऐना पास आकर बोली।

''वान्या बेबी, इन्स्टा पर प्रेग्नेंट डॉल की रील देखी थी न? याद है न?''

''ओ! ओ! अच्छा! ये वो वाली डॉल है ऐना?''

''यस-यस...।'' ऐना बोली।

''फिर तो आज इन्स्टा रील वाला खेल ही खेलूँगी।'' वान्या उछल पड़ी।

ऐना वान्या को देखती रही, मुस्कराती रही, लेकिन जब उसकी नजर उसकी माँ पर पड़ी तो वह झेंपकर सफाई देने लगी।

''बस पाँच मिनट के लिए वान्या ने मेरा मोबाइल देखा था मैम।''

मिताली ने एक बार ऐना को देखा, पर कहा कुछ नहीं। वान्या अब फुदक-फुदक कर शोर मचा रही है। गुनिता की रीडिंग में जब ज्यादा खलल पड़ने लगा तो उसने बाहर की ओर देखकर रोकना चाहा, पर हँसती-कूदती वान्या उसे अच्छी लगी। आज मेरा सूना पड़ा 'सुखधाम' फिर से गुलजार हुआ है, माँ के साथ बड़े होते बच्चे, जैसे डाली पर लगे हुए सेबों का मिठाकर पकना। पत्रिका छाती पर रख गुनिता ने आँखें मूँद लीं।

''मम्म, आप क्या ऑफिस जाओगी आज?'' वान्या ने माँ से पूछा।

''नहीं, पर जब तुमने याद दिला ही दी, तो क्या चली जाऊँ?'' माँ ने चुटकी ली।

''नो मम्म, प्लीज! आज वह इंस्ट्राग्राम वाला खेल खेलो न मेरे साथ।'' वान्या के इसरार पर माँ ने सारे काम स्थगित कर दिये।

''मम्मा, प्लीज हेल्प मी!'' खेल शुरू होने से पहले वान्या अपनी माँ से बोली।

''वह तो ठीक है वान्या, पर ये बताओ कि तुम्हारा स्कूल कैसा चल रहा है? ट्यूशन टीचर टाइम से आ रही थीं न?'' मिताली ने उसके खेल में हाथ बँटाते हुए पूछा।

''हाँ मम्मा! पर डॉक्टर ने डॉल की डिलिवरी डेट आज की ही दी है। और आप स्कूल और पढ़ाई की बात कर रही हो!'' वान्या ने माँ का ध्यान खेल की ओर मोड़ते हुए कहा और घुटनों में मुँह छिपाकर खी-खी-खी कर हँस पड़ी।

''अच्छा! तो ये है तुम्हारा नया खेल?'' मिताली बोली।

''हाँ, इन्स्टा रील वाला...।''

''ओके ओके। इतने दिन में मिली हो इसलिए तुम सोच रही हो कि मैं तुम्हें डाँटूँगी नहीं? अच्छा ठीक है, आज नहीं कल देखती हूँ।'' छोटी-सी मुस्कान लिये मिताली बोली, जिसे वान्या ने अनदेखा कर दिया।

''मम, मैं अन्ना को डॉल के बच्चे दिखा कर आती हूँ। तब तक आप गुड़िया का बिस्तर बना दो।'' वान्या ने जाकर बार्बी के पेट की जिप खोलकर दादी को गुड़िया के छोट-छोटे गोल-मटोल बच्चे दिखाये जिसे देखकर अचम्भित गुनिता के मुँह से निकला, '' हे ईश्वर अब किस प्रकार के खिलौने बनने लगे हैं? दुनिया किस तरह की तरक्की कर रही है?''

''डॉल अच्छी है न? अन्ना, आपका नाम गुनिता है तो डॉल का नाम बताओ न! जो आपके नाम के साथ रायमिंग हो सके?'' वान्या ने दादी को कुछ और बोलने का मौका नहीं दिया।

''बनिता!'' अन्ना ने सहज ही कहा।

''इट इज टू गुड? आज से इसका नाम बनिता ही होगा।'' रसभरी हँसी हँसकर वान्या बोली, ''अब मैं खेलने जाऊँ अन्ना?''

''हाँ।''

वान्या ने लौटकर नयी बार्बी को बिस्तर पर सुला दिया। डॉक्टर बार्बी और नर्स बार्बी को ड्यूटी पर खड़ा कर दिया गया। इस तरह वान्या ने अपने कमरे का एक कोना लेबररूम में बदल लिया है। अपने चेहरे पर चिन्तातुर भाव लिये अब वह सभी को देख रही है।

''मम्म, प्लीज कॉल अन्ना एंड ऐना ऑल्सो! डिलिवरी टाइम में उनकी नीड हो सकती है।''

हँसते हुए मिताली ने तत्परता से अन्ना और ऐना को बुला लिया। सभी अपने-अपने काम छोड़कर डॉल रूम में आ गये हैं। सीजर और कॉटन पकड़ाकर ऐना को डॉल-बेड के पास बैठाया गया। वान्या की माँ ने घुटनों पर बैठकर गुड़िया के ऑपरेशन का काम सँभाला है। थोड़ी दूरी पर बैठी गुनिता आश्चर्य छिपाते हुए पोती का खेल देख रही है।

''कॉन्ग्रेचुलेशन वान्या! तू नानी बन गयी। तेरी डॉल को दो बेटियाँ हुई हैं।'' माँ ने वान्या को गले लगाकर उसे बधाई दी तो वान्या कौतुक से तालियाँ बजाकर नाच उठी।

''ऐना, प्लीज ब्रिंग मिल्क केक एंड सभी का मुँह मीठा कराओ।'' कक्षा चौथी में पढ़ने वाली वान्या ने अपनी गृह सहायिका ऐना से जैसे ही ये वाक्य बोला तो हँसी से कमरा गूँज उठा। ऐना जमीन पर लोट-पोट हो गयी। नये जनमे डॉल शिशुओं को गोद लिये मिताली भी खिलखिला कर हँस पड़ी।

''ममा, ट्विन्स के लिए गूगल पर नेम सर्च करो न!''

''ओ स्योर! कम ऑन वान्या! हम दोनों खोजते हैं नाम।'' माँ-बेटी को नाम खोजने में व्यस्त देखकर गुनिता बुदबुदायी।

''आज की माँएँ कितनी आधुनिक हो चुकी हैं, एक मेरी माँ थीं। मैंने भी कितने अरमानों से गुड़िया बनायी थी पर न जाने क्यों मेरी माँ इतनी भयभीत थीं? कौन-सा भय उसको खाये जा रहा था। आज तक न जान सकी लेकिन वह भी क्या समय था, उफ्फ!'' बूढ़ी हो चली गुनिता अपने अतीत में खो गयी।

दोपहर के तीन बज रहे थे। जून की तपती दोपहर में प्यासा कौआ जैसे इधर-उधर भटकता है, मेरा हाल वैसा ही था। स्कूल से लौटने के बाद ताई ने बताया कि नानी के घर से माँ लौट रही हैं तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैं जल्दी माँ से मिल लेना चाहती थी। एक-एक मिनट मुझे पहाड़-जैसा लग रहा था।

शाम को माँ घर पहुँची थीं। माँ ने तोतई रंग की साड़ी पहन रखी थी। आँगन से धूप जा चुकी थी, लेकिन अँधेरा होना अभी भी बाकी था। माँ के आलता-लगे पाँव और पसीने से भीगा स्लेटी चेहरा मुझे बहुत अच्छा लग रहा था। रास्ते की धूल चिपके पपड़ाये होठों से माँ की मुस्कान उलझकर फूट रही थी। जितनी जल्दी माँ से मैं मिल लेना चाहती थी, उतने ही अजीब संकोच ने मुझे ठिठका दिया था। दो महीने से माँ के बिना मैं अकेली थी या दादी की डाँट का भय था, क्योंकि माँ के जाने के बाद जब भी दादी कोई काम करवातीं तो हमेशा मुझसे कहती आ रही थीं, ''गुन्नू, महतारी के आने पर उसे बताने मत बैठ जाना कि हम तुझसे काम करवाते रहे हैं।'' पता नहीं किस बात ने मेरे कच्चेपन को कुरेद दिया था। कान के पीछे लटकी सुनहरी लट से खेलते हुए मैं दूर खम्भे की ओट से माँ को देख रही थी और माँ मुझे, लेकिन बोल कोई नहीं रहा था, न मैं न माँ।

वह रात सुन्दर थी।

माँ जब घर के काम निपटा रही थीं तब मैं उनके बिस्तर में चुपचाप ये सोचते हुए सो गयी कि आज रात कोई भी मुझे जगाएगा नहीं। अगली सुबह खड़खड़ाती हुई गुस्से वाली आवाज में उठाने दादी नहीं आएँगी। इस तरह सारी रात सुखद सपनों में खोये हुए मैं सुबह जागूँगी। मैं अभी सोच ही रही थी कि इतने में माँ आ गयीं और मैं उनके सीने में दुबक कर चैन की नींद सो गयी थी।

सुबह देर से जागने पर आँगन के कोने में पड़ी लकड़ी की बड़ी-सी कुर्सी में जाकर बैठ गयी, जिस पर घर-भर के कपड़े लदे रहते थे। माँ नहाकर जब निकलीं तो मुझे वे अपनी-सी लगी थीं। उनके चेहरे से हमारे बीच पसरा लम्बा अन्तराल धुल चुका था। पास आकर उन्होंने मेरे सिर पर गीला हाथ फिराया तो मेरी छाती में कम्पन हुआ था। माँ के नयेपन के साथ मेरी झिझक भी अब धीरे-धीरे क्षीण होती गयी और हम दोनों पुराने ढर्रे में रम गये।

माँ का सबसे पसन्दीदा काम मुझे पढ़ाना होता था।

नाना के घर से लौटने के बाद वे बहुत जल्दी मुझे पढ़ाने बैठना चाहती थीं और मैं माँ को कुछ दिखाना चाहती थी। मौका दोनों ताड़ रहे थे, मिल किसी को नहीं रहा था। हाँ, दादी को जरूर मेरी शिकायतें बताने के मौके-दर-मौके मिलते जा रहे थे। वे शिकायतों का पुलिन्दा खोलकर माँ को लज्जित करने का एक भी मौका नहीं छोड़ रही थीं। दादी की मदद के लिए मुझे छोड़कर माँ 'हवन करते हाथ जलने' जैसी पछता रही थीं। घर के साथ उनके मन का वातावरण भी धुआँ-धुआँ हो चला था।

काफी समय बीत चुका था। एक दिन माँ को मौका मिल ही गया। उन्होंने पेंसिल-कॉपी के साथ मुझे अपने पास बुलाया और पढ़ने बिठा लिया। मैं इमला और पहाड़े कभी नहीं पढ़ना-लिखना चाहती थी। और माँ! इमला से ही पढ़ाना शुरू करती थीं। उस दिन भी पहला शब्द 'पत्ता' लिखने के लिए जब माँ ने बोला तो मुझे मामा के स्वेटर की पत्तेदार डिजाइन याद आ गयी। मैंने माँ से रुकने का आग्रह किया तो वे मान गयीं। झटपट अन्दर से साइकिल की दो तानें और ऊन की गुल्लियाँ उठा लायी थी।

''पत्ते वाली डिजाइन सिखाओ न मम्मी। पढ़ना बाद में...।'' मेरा इतना कहना था कि माँ को हँसी आ गयी, जिसे वे दबाना चाहती थीं पर वे हँस पड़ीं।

''ये अच्छा मौका है। मम्मी हँस रही हैं तो गुस्सा नहीं करेंगी। क्या अपनी चीज दिखाने का ये सही मौका रहेगा? या नहीं?'' मैंने थोड़ी देर हाँ, ना का अन्दाजा लगाया, फिर धीरे से वह चीज उठा लायी जो पूरे मनोयोग से बनायी गयी थी। मेरे छोटे से मन में कौतूहल उमड़ रहा था।

''मम्मी, एक बार आँखें बन्द करो न!'' मैंने कहा।

माँ ने आँखें बन्द नहीं कीं तो मैंने मलमल की गुड़िया जो दादी की सफेद धोती से बनायी थी, हाथ पर रख दी। माँ जितना उलट-पलट उसे देख रही थीं, उनकी भाव-भंगिमा बदलती जा रही थी। लेकिन मैं उनके मुँह से शाबाश शब्द सुनने के लिए उतावली हो रही थी। सफेद मलमल की गुड़िया की कसी-कसी लाल चोली देखकर माँ कुछ बोल न सकी थीं। बल्कि उनका चेहरा पहले से ज्यादा उदास पड़ गया था, जो उस समय मुझे डराने के लिए काफी था। माँ के पास से उठकर भाग जाने की मेरी इच्छा नहीं थी और क्रोधित माँ को देखने में भी मेरी हिम्मत चुक रही थी। अभी मैं सोच ही रही थी कि माँ अचानक रोने लगीं। सिसकियों में डूबा माँ का शुष्क चेहरा मुझे और भी डरावना लगने लगा था। उन्हें देखने से लग रहा था कि उनके मन में कोई बहुत पुरानी बात धधक उठी थी। उनके ममतालु स्वाभाव में अचानक परिवर्तन क्यों आ गया था? मैं समझ नहीं पा रही थी। वे अन्दर से टूटकर मानो बिखर रही थीं और मैं उन्हें बस ताके जा रही थी।

''कुछ पता तो चले माँ कि तुम इतनी पछताई और घबराई हुई क्यों लग रही हो?'' मैंने सोचा ही था कि माँ सवाल पर सवाल पूछने लगीं।

''तुम आजकल किसके साथ खेलती हो? गुड़िया की छाती इतनी फूली-फूली क्यों दिख रही है? क्यों बनायी तुमने चोलीदार गुड़िया? क्यों तुम जल्दी बड़ी हो जाना चाहती हो? क्यों तुम्हें छोटे रहने में चैन नहीं आता?'' माँ के प्रश्नों को

सुनकर मैं भौंचक थी। कहाँ तो मैं शाबाशी की उम्मीद कर रही थी और कहाँ माँ इतने सारे प्रश्न लेकर बैठ गयी थीं।

''मम्मी, जो तुम देख सुन पा रही हो, मैं बिलकुल नहीं समझ पा रही हूँ।'' मैं कहना चाहती थी पर कहा नहीं। कहा, ''माला की भाभी ने बताया था कि इसकी छाती में दो बड़े-बड़े काबुली चने रखने से इसकी चोली की फिटिंग बहुत अच्छी बनेगी और जब मैंने उनकी मदद से चोली वाली गुड़िया बनायी तो सच में गुड़िया बहुत सुन्दर लगने लगी थी। उसके बाद जब माला, कुमुद और केशा, हम साथ में घर-घर खेल रहे थे तब ये गुड़िया मुझसे बातें भी करती थी। हम लोग इसी गुड़िया से रोज माला के घर खेलने जाने लगे थे।'' मैंने कहा, लेकिन माँ पत्थर की मूरत में बदलती जा रही थी।

''तुम्हें माला की भाभी के पास जाने की जरूरत ही क्या थी? और गुड़िया से बातें करने की भी क्या जरूरत पड़ी तुम्हें? अब तुम इन्हीं लोगों से बातें करो, मैं तुमसे कभी भी बात नहीं करूँगी।'' माँ ने गुस्साते हुए जब कहा तो रोते-रोते मैंने माँ से कहा, ''कुमुद बता रही थी कि उसकी भाभी एक बहुत प्यारा-सा गुड्डा बना रही हैं। कुमुद, मेरी गुड़िया के साथ उसका ब्याह रचायेगी। जब तुम मुझसे बोलोगी ही नहीं तो मैं गुड़िया का ब्याह कैसे रचा पाऊँगी मम्मी?''

मैंने माँ को बहलाने के लिए अपनी समझ से बहुत सुन्दर कुछ कह दिया था। लेकिन माँ को मेरी बात सुन्दर नहीं लगी थी। मेरी बात सुनकर वे और भी क्रोध में आ गयी थीं। माँ ने धमाधम बिना गिने मेरी पीठ पर दस-बीस घूँसे बरसा दिये थे। उनका चेहरा लोहे की तरह सख्त लगने लगा था। मेरा मन हुआ कि मैं माँ से लिपट कर उन्हें मना लूँ और हाथ भी बढ़ाया था मैंने, जिसे बीच में ही रोक लिया था माँ ने। अब उनका तमतमाया चेहरा मुझे आतंकित करने लगा था।

अब सोचती हूँ तो समझ पाती हूँ कि शायद माँ के लिए वह गुड़िया नहीं, शील-परिधि थी जिसे मैं अंजाने तोड़ चुकी थी।

माँ गुड़िया हाथ में पकड़े, मुझे परायों की तरह देख रही थीं लेकिन उनकी आँखें पढ़ कुछ और ही रही थीं। शायद उनके जीवन की भयानक यादों का एक टुकड़ा छिटक कर माँ के भीतर साँस लेने लगा था। माँ ने मुँडेर पर रखे तुलसी के गमले पर अपनी आँखें टिका दीं तो मैं धीरे से उनके पास से खिसक कर दूर कोने में जाकर बैठ गयी थी। थोड़ी देर में पड़ोस की निर्मला चाची, माँ से मिलने आ पहुँची थी। माँ दुखी होकर मेरी बातें उन्हें बताने लगी थीं। निर्मला चाची, माँ की दु:ख-सुख की सहेली थीं।

''आओ बैठो निर्मला, मेरा मन आज बहुत उदास है। मैंने आज गुन्नू की बहुत पिटाई लगायी है।''

''तुमने क्यों मारा जिज्जी? जरूर बड़ी अम्मा का गुस्सा उस नन्हीं-सी जान पर उतरा होगा? जबकि तुम्हारी गुनिता तो कितनी समझदार है!''

''अरे निर्मला, मारती नहीं तो क्या ही करती! ये लड़की कुछ समझने को तैयार ही नहीं, जबकि इसे समझना चाहिए कि इसने शर्तों पर जन्म लिया है। मैं इधर शर्त हारी, उधर इसकी जिन्दगी खत्म। तुम तो मेरी सास को जानती ही हो, जब ये पेट में थी तो मेरा गर्भ गिराने के लिए मेरी सास पीछे ही पड़ गयी थीं। उनका तो एक बार सबर भी कर लेती, लेकिन गुनिता के पापा भी उन्हीं की बातों में शामिल थे। उनकी बातें मेरे कानों में हमेशा बजती रहती हैं– कान खोलकर सुन लो सुजाता, पैदा तो तुम इस लड़की को कर रही हो लेकिन मेरी आँखों से इसे दूर ही रखना। मेरी मूँछ का बाल अगर टेढ़ा हुआ तो आँगन में दो कब्रें बराबर में खोदकर अपने हाथों से तुम दोनों को जिन्दा दफनाऊँगा और किसी को कानों कान ये पता भी नहीं लगने दूँगा कि जीती-जागती दो औरतें आखिर चली कहाँ गयीं?''

कल्पना मनोरमा

जन्म : 4 जून 1960

शिक्षा : एमए, बी-एड

गीत, नवगीत, कविता, कहानी, निबन्ध आदि विधाओं में समान रूप से सक्रिय। 'कस्तूरिया' नाम से एक ब्लॉग चलाती हैं। कहानियाँ व कविताएँ वागर्थ, कथाक्रम, समावर्तन, विश्वगाथा, सोच-विचार, गर्भनाल, बाल भारती, त्रिभाषा उच्छवास आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित।

प्रकाशित कृतियाँ : कब तक सूरजमुखी बनें हम (नवगीत संग्रह); बाँस-भर टोकरी, नदी सपने में थी (कविता-संग्रह) के साथ-साथ कहानियों और लघुकथाओं की एक-एक पुस्तकें प्रकाशित।

पुरस्कार/सम्मान : दोहा शिरोमणि सम्मान, वनिका पब्लिकेशन द्वारा लघुकथा लहरी सम्मान, वैसबारा शोध संस्थान द्वारा नवगीत गौरव सम्मान, सर्वभाषा ट्रस्ट द्वारा सूर्यकान्त निराला सम्मान, जैमिनी अकादेमी का आचार्य सम्मान, हिन्दुस्तानी भाषा अकादेमी का काव्य प्रतिभा सम्मान आदि से पुरस्कृत/सम्मानित।

लम्बी अवधि तक माध्यमिक विद्यालय में संस्कृत व हिन्दी से जुड़ी रहीं। अब सेवा-निवृत्त।

सम्पर्क : बी-24, ऐश्वर्यम अपार्टमेंट्स, प्लॉट संख्या-17, सेक्टर-4, द्वारका, नयी दिल्ली-110075

मो. 8953654363

''जिज्जी अब परेशान मत हुआ करो। चला गया बुरा समय।''

''निर्मला, वे बातें भूले नहीं भूलती हैं। अपनी गर्भस्थ बच्ची का भविष्य अन्धकारमय सोचकर मेरी रूह काँप उठती थी। मेरे मन में बार-बार आता रहा था कि वंश-बेल इनकी बढ़ेगी? ऐसे अनाचारियों की? क्योंकि इनके पुत्र मोह में मैं अपनी दो लड़कियों को पहले ही गिरा चुकी थी। आखिर उन अजन्मी बच्चियों का दोष ही क्या था? उसी बिना पर मैंने निर्णय लिया था कि अब जो बच्ची मेरे जीवन में आ रही है, उसे आना ही होगा।''

''उन बातों को याद करने से क्या फायदा! भूल जाओ।''

कुछ देर बाद जब निर्मला चाची चली गयी थीं। मैं उठकर माँ के पास फिर चली गयी थी। मेरे गालों पर सूखे आँसुओं की पपड़ियाँ पड़ चुकी थीं, जो गाल छूने पर खरखरा रही थीं। घर में सन्नाटा बज रहा था। माँ लाल-लाल चेहरा लिये बुदबुदाती जा रही थीं। मुझे अजीब तरह के भय ने फिर से घेर लिया था। मैं नाखून चबाते हुए उनके पास बैठ गयी थी। मुझे ध्यान से देखकर माँ फिर से बोलने लगी थीं, ''गुन्नू, कितना मुश्किल था काँटेदार रास्तों पर चलकर तुम्हारे लिए ममता बचाये रखना और तुम हो कि समझना नहीं चाहती। नीचे करो हाथ, नाखून मत चबाया करो। तुम छोटी क्यों नहीं बनी रहना चाहती बिटिया? क्यों बड़ी हो जाना चाहती हो? स्त्री-देह की माया में क्यों फँसना चाहती हो?''

''ठीक है मम्मी, फेंक दो इस गुड़िया को। मैं नहीं बनाऊँगी ऐसी गुड़िया कभी।'' माँ मन की नरमाहट पाकर नाक पोंछते हुए मैंने माँ के हाथ पर अपना पसीजा, चिपचिपा हाथ रख दिया। कुछ देर मेरी ओर देखने के बाद माँ ने गुड़िया को उठाया जो जमीन पर उधड़ी पड़ी थी।

''जब तुमने गुड़िया बना ही ली है तो लो, पकड़ो इसे। मगर ये भी जानो कि गुड़ियों को उजाला सौंपने वाले लोग दुनिया में बहुत कम ही होते हैं। क्या ये अँधेरे में रहकर अपने लिए उजाले बुन सकेगी? बोलने वाली गुड़ियों को मार दिया जाता है। क्या बिना डरे ये अपनी बात कह सकेगी? समाज में भले गूँगी-अन्धी गुड़ियों की कामना हो, पर क्या ये अपनी बोलती हुई रचनात्मकता को जीवित रख सकेगी? अँग्रेज ही क्रूर नहीं थे, अभी भी हर घर एक सेल्यूलर जेल है और हर गुड़िया कैदी। ऐसे में क्या गुड़िया अपनी आत्मा को मुक्त रख सकेगी?'' लाल गाल और पनीली आँखें लिये माँ अनाप-शनाप बोले जा रही थी, पर उनकी एक बात भी मेरे पल्ले नहीं पड़ रही थी।

''मम्मी, आज से जितना आप कहेंगी मैं उतना ही करूँगी विद्या कसम! बस एक बार मुझे माफ कर दो, बस्स एक बार।''

माँ को खुश करने के लिए जो मुझे जो समझ आया वो कह दिया और हाथ जोड़ दिये थे। माँ अब चुप थीं, मैंने फिर कहना शुरू किया, ''मम्मी, कुछ बोलो न! बोलना बन्द मत करो...। अब कभी नहीं बनाऊँगी ऐसी गुड़िया। इसे सच में फेंक दूँगी।''

माँ ने धोती के पल्ले से अपनी आँखें पोंछी और मुझे सीने से लगा लिया। हम दोनों रोई-रोई आँखों से एक-दूसरे को देख रहे थे।

कुछ देर बाद माँ ने मुझसे कहा, ''गुनिता, मुझसे एक वादा करोगी?''

''हाँ मम्मी, पर क्या, कौन-सा वादा?'' माँ की बोली में नरमाहट सुनकर मुझे अच्छा लग रहा था। मेरे मन के भीतर एक नन्हीं-सी पुलक उछल पड़ी थी।

''तो उठाओ अपनी गुड़िया और पोंछो अपने आँसू। जो बात मैं कहने जा रही हूँ, ध्यान से सुनो।''

मैंने चट से अपने आँसू पोंछकर गुड़िया को उठाकर अपनी फ्रॉक के घेरे में रख लिया था।

''तुम अपनी गुड़िया को बताना– जिस समाज में गुड़ियाँ रहती हैं, वह खतरनाक है। गुड़िया के साथ तुम्हें भी नदी में तैरने के साथ समुद्र नापना भी सीखना होगा। अपनी मान्यताओं की परिधियों को बिना तोड़े, बड़ी बनाना भी एक कला है, उसे भी सीखना होगा। भले किस्मत अच्छी न हो लेकिन सपने देखना कभी नहीं छोड़ना होगा। तुम्हारी गुड़िया तभी ये बातें सीख सकेगी जब तुम मेरी बातों को समझोगी।''

माँ भावावेश में बहुत कुछ कहती जा रही थीं लेकिन उनकी बातों को मैं ठीक से समझ नहीं पा रही थी। चुपचाप सुने जा रही थी। बोलते-बोलते अचानक माँ फफक पड़ी थीं लेकिन उनके इस रोने में खौफ नहीं था, न डर था, न घबराहट थी।

''मम्मी...?'' मैंने कुछ और कहना चाह रही थी मगर मेरे होठों पर उँगली रखकर माँ ने मुझे अपनी ओर फिर से खींच लिया। नाराजगी के बाद वाला प्यार हँसाता कम, रुलाता ज्यादा है। मेरी आँखें घनघोर बरस पड़ी थीं। मैंने देखा मेरे साथ माँ भी हिलक-हिलक कर रो पड़ी थीं।

''मम्मी, तुम रोओ मत, मम्मी, रोओ मत मम्मी...।''

''अरे अन्ना! आप तो रो रही हो? यू बिकेम ॲ ग्रेट ग्रांड माँ!'' नन्हीं-सी टावेल में बार्बी के बच्चों को लाकर वान्या ने दादी की गोद में रखा तो अतीत में डूबी द्रवित गुनिता सचेत होकर आँखें पोंछने लगीं और मुस्कराकर गुड़िया के बच्चों को देखने लगी।

❑

आँचल

इति सामन्त

अनुवाद : स्वयं

''**रुक** जा बेटा! रुक जा! ऐसे भागो मत थोड़ी देक रुक जाओ। चावल का निवाला तेरे मुँह में दे दूँ, फिर जितना चाहे भागना।'' दाल-चावल का निवाला बनाते हुए बेटे को बोल रही थी झुम्पा।

''नहीं माँ! तुम्हारे पास बिलकुल नहीं आऊँगा मैं। ऐसे ही भागते हुए दौड़ता रहूँगा। तुम मेरे पीछे भागो। अगर पकड़ पाओगी तो मेरे मुँह में निवाला दे देना। नहीं तो नहीं खाऊँगा मैं।'' खिल-खिलाते हुए सारे आँगन में भाग रहा था पाँच साल का बच्चा चीकू।

''कितनी भागूँ मैं तेरे पीछे? जितनी भी दौड़ लगाती हूँ, कहाँ पकड़ पाती हूँ तुझे? बहुत भगा लिया तुमने मुझे। इतना भागने से माँ गिर पड़ी तो? अगर माँ का पैर टूट गया तो? फिर तुम्हारे पीछे कौन भागेगी बोलो? मुझसे नहीं हो रहा है बेटा। थोड़ा मेरे पास आ जाओ।''

''कहाँ ज्यादा भाग लिया? इतनी थोड़ा-सा भाग के बोल रही हो और नहीं होगा? हर रोज मेरे खाने के वक्त कहाँ होती हो तुम? कभी-कभार घर आती हो तो मेरे खाने के समय सोती रहती हो। अभी घर में हो इसलिए खिला देती हो मुझे। थोड़ा बहुत अभी खेल पा रहा हूँ मैं तुम्हारे साथ। भागो! भागो! मेरे पीछे भागते हुए पकड़ो मुझे।'' थोड़ा रुक कर बोला चीकू। फिर भागने लगा।

''बेटा! सुनो तो जरा! आ जाओ! मेरा प्यारा बेटा, एक निवाला तेरे मुँह में दे दूँ।''

''अरे बेटी! छोड़ उसे। तुझसे नहीं होगा। बड़ा ही नटखट है। तू जा, कोई दूसरा काम है तो कर। मैं उसे गोद में लेकर बाहर घूमाने ले जा रही हूँ। वहाँ कुत्ते, गाय दिखाकर खिला लूँगी उसे। वो लड़का जो शरारत कर रहा था, अभी कुछ दिन तेरे पास रहकर और ज्यादा शरारती हो गया है। तेरे ज्यादा लाड़-प्यार से वो किसी की नहीं सुन रहा है।'' रसोईघर से बोली झुम्पा के सासू माँ।

कुछ भी नहीं बोली झुम्पा।

सोचने लगी...

गलत कहाँ बोल रहा है चीकू! बिलकुल नहीं। सच में। पैदा होने से अब तक कहाँ वो रह पायी चीकू के पास? कहाँ अपने सीने से लगाकर चिपका के सुलाया, कब और कितनी बार रात को चौंकता हुआ देखी होगी चीकू को? क्या उसका बचपना और नटखटपन देखा है उसने? क्या लम्बे समय तक प्यार और ममता लुटाया चीकू पर? इतने सारे सवालों का जवाब कहाँ है उसके पास? ये सारे सवाल उसके मन में पहले नहीं आये, ये बात भी नहीं। बार-बार ऐसे ही कितने सारे सवालों ने उसके सीने को निचोड़ कर रख दिया। कितनी व्याकुल हुई वो! पर हालात कहाँ उसके हाथों में हैं?

चीकू को देखती रह गयी थी झुम्पा!

उम्र भी क्या थी जब वो छोड़ कर गयी थी चीकू को! अभी भी आँखों के सामने है वो नजारा। तीन महीने का बच्चा! बिस्तर पर सोते हुए धीमी गति से हाथ-पैर हिला रहा था। कभी अपना हाथ चाट रहा था तो कभी कपड़े मुँह पर डाल देता था। और वो अपने चंचल हाथों से एक छोटे से बक्से में अपना सामान भर रही थी।

समय कहाँ ठहरता है! वो चलता रहता है अपने हिसाब से!

उस दिन घुटनों के बल रहा था चीकू। फिर देखते ही देखते

चल पड़ा। दिन-ब-दिन कितना बड़ा हो गया है वो! स्कूल जाने लगा है। पर... कहाँ वो देख पायी उसका घुटनों के बल चलना, करवट लेना, धीरे-धीरे जमीन पर पैर देकर दीवार पकड़कर चलना, चलते-चलते गिर पड़ना, कुछ समय आँख मिचोड़कर रोने के बाद फिर दीवार पकड़कर अपने आप उठना। कहाँ वो सुन पायी उसका तुतलाकर बोना? सिर्फ वही एक दो-बार दिन में फोन पर। बस...! और नहीं।

''माँ!'' चौंकाते हुए आकर हिला दिया चीकू।

''अरे वाह! मेरा बेटा सही वक्त पर पास आ गया। थोड़ा मुँह दिखाओ तो। मुँह खोलो।'' चीकू को कस के पकड़कर उसके मुँह में चावल का निवाला देने की कोशिश कर रही थी झुम्पा।

''नहीं! बिल्कुल नहीं। क्या लगा, मैं निवाला लेने आया हूँ? मैंने कहा ना तुम मेरे पीछे भागो। भागते हुए पकड़ेगी तो मैं निवाला मुँह में लूँगा।''

मुँह नहीं खोला चीकू। खींचातानी में निवाला झुम्पा के हाथ से नीचे गिर गया।

''हो गया? मना किया था ना मैंने कि मत दो? अच्छा हुआ गिर गया।'' झुम्पा के हाथ से छूट कर ताली बजाते हुए कूद-कूद कर आँगन की ओर चला गया चीकू।

''क्यों इतना नासमझ हो रहा है बेटा? आओ! थोड़ा मेरे पास आ जाओ। मेरे पास आ कर बैठो। अच्छी-अच्छी कहानी सुनाऊँगी मैं!'' बेटे को समझाने कि कोशिश कर रही थी झुम्पा।

''अरे बेटी! तेरी पकड़ में नहीं आयेगा वो। तब से बोल रही हूँ मैं। कहाँ तुम्हें इसकी आदत है? कितने प्यार से खिलाती हूँ मैं। कभी उस घर की कुबड़ी चाची की गाय के पास ले जाती, कभी रंजू-मंजू को बुलाती, तो कभी मुर्गियों के लिए चावल डालती हूँ। ऐसे ही कितने कुछ जतन करने के बाद जा कर वो लड़का थोड़ा चावल खाता है। कहाँ तू ये सब कर पायेगी? तू जा। मुझे दे।'' अपने आँचल से हाथ पोंछते हुए आकर पास बैठे झुम्पा की सासू माँ।

''नहीं दादी! तुम्हारे पास बिल्कुल नहीं जाऊँगा। तुम्हारे हाथों से नहीं खाऊँगा मैं। माँ के हाथों से ही खाऊँगा खाना।'' भागते-भागते खड़े होकर बोलने लगा चीकू।

''तो आ जाओ! कहाँ मैं मना कर रही हूँ तुझे खिलाने के लिए? तू सिर्फ मेरे पास बैठकर दो-चार निवाले खा ले; उसके बाद हम दोनों खेलेंगे। फिर सोते वक्त ढेर सारे राजा-रानी की कहानियाँ सुनाऊँगीं मैं। आओ बेटा, आ जाओ।''

''क्यों उसकी बात सुन रही है? तू जा!'' चावल की थाली खुद की ओर लेते हुए झुम्पा की सासू माँ बोली, ''चलो आओ! हम चलेंगे कुबड़ी चाची के घर। देखेंगे झुमरी आयी कि नहीं।''

हर वक्त वो बाहर रहती है। जो काम वो करती है उस काम में आज इधर तो कल उधर जाना होता है! महीने-महीने तक रंगमंच पर बीतता है। बच्चे को पैदा तो किया उसने। पर कहाँ रह पायी उसके साथ वो! बच्चे से धीरे-धीरे बड़ा होता जा रहा है वो। न कभी वो उसे गोद में लेकर चाँद दिखा पायी, न कभी शरारत करने पर समझा पायी, न कभी रोते हुए बच्चे को लोरी सुना पायी। सोते वक्त न कभी एक कहानी सुना पायी उसे, खाने के बाद न कभी अपने आँचल से उसका मुँह पोंछ पायी, न कभी किसी बात से डर के उसके आँचल में मुँह छुपाया चीकू ने। कहाँ वो उसके शरारत को झेली?'' सोचने लगी झुम्पा।

''ऐसे मुँह लटका के क्यों बैठ गयी? मेरी बातें सुनकर बुरा लगा क्या बेटी? ऐसे ही मैंने बोल दिया। सोचा, तू तो यहाँ ज्यादा रहती नहीं। अभी आयी तो बहुत दिनों के बाद आयी। लगभग एक साल हो गया, तुम घर नहीं आयी थी। इसलिए ये लड़का ज्यादा शरारती हो रहा है तुझे देखकर।''

''नहीं माँ! बिल्कुल भी आपकी बातों से नाराज नहीं हूँ मैं। आपको छोड़कर इस दुनिया में और कौन है हम माँ-बेटे का जो आपकी बातों से नाराज हो जाऊँगी? आपने हम दोनों को जैसे सँभाला, न जाने क्या हो जाता अगर आप न होतीं! मेरे बच्चे को कहाँ घर मिलता? थोड़े नींद के लिए कहाँ मिलती उसे गोद की गर्मी? कौन उसे इतनी प्यार से समझाता जब वो रोता? कौन उसके आँसू पोंछता अपने आँचल से? नाटक में कितनी बार माँ का किरदार निभाती हूँ मैं! कितने सारे बच्चों को लाड़-प्यार से गोद में लेकर लोरी सुनायी, हाथ फैला कर चाँद दिखा के समझाया उन्हें। रोते हुए कितने बच्चों के आँसू पोंछा है अपने आँचल में। और बच्चों के आँसू पोंछते-पोंछते कितनी बार अपने आँसू मिलकार दर्शकों को समझाया बच्चे के लिए माँ का आँचल क्या होता है? बार-बार दर्शकों को रुलाती रही अपने सुन्दर अभिनय से। और ढेर सारी तारीफ समेटती रही दर्शकों से। पर क्या कर पायी मैं अपने बच्चे के लिए? कभी वो रोता तो ना मैं उसका आँसू पोंछ पायी अपने आँचल से, न कभी उसके पास बैठकर उसके बदन से धूल पोंछ पायी। शरारती होने पर न उसे समझा पायी, न उसे गोदी में भरकर उसके साथ चिपक कर सो पायी।'' साड़ी के आँचल को मुँह में दबा लिया झुम्पा ने। आँखों से आँसू बहते जा रहे थे।

''बस कर बेटी! रो मत! बहुत रो ली जीवन में। और कितना रोयेगी तू? तू कहाँ मजे से घूम रही है? थोड़े पैसे कमाने के लिए घर छोड़कर, बच्चे को छोड़कर, कहाँ-कहाँ घूमना पड़ रहा है तुझे! कितनी तकलीफ होती होगी तुझे, क्या मुझे मालूम

नहीं बेटी? मंच और नाटक, और अगर ये नहीं तो टीवी पे नाटक! कहाँ तुम माँ-बेटे मिल पाते हो? ऊपर से मेरा बोझ।''

''ऐसे क्यों बोल रही हो माँ? भला आप बोझ क्यों होंगी?''

''और नहीं तो क्या? जिस पर बोझ होना था, जिसको मेरी जिम्मेदारी उठानी थी, जिस पर भरोसा कर रही थी, वो तो गया अपने रास्ते। एक बार पीछे मुड़कर देखा क्या कि कैसे जियेगी विधवा माँ? एक बार सोचा, कैसे शादी करेगी बिन बाप की छोटी बहन की? न सोचा तेरे पेट में बढ़ते हुए बच्चे बारे में। किसी लड़की के साथ नाटक किया और उसी के साथ चला गया। तू नहीं होती तो हम माँ-बेटी की हालत क्या होती बोल? वही नाटक मेरा बेटा कर रहा था, और वही नाटक करने तू भी गयी। पर उसने क्या किया और तूने क्या किया। दिन-रात, महीनों-सालों मेहनत करके पैसा कमाया, ननद की शादी करवायी, मेरे बारे में सोचा, बच्चे के बारे में सोचा, घर चलाया।''

चुपचाप बैठी थी झुम्पा! अपनी सासू माँ की बातें कान से होकर उसके अन्दर चली जा रही थीं। फैल रही थीं बदन के कोने-कोन तक। हाँ! उसके जीवन खत्म होते वक्त इस नाटक ने ही उसे पुन: जीवित किया था। कहाँ-कहाँ ढूँढ़ती वो नौकरी? साथ में बच्चा, सास, ननद की जिम्मेदारी। क्या करती वो! कैसे सँभालती अपना परिवार! मन ही मन सर झुका के माता रानी का स्मरण कर रही थी झुम्पा।

''बहुत मेहनत कर ली तूने। आगे और मेहनत करनी पड़ेगी तुझे। चीकू अब तक अपने पैरों पर खड़ा नहीं हुआ। साथ-साथ मैं बूढ़ी सास। सेहत का ख्याल कितना कुछ! आगे क्या होने वाला है, मालूम नहीं। चलो जो होगा सो होगा, तुम चिन्ता मत करो बेटी। अच्छा-बुरा जो भी हो, वक्त मिला है अभी थोड़ा आराम कर ले बेटी।''

''जी माँजी! आप सही बोल रही हो। चिन्ता मत कीजिये, ये दिन हमेशा नहीं रहेंगे। ईश्वर पर भरोसा रखिये। माता रानी की कृपा से सबकुछ ठीक हो जायेगा, चाहे जितना समय लगे। फिर सबकुछ सही चलेगा। फिर जाना होगा मुझे; और जाऊँगी भी। नहीं जाऊँगी तो कैसे चलेगा? है कौन हमारे आगे-पीछे? हाँ! सोचने पर थोड़ी खुशी भी लगती। न ये कोरोना महामारी आती न ऐसे सबकुछ बन्द होता। इसलिए सालों बाद घर में रहने का अवसर मिला मुझे। मेरे-जैसे और कितनों को भी कहाँ समय मिलता था बच्चों के साथ रहने के लिए? अच्छा-बुरा कुछ भी हो, घर में रहने को थोड़ा वक्त मिला तो बच्चे के आसपास रहकर उसकी सारी शरारतें झेलूँगी मैं। जैसे भी हो, कल को फिर जाना पड़ेगा मुझे!'' आँखों से आँसू पोंछती हुई झुम्पा।

इति सामन्त
जन्म : 1970 ओड़िसा।
ओड़िया की ख्यातिलब्ध कथाकार और सम्पादक। ओड़िया की दो मासिक पत्रिकाओं– कादम्बिनी और कुनिकथा (बाल-पत्रिका) की सम्पादक। फिल्मों और टेलीविजन के लिए भी लेखन।

''माँ! आँ...'' झुम्पा के पास आकर मुँह खोल के दिखाया चीकू ने।

''मेरा प्यारा बेटा! शोना बेटा।'' चीकू को गोद में लेकर लाड़ करती हुई उसके मुँह में निवाला दे दिया झुम्मा ने।

''माँ! मेरे भागने से तुम रोई? और नहीं भागूँगा।'' अपने नन्हें हाथों से आँसू पोंछते हुए बोला चीकू।

''नहीं बेटा! में क्यों रोऊँगी? तू मेरी गोद में होता है तो मैं सिर्फ हँसूँगी।''

चीकू को और ज्यादा प्यार से जकड़कर बोली झुम्पा। अपने आँचल से मुँह पोंछ दी उसका।

क्रीं...क्रीं...

फोन बजने लगा।

घूमकर देखा झुम्पा ने। फोन को पास खींच लायी।

''हेलो...!''

''हेलो... झुम्पा! ठीक हो ना? मैं वीरेन्द्र बोल रहा हूँ।''

''जी सर! नमस्ते।''

''क्या कर रही थी?''

''कुछ नहीं, ऐसे ही बेटे के साथ थोड़ा...''

''अच्छा है, अच्छा है! बेटे को लाड़ कर लो, आगे फिर समय नहीं मिलेगा। हाँ! एक बड़ी खुशखबरी है झुम्पा।''

''क्या है सर?''

''कोरोना पर चार बढ़िया प्लॉट मिला है। कहानी लिखना शुरू करवा दिया है मैंने। बेटे के साथ खेल-कूदकर कुछ और दिन बिता लो। लॉकडाउन खुलते ही हमें पहले रंगमंच पर उतरना है। तैयार रहना झुम्पा।''

कट गया फोन।

अपने हाथों में रखे फोन को देखती रह गयी झुम्पा।

फिर कसके जकड़ लिया चीकू को अपने आँचल में।

नीलिमा निलय,
421/2359, पद्मवती विहार,
सैलेश्री विहार, भुवनेश्वर-751021 (ओड़िसा)

❑

वस्तुपरक

दृष्टिकोण-2 : या आलम आईना है उस यारे-खुदनुमा का

विनोद तिवारी

*कथा का कहानी बन जाना, अमर हो जाना है। हर मनुष्य की यही तमन्ना होती है कि वह कहानी बन जाये और एक किरदार के रूप में अमर हो जाये। लैला और मजनूँ, रोमियो और जूलियट, लहना सिंह और सूबेदारनी ऐसे ही मनुष्य रहे होंगे, जो किरदार के रूप में अमर हो गये। कथा या कहानी मानव-सभ्यता की सबसे आदिम विधा है। तब से, जब से वह गीतों, कविताओं, स्मृतियों, आख्यानों, गप्पों आदि में तरह-तरह से व्यक्त-अभिव्यक्त होती रही है– वाचिक से लेकर लिखित तक। इस अर्थ में अगर यह कहा जाये कि अपने कहन में सभी कलाएँ आख्यानमूलक हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। आज भी दुनिया-भर में सबसे अधिक पाठक फिक्शन के ही हैं। उसमें भी उपन्यास के सर्वाधिक। हिन्दी में भी अगर आँकड़े जुटाये जायें तो उपन्यास ही सबसे अधिक पढ़ा जाता है। परन्तु, दुर्भाग्य से हिन्दी में कथा-संरचना अथवा उपन्यास-कला पर 'दि आर्ट ऑफ नॉवेल', 'आस्पेक्ट ऑफ नॉवेल' अथवा 'दि क्राफ्ट ऑफ नॉवेल' जैसी कोई एक किताब नहीं है। सुपरिचित आलोचक-सम्पादक **विनोद तिवारी** के साथ 'वनमाली कथा' में यह स्तम्भ हम इसी भरोसे के साथ प्रकाशित कर रहे हैं कि कथा-संरचना और उसकी कला के सभी जरूरी पहलुओं पर किस्तों में विचार और बहस हो सके।*

पिछले अंक में दृष्टिकोण के सम्बन्ध में 'सर्वज्ञ कथावाचक' (ओम्नीसिएंट नैरेटर) की कथा में उपस्थिति और कथावस्तु पर पड़ने वाले प्रभावों को, दो बहुचर्चित कृतियों 'शेखर एक जीवनी' और 'कितने पाकिस्तान' के सहारे, अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने का प्रयत्न किया गया। यह देखा गया कि प्रथम पुरुष की शैली में लिखी वे कथाएँ, जिनमें कथालेखक 'सर्वज्ञ' की तरह पेश आता है और जो प्रमुख पात्र या पात्रों के जरिए कथा में किसी भी 'देश-काल' में किसी भी समय और स्थान में, कहीं भी उड़ान भरने में सक्षम दिखता है, 'सर्वज्ञ कथावाचक' की श्रेणी में आती हैं। इन कथाओं में कथावाचक दर्शाता है कि दुनिया में मौजूद सभी तरह की सूचनाओं और ज्ञान से वह अवगत है। इस शैली में वह पाठक को इस बात की प्रतीति कराता है कि वह सबकुछ देख रहा है और वो बातें भी वह जानता है जो पात्र नहीं जानते हैं। उसकी सीमा से कुछ भी बाहर नहीं है, यहाँ तक कि वह यह भी चित्रित करता हुआ दिखता है कि उसके प्रत्येक पात्र कैसे सोचते और महसूस करते हैं। लेकिन, इस शैली की मुश्किल यह है कि कथावाचक अपने पात्रों से जुड़ नहीं पाता है। पात्र उसके विचार भारवाहक उपकरण-भर होकर रह जाते हैं। ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्या कथावाचक (और कथालेखक) की भूमिका अपनी कथा में मात्र एक नैरेटिव एजेंट-भर की होती है या उससे अधिक? हम जानते हैं कि कहानी और उपन्यास में कथाकार केवल नैरेटिव एजेंट-भर नहीं होता, बल्कि वह अपनी रचना में उपस्थित और किसी न किसी रूप में शामिल रहता है। जब हम कोई कहानी अथवा उपन्यास पढ़ते हैं, वह चाहे प्रथम पुरुष में लिखा गया हो या अन्य पुरुष में, उसमें लेखक की एक अन्तर्निहित छाप और छवि होती है, क्या इससे इंकार किया जा सकता है? लेखक की इस मौजूदगी को आलोचना ने एक पद दिया– अन्तर्निहित लेखक (इम्प्लायड ऑथर)। असल में इस इम्प्लायड ऑथर को 'अनुभवाश्रित लेखक' (इम्पीरिकल ऑथर) का ही आभासी रूप कह सकते हैं। सातवें दशक में, विशेषकर संरचनावादियों द्वारा 'इम्पीरिकल ऑथर' की जगह इम्प्लायड ऑथर पद को प्रचलित किया गया। सन् 1961 में, वेन सी. बूथ ने 'द रेटोरिक ऑफ फिक्शन' नामक अपनी पुस्तक में इस पद

का पहली बार उपयोग किया है। बूथ शिकागो विश्वविद्यालय, अमेरिका में अँग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर थे और 'शिकागो स्कूल' के आलोचक थे। उक्त पुस्तक में उन्होंने यथार्थवाद के बरक्स 'कला' और 'शुद्ध कला' के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। वह 'पाठ' में अन्तर्निहित अर्थ को ही महत्त्व देते हैं। ठीक उसी तरह से जिस तरह नयी समीक्षा के समीक्षकों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जो 'पाठ' में है, हम केवल उसके बारे में ही बात कर सकते हैं, किसी बाह्य दृष्टि या विचार को उस पर आरोपित नहीं कर सकते। परन्तु, हम जानते हैं कि कालान्तर में नयी समीक्षा की यह धारणा आगे तक नहीं चल सकी। क्योंकि इस धारणा में लेखक के विचारधारात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ 'पाठक' के महत्त्व को भी नजरअन्दाज कर दिया जाता है। रोलाँ बार्थ जैसे उत्तरआधुनिक विचारक ने तो 'पाठ' को इतना महत्त्व दिया कि 'बुक' की जगह 'टेक्स्ट' पद रूढ़ हो गया। वह रोलाँ बार्थ ही थे जिन्होंने 'लेखक की मृत्यु' की घोषणा की। कहानी के सम्बन्ध में रोलाँ बार्थ का मानना है कि 'कहानी वस्तुतः वाक्य संरचना-भर है।' किन्तु बार्थ की इस उद्भ्रान्ति का जवाब दिया है फ्रांसीसी दार्शनिक ज्याँ पॉल रिकोयूर ने। रिकोयूर का कहना है कि अगर कहानी 'वाक्य संरचना-भर है' तो 'प्रत्येक वाक्य एक तरह के स्पीच एक्ट के रूप में ही संरचित होता है।' ठीक वैसे ही जैसे 'डिस्कोर्स' और 'हिस्टोरिकल स्पीच एक्ट'। रिकोयूर का मानना है कि कहानी (या किसी भी विधा का लेखन) केवल घटनाओं का कथन-भर नहीं, बल्कि वह इरादतन की गयी अभिव्यक्ति (इंटेंशनल एक्सटेरिअराइजेशन) होता है।

दरअस्ल, बूथ का इम्प्लायड ऑथर सम्बन्धी सिद्धान्त मूलतः हेनरी जेम्स के 'दृष्टिकोण' सम्बन्धी सिद्धान्त के विरोध में लाया गया था। पर बूथ का यह तर्क कि– अन्तर्निहित लेखक या इम्प्लायड ऑथर वास्तविक लेखक नहीं होता, बल्कि नैरेटिव एजेंट-भर होता है, शुद्ध कलावादियों को भी शायद स्वीकार न हो? क्योंकि कथावाचक, कथालेखन में उसी तरह से नैरेटिव एजेंट-भर नहीं होता, जैसा कि सत्यनारायण भगवान का कथावाचक या श्रीमद्भागवत कथा का वाचक अथवा रामकथा या इसी तरह की अनेक कथाओं के कथावाचक होते हैं। हालाँकि, पूरी तरह से इन कथाओं में भी, कथावाचक विशुद्ध रूप से नैरेटिव एजेंट-भर नहीं होता। चूँकि, हमेशा से ही कथा केवल कहन-भर नहीं, बल्कि एक परफार्मिंग आर्ट भी रहा है (इस पर 'कथोपकथन' वाली किस्त में विस्तार से विचार किया गया है)। अतः कथावाचक देश-काल के अनुरूप कथा-प्रस्तुति की युक्तियों के लिए तरह-तरह के जो प्रयोग करते हैं, उससे न केवल कथा प्रभावी ढंग से सम्प्रेषित होती है, बल्कि व्याख्याओं के लिए जो समसामयिक उदाहरण, दृष्टान्त आदि का कथावाचक द्वारा उपयोग किया जाता है, वह किसी न किसी खास दृष्टि और दृष्टिकोण के तहत किया जाता है। अतः कहन की वाचिक परम्परा की तरह से लिखित 'पाठ' भी किसी के द्वारा, किसी के लिए, किसी या कुछ चीजों के बारे में होता है, जो मनुष्य के भौतिक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक जीवन की अवस्थाओं से विकसित होता है। जिसका सन्दर्भनाल जीवन और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान की स्थितियों और दशाओं से जुड़ा होता है। सामाजिक आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में, उक्त तीनों तत्त्वों में से अगर किसी एक को भी हम नजरअन्दाज कर देते हैं, तो हम पाठ को भ्रान्तिपूर्ण बना देते हैं जिससे दृष्टिकोण की 'केन्द्रिकता' भी प्रभावित होती है। चूँकि वाचिक की तुलना में, लिखित 'पाठ' बिखरे हुए भिन्न वर्गों व समुदाय के पाठकों तथा अज्ञात पाठकों से लेकर भविष्य के सम्भावित पाठकों तक को सम्बोधित होता है, इसलिए उसमें इन तीनों की दृष्टिपूर्ण आपसी संगतियों के साथ-साथ सामाजिक अवस्थाओं के तथ्य-सत्य के आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित होता है।

'अन्तर्निहित लेखक' की उक्त भूमिका के सम्बन्ध में 'सर्वज्ञ कथावाचक' पर तो बात हो चुकी है। उसी क्रम में 'सीमित कथावाचक' (कथा में सीमित अथवा नियन्त्रित उपस्थिति रखने वाले लेखक) और 'निर्लिप्त कथावाचक' की भूमिका और महत्त्व पर विचार और इन दोनों की कथा में उपस्थिति और कथा पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख जरूरी है। 'सीमित सम्पृक्त कथावाचक' बाहर से, एक तय दूरी बनाकर अपनी रचना के साथ होते हैं और अपने पात्र/पात्रों के जरिये रचना में उपस्थित रहता है। ऐसे लेखक कोशिश करके रचना में अपनी उपस्थिति को अत्यन्त सीमित या कहें प्रतिबन्धित करते हैं, अपने को प्रकट नहीं होने देना चाहते हैं। तीसरी श्रेणी 'निर्लिप्त कथावाचक' की है। कथा वर्णन की इस शैली में कथावाचक या लेखक एक बाहरी की भूमिका में कहानी सुना रहा होता है। इस तरह की कथाओं में यह लगता है कि घटनाओं, पात्रों आदि का विकास, उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया बिना किसी नियन्त्रण के, स्वाभाविक और स्वतः हुआ है। इस शैली के फिक्शन में पाठक अपनी भागीदारी और भरोसा अधिक पाता है। वह पात्रों, घटनाओं, स्थितियों-परिस्थितियों से अपनी सम्बद्धता और संवादात्मकता आनुपातिक दृष्टि से अधिक महसूस करता है। ऐसे कथावाचकों को 'विश्वस्त कथावाचक' कहा गया है। इस शैली में प्रायः 'अन्य पुरुष' या थर्ड पर्सन को कथा वर्णन

का सबसे अधिक मान्य और प्रचलित तरीका माना गया है। लेखक इस शैली में कथा को अधिक नाटकीय और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण प्रदान कर सकता है। यह काफी हद तक किसी फिल्म या नाटक देखने जैसा अनुभव होता है। इस शैली में वर्णित कथा को, पाठक अपने इच्छित तरीके से समझने और उनकी व्याख्या करने में अपने को अधिक है उपयुक्त पाता है। अन्य पुरुष की शैली में लेखक क्रिया, प्रतिक्रिया, विचारों, दृष्टियों, इरादों, उद्देश्यों आदि के लिए चरित्र/चरित्रों पर ही निर्भर करता है, उन्हीं के जरियक सबकुछ संघटित और वर्णित और चित्रित होने देता है। इस प्रविधि में लेखक अनिवार्य रूप से चरित्र के दिलो-दिमाग की वह खिड़की होता है, जिसके माध्यम से पाठक सबकुछ देखता है। इस प्रविधि में अन्य पुरुष की जगह प्रथम-पुरुष (फर्स्ट पर्सन) में लिखी कहानियों अथवा उपन्यासों में यह देखा गया है कि लेखक मुख्य चरित्र के पीछे-पीछे चलता है, उसको संचालित और नियन्त्रित करता है। वह हर एक चीज जो मुख्य चरित्र महसूस करता है, जानता है, सोचता है, लेखक के माध्यम से फिल्टर होकर प्रस्तुत होती है। यह कथा कहने की यह सबसे अन्तरंग शैली है, इसमें कथावाचक पाठक को एक अपनापे के साथ अपने बगल में बिठाता है– आओ, मेरे पास बैठो। मैं (कथावाचक और प्रकारान्तर से लेखक) जैसा अनुभव करता है, वैसा तुम भी महसूस करो। इस शैली में 'मैं' कथावाचक के जरिये पाठक पात्र/पात्रों की दुनिया में पहुँचता है। हालाँकि, 'दृष्टिकोण' के हिसाब से प्रथम-पुरुष का लहजा सीमित और आरोपित हो सकता है, क्योंकि प्रमुख चरित्र लेखक के ही 'दृष्टिकोण' का आत्म बन जाता है।

अब सवाल यह उठता है कि एक लेखक कैसे यह तय करे कि उसे फर्स्ट पर्सन में कहानी लिखनी है या थर्ड पर्सन में? तो यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप किस मूड, विचार और दृष्टि से कहानी लिख रहे हैं। यदि आप अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से, मुख्य पात्र अथवा नायक में उस व्यक्तिगत दृष्टिकोण को स्थापित करते हुए, किसी कहानी को कहना चाह रहे हैं, तो आप प्रथम-पुरुष शैली का उपयोग करना चाहेंगे। यह लेखन का सबसे अन्तरंग प्रकार है, क्योंकि यह काफी निजी होता है। यदि आप किसी कहानी को पात्र/पात्रों के माध्यम से, उसकी अस्मिता और पहचान, उसके ज्ञान और अनुभव के परिप्रेक्ष्य में, सबकुछ स्वाभाविक न कि आरोपित ढंग से व्यापक दृष्टिकोण के साथ रचना में ले आना चाहते हैं, तो अन्य-पुरुष की कहन शैली अधिक मददगार होगी। परन्तु, लेखक की मौजूदगी कहन की दोनों ही शैलियों में बनी रहती है। वैयक्तिक शैली में उसकी उपस्थिति प्रत्यक्ष हो जाती है किन्तु निर्वैयक्तिक शैली में वह परोक्ष बनी रहती है। कभी-कभी वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक का भेद मिट जाता है। उर्दू शायरी, विशेषत: मीर का उदाहरण लिया जा सकता है। आशिक और माशूक का भेद वहाँ मिट जाता है। आशिक ही माशूक की जबान बन जाता है– 'शोखी तो देखो आप ही कहा आओ बैठो मीर/पूछा कहाँ तो बोले कि मेरी जबान पर।' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कुँवर नारायण की काव्य पंक्तियाँ हैं– मैं अपनी कहानी में नहीं हूँ/मैं केवल उसका गल्पकार हूँ। कवि की इन काव्य-पंक्तियों का अगर कोई केवल अभिधात्मक अर्थ ही लेना चाहे, तब भी निहितार्थ स्पष्ट है। जो लेखक है, वह अपनी रचना में उसी रूप में नहीं होता जिस रूप में उसने अनुभव किया होता है। बल्कि रचना-प्रक्रिया के दौरान ही उसका 'मैं' रूपान्तरित होकर 'वह' हो जाता है। अत: रचना में विशेषत: कथालेखन में 'मैं' के रूप में लेखक का अन्तर्धान हो जाता है, पर 'वह' के रूप में उसकी मौजूदगी अपने सृजित पात्र/पात्रों के जरिये बनी रहती है। इसलिए उक्त पंक्तियों में लेखक की अपनी रचना से निर्लिप्तता का कोई अर्थ हो सकता है तो इतना ही भर कि वह 'व्यक्ति' या 'विचारक' बनकर नहीं बल्कि 'विवेक' और 'अनुभूति' का गल्पकार बनकर मौजूद रहता है और यह गल्पकार एक लेखक

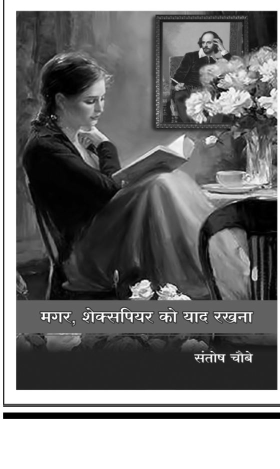

आईसेक्ट पब्लिकेशन

मगर शेक्सपियर को याद रखना
कहानी-संग्रह
संतोष चौबे
मूल्य 250 रु.

संतोष चौबे समकालीन हिन्दी कथा-जगत के ऐसे विरले नागरिक हैं, जिनके पास विषय और शिल्प के वैविध्य के साथ, भाषा के अवचेतन में छुपे सत्य को कलात्मक दक्षता के साथ अपनी कहानी में उत्कीर्ण करने का प्रामाणिक कौशल है। सारे यथार्थ मानव-कल्पना से छोटे हैं और कल्पना के अधिकारों को संतोष चौबे का कथाकार छीनता नहीं, बल्कि उसे विटगेंशटाइन की शब्दावलि में 'मौज में पूर्ण अवकाश और आकाश' भी देता है। 'कथा-लोक' की आकाशगंगा में, संतोष चौबे की उपस्थिति उस नये उपग्रह की-सी है, जो अभी और-और स्पेस की खाक छानता हुआ, नयी छवियों को निरन्तर भेजते रहने वाला है। यह कथा-संग्रह, उत्तर-आधुनिक नहीं, उत्तर-मानव के मन का एमआरआई है, जो लेखक की गहरी आत्म-सजग भाषा में, सच को निर्भीकता के साथ दिखाता है।

–प्रभु जोशी

के रूप में अपने पात्रों, घटनाओं, उनसे व्यक्त होने वाले विचारों और दृष्टिकोणों के जरिये ही पहचाना जाएगा। अत: लेखक का दृष्टिकोण चरित्र/चरित्रों से जाहिर होना चाहिए। कथा में चरित्र ही लेखकीय दृष्टिकोण के परावर्तक होते हैं। इसी अर्थ में 'किरदार' वाले किस्त में मैंने कहा था कि उन्हीं पर सारे मसाइब का बोझ होता है। विश्वस्त कथावाचक अपनी रचना में चरित्र के माध्यम से ही प्रस्तुत होते हैं। शमशेर की कविता 'बात बोलेगी' की तरह : 'बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी बात ही।' 'बात' से ही 'सत्य का रुख' जो कि 'समय का रुख' है, सत्यापित होने की बात। किसी भी रचना में 'दृष्टिकोण' और क्या है, इस 'सत्य' और 'समय' के रुख को पहचानने और रचने के? किसी भी रचना में रचनाकार का दृष्टिकोण साफ तौर पर सतह पर ही झलक जाए या लेखक के इकहरे वर्णन से ही साफ हो जाए, साहित्यिक लेखन में इसे महत्त्व नहीं दिया जाता। ई.एम. फार्स्टर का कहना है कि– ''उसका (रचनाकार का) विषय यूनिवर्स, या कोई सार्वभौमिक वस्तु-सत्य हो सकता है, लेकिन एक चतुर और सिद्ध लेखक अनिवार्य रूप से 'यूनिवर्स' के बारे में कुछ भी नहीं कहता है।'' वास्तव में ऐसी कथाएँ दृश्य-बिम्ब और उससे बनने और उभरने वाली अनेक अर्थ छवियों को जाने-अनजाने प्रस्तुत करती हैं। एक-दो उदाहरण लेते हैं। यह उदाहरण डी.एच. लॉरेंस के उपन्यास 'वुमेन इन लव' (1920) से है। यह उपन्यास 'दि रैनबो' (1915) का अगला खंड माना जाता है। उपन्यास में, एक व्यक्ति चाँदनी रात में झील के किनारे बैठा है। पानी पर पड़ने वाले चाँद के बिम्ब पर वह निरन्तर पत्थर मार रहा है। एक और उदाहरण लेते हैं। मनोज रूपड़ा की कहानी 'आखिरी सीन' का यह शुरुआती अंश भी देखना चाहिए– ''वर्ली सी फेस की एक बहुमंजिली इमारत की 18वीं मंजिल के एक फ्लैट की समुद्र की ओर खुलने वाली बालकनी में ह्वील चेयर पर बैठे एक वयोबृद्ध फिल्मकार रोज की तरह आज सुबह भी समुद्र को देख रहे हैं। लहरों का बहुत दूर-दूर से आना, किनारे से टकराकर बिखरना, फिर अपनी खोई हुई ताकत को समेटकर वापस लौटना और आती हुई लहरों से लिपटकर बेवजूद हो जाना, आती-जाती लहरों का ये क्षणभंगुर खेल अजल से चलता आ रहा है और कयामत तक चलता रहेगा। वे उस खेल को नहीं, उसमें समायी चिरन्तनता को देखते हैं। वे सिर्फ बादलों से घिरे विस्तृत आकाश, उगते हुए सूर्य, उड़ते हुए परिन्दों या तैरती हुई नावों को नहीं देखते बल्कि उन सबके एक साथ एक ही परिदृश्य में होने से निर्मित पूर्णता को देखते हैं।'' इन दोनों उदाहरणों में, एक में चाँद के बिम्ब को लगातार पत्थर मारने की क्रिया को, दूसरे में लहरों के वजूद-बेवजूद होने की प्रतीकात्मकता को पढ़ना और देखना और उसके जरिये इन दोनों चरित्रों की मानसिक अवस्था के साथ लेखकीय दृष्टिकोण की परख का महत्त्व है। आज के कुछ कवि कहानी लेखन के क्षेत्र में संजीदगी से लेखन करते हुए देखे जा सकते हैं– जैसे देवीप्रसाद मिश्र, कुमार अम्बुज आदि। ऐसे लेखक कहानी में अतुकान्त काव्यात्मक गद्य, छन्दों की तरह से बजते शब्द, वेध्य और विवादी स्वर के सहारे देश-काल को रचने की काव्यात्मक कोशिश करते हैं। ऐसी कहानियों में पात्र, घटनात्मकता, वर्णन, कथा-संरचना आदि का उतना महत्त्व नहीं होता जितना कि समय की नब्ज को चित्रों, बिम्बों और फैंटेसी में पकड़ना और व्यक्त करना। पर हैं यह कौंध ही, बिम्बों के छोटे-छोटे कतले। इसलिए इनमें वर्णन का नहीं बल्कि उस 'कहन' का महत्त्व होता है जिससे अपने समय-समाज को देखने-परखने की लेखकीय चिन्ता और दृष्टिकोण की शिनाख्त सम्भव होती है। 'वस्तु और रूप' पर लिखते हुए मुक्तिबोध कहते हैं कि ''बाह्य जीवन-जगत के प्रत्याघात से विचलित होकर जब अन्तर्तत्त्व-व्यवस्था का अंगभूत कोई मनस्तत्व, एक तीव्र लहर के रूप में उत्थित होकर, अभिव्यक्ति के लिए आतुर हो उठता है, तब वह कला के वस्तु-तत्त्व के रूप में प्रस्तुत हो जाता है।'' इसमें आगे वे कला के 'वस्तु' बनने की प्रक्रिया का उल्लेख करते हैं और 'मन की आँखों' की भूमिका को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं। अत: किसी रचना में रचनाकर के 'दृष्टिकोण' की पहचान उस 'मन' की पहचान है, जिससे 'देखना' सम्भव होता है। अब इस देखने में जो आँख है और 'मनन' में जो मस्तिष्क काम कर रहा है, उसका निर्माण और पोषण जिस परिवेश और प्रयत्न से तैयार होता है, वह महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिए पाठकों के अलग-अलग स्तर और वर्ग की बात रचनाकार करते रहते हैं (रचना और पाठक वाली किस्त में इस पर विस्तार से विचार किया जाएगा)। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक रेमंड विलियम्स के विचार को देखना उचित होगा। रेमंड विलियम्स ने साहित्य और संस्कृति के विकास और मनुष्य के उससे स्थापित होने वाले सम्बन्ध के बारे में तीन प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित किया है :

1. यह देखना जरूरी होता है कि मानव मस्तिष्क के विकास की अवस्थाएँ कौन-कौन सी रही हैं?

2. इस विकास की प्रक्रियाएँ अर्थात् सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ कैसी रही हैं?

3. इन प्रक्रियाओं/गतिविधियों को पोषित करने वाला साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण कैसा रहा है?

वस्तुतः दृष्टिकोण भौतिक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक– इन तीनों स्थितियों के साथ विकसित वह घटक है जिसके आलोक में वर्णित स्थितियों, घटनाओं और पात्रों को प्रस्तुत किया जाता है। अनुभव की दोहरी प्रक्रिया से गुजरना। यानी एक बार कवि के रूप में रचने का अनुभव और दूसरी बार स्वयं एक पाठक या दर्शक बनकर उसे दूसरे की कृति के रूप में समझने का अनुभव। वास्तव में 'हूँ' अपनी कहानी या रचना के भीतर उपस्थित होना है, जिसके लिए अलग से कोई सफाई देने की जरूरत नहीं है। इसी तरह अपनी कहानी में 'नहीं' होने का मतलब अपनी रचना को रचना के दायरे से बाहर खड़े होकर देखना है। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब जीवन और जीवनानुभूति एक-दूसरे से सम्पृक्त हों। केवल 'संज्ञान' ही अनुभव बन जाए तो फिर दृष्टिकोण सतह पर तैरता हुआ भाव-मात्र ही होगा। कुँवर नारायण की कविता है :

जिये हुए से कहीं ज्यादा/ देखा सुना और पढ़ा हुआ/ शामिल हो गया है जीवन में/ जैसे एक प्याला चाय के साथ/ सुबह का अखबार।

यह सच है कि कथालेखन, वाचिक सम्प्रेषण में होने वाले आदान-प्रदान की भौतिक बाधाओं से, तात्कालिक और प्रत्यक्ष रूप से एक हद तक मुक्त होता है। इसलिए एकदम से सामने वाले को ध्यान से सुनने, तवज्जो देने या न देने की चिन्ता से भी वह मुक्त होता है (हालाँकि पाठक के अदृश्य दबाव से वह मुक्त नहीं होता)। लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि वह बिना किसी तर्क, दृष्टि, उद्देश्य आदि के केवल भावप्रवण अभिमत-भर होगा। अगर लेखक ऐसा करता है, तो वह अविश्वसनीयता का शिकार हो जाएगा, उसकी रचना में व्यक्त अभिमत लफ्फाजी-भर होकर रह जाएँगे। इसलिए कथरचना में एक कथन के बाद दूसरा कथन परस्पर सम्बन्धित, क्रियाशील और प्रतिक्रियाशील होते हैं, उनमें एक द्वन्द्वात्मक तारतम्य होता है, कोई भी कथन स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर नहीं होता है। प्रत्येक कथन कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में मानव कृत्यों की सामाजिक-ऐतिहासिक श्रृंखला की किसी न किसी कड़ी से जुड़ा होता है। वास्तव में, इस सामाजिक-ऐतिहासिक श्रृंखला की द्वन्द्वात्मकता के रूप में किसी कहन या चित्रण से उद्घाटित सत्य वस्तुतः रचना और सम्बन्धित रचनाकार के 'दृष्टिकोण' का आईना होगा। वह दृष्टिकोण ही है जो घटना को केवल घटना के रूप में नहीं, बल्कि उसके मानवीय कारणों की मूल निर्मितियों की पहचान के साथ प्रस्तुत करता है। लेकिन कई बार यह देखा गया है लिखित 'पाठ' में किसी शब्द विशेष के प्रयोग से लेखक के इरादे पर, उस रचना के उद्देश्य के विपरीत जाकर सवाल किया जाता है और उसे लेखक का सचेत मन्तव्य मान कर उसके वर्ग-चरित्र, किसी खास वर्ग के प्रति उसकी दृष्टि की आलोचना होने लगती है। जबकि अपने उद्देश्य में उस पूरी रचना में लेखक का दृष्टिकोण उसी वर्ग के व्यापक हित समर्थन में होता है। मतलब, यह आरोपण अपने सभी सिरों और सन्दर्भों से मुक्त एक 'शब्द' और उस शब्द या पाठ से ध्वनित स्वतन्त्र अर्थ का आरोपण होता है। इसे उत्तर-आधुनिक ढंग से आंशिक 'पाठ' के हवाले से, एक लेखक की मंशा के बारे में असत्यापित धारणाओं पर आधारित एक गलत आरोपण कहा जाता है। जैसे, प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' में आये इस वाक्य– 'चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम'– को लेकर दलित आलोचकों की यह आपत्ति कि प्रेमचन्द ने अपनी सवर्ण मानसिकता के चलते दलितों की एक जाति का अपमान करने के उद्देश्य से जानबूझकर यह लिखा है, को देखा जा सकता है। इसे ही फ्रांसीसी दार्शनिक पॉल रिकोयूर ने लेखक के मानवीय इरादे की सचाई जाने बिना अथवा लेखकीय दृष्टिकोण को समझे बिना, केवल आंशिक पाठ के हवाले से किसी खास उद्देश्य के चलते 'सत्वारोपण करने की भ्रान्ति' (फैलेसी ऑफ हाइपोस्टैटाइजेशन) कहा है। उसका कहना है कि इस तरह के 'भ्रान्तिकरण' के पीछे विमर्शवादी आलोचना को पुष्ट करने वाला प्रमुख तत्त्व वह उत्तरआधुनिक ढंग है जो केवल 'पाठ' को ही लेखक का दृष्टिकोण मान लेने पर बनी सर्व-सहमति से उत्पन्न होता है। जबकि उस 'पाठ' से सम्बन्धित इस बात को नजरअन्दाज किया जाता है कि वह शब्द या कथन किसी सामाजिक संरचना की सामूहिक चेतना में जड़ जमाये पूर्वग्रह को उजागर करने और उनकी विडम्बनाओं को प्रकट करने के व्यापक परिप्रेक्ष्य और उद्देश्य के लिए भी लाया गया हो सकता है। 'कफन' कहानी का उक्त कथन मेरी समझ से इसी 'भ्रान्तिकरण' और 'आरोपण' का शिकार हुआ है। 'कफन' कहानी के उक्त वाक्य को अगर प्रेमचन्द की इच्छा का आक्षेप मान लिया जाए तो पूरी कहानी की सोद्देश्यता ही नहीं भंग होगी, बल्कि कहानी की वृत्ताकार संरचना भी टूट जाएगी और पूरा कथानक नष्ट हो जाएगा। क्या प्रेमचन्द सचमुच दलित वर्ग का अपमान करने के उद्देश्य से 'कफन' की रचना करते हैं या उस अपराजित सामाजिक स्थितियों-परिस्थितियों की, जिसमें माधव और घीसू जैसे लोग सर्वहारा होकर भी जीवन की विरूपता को किस कारण से जीने के लिए विवश हैं। 'दि आस्पेक्ट ऑफ नॉवेल' में ई.एम. फार्स्टर एक जगह कहते हैं– ''वैज्ञानिक अपने एक प्रयोग या आविष्कार में एक तथ्य-सत्य को पाने का लक्ष्य रखता है और यदि वह

उसे पा लेता है तो सफल हो जाता है। कलाकार अपनी कला में एक सत्य को पाने का लक्ष्य रखता और यदि वह 'भावनाओं' को जाग्रत कर देता है तो अपने लक्ष्य में सफल हो जाता है। एक वक्ता का उद्देश्य अपनी वक्तृता से भावनाओं को उभारना और उत्तेजित करना होता है और यदि वह इसे सम्भव कर लेता है तो वह सफल होता है। यह उन पुस्तकों के लिए भी सच है जिनकी योजना पहले से बनायी गयी है। लेखक यह अनुमान कर सकता है कि आग उसके कंकाल को भी छू सकती है, फिर भी उसकी चिन्ता शरीर की रचना है, माचिस की तीली का प्रहार नहीं।'' अब 'कफन' कहानी के उक्त कथन से एकदम उलट एक उदाहरण लेते हैं। 'कफन' के आसपास की ही रचना है 'गोदान'। इसमें पंडित मातादीन और सिलिया के सम्बन्ध से पाठक वाकिफ हैं। विवाद होने पर, धर्म भ्रष्ट होने की बात आने पर मातादीन सबकुछ को परे रखकर चमार रहना पसन्द करता है– ''मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ, जो अपना धर्म पाले वह ब्राह्मण और जो अपने धर्म (कर्तव्य) से मुँह मोड़े वह चमार।'' इस उदाहरण में प्रेमचन्द की संवेदना और प्रगतिशील चेतना पर किसी को शक नहीं हो सकता। परन्तु, इसे उस समय के हिसाब से ही नहीं, अपवादों को छोड़ दिया जाए तो आज के हिसाब से भी क्या वास्तविक माना जा सकता है? इस वास्तविक और आदर्श रचना के अन्तर के ही धरातल पर रचित एक दलित कहानी 'चमरवा' (रत्नकुमार सांभरिया) को लें। चमारों के गाँव में एकमात्र ब्राह्मण दरपन दास और उनके परिवार के साथ चमारों के उदात्त व्यवहार, सहयोग और सामाजिक दायित्वबोध की आदर्श कहानी है। दरपन दास की पत्नी नोना की मृत्यु के समय पूरे गाँव का सहयोग देखने लायक है। कहानी के शुरू में ही आये इस वाक्य को 'कफन' के उक्त वाक्य के साथ रख कर पढ़ें– ''रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह आठ सौ घरों के इस भरे-पूरे गाँव में चमरवा बाभन का एक घर है।'' अब इस पद 'चमरवा बाभन' को लेकर कोई आलोचक अपनी भृकुटि टेढ़ी करते हुए रत्नकुमार सांभरिया की उक्त कहानी को सिरे से खारिज कर दे फिर तो कहानी का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा। इस तरह के दृष्टिकोण को मुक्तिबोध ने 'ऐनकवादी दृष्टिकोण' कहा है जो कि नकारात्मक होता है।

अत: इस प्रसंग में आखिर में बस इतना-भर कहना है कि कहानी का प्रत्येक तत्त्व, लेखक के साथ-साथ पाठक के सामाजिक, आर्थिक, जैविक और मनोवैज्ञानिक अनुभवों, विवेक और कल्पना के आधार पर विकसित मानवीय सम्बन्धों के विविध सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों को एकीकृत और सक्रिय करने का काम करता है। लेकिन इनमें प्रमुख होता है निष्पन्न दृष्टिकोण। एक अच्छी तरह से रचित और क्रियान्वित दृष्टिकोण किसी भी लेखक के लिए सबसे जरूरी तत्त्व होता है। अच्छे लेखकों को हमेशा इस बात का एहसास होता है कि वास्तव में कहानी रचने और प्रभाव पैदा करने में 'वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण' कितना मददगार हो सकता है। बाकी अगर 'कंडीशंड साहित्यिक रिफ्लैक्स' का तर्क प्रेमचन्द के साथ लागू किया जा सकता है तो फिर वही तर्क उन दलित कहानियों के लिए भी लागू होगा, जिनमें आत्मसंघर्ष नहीं बल्कि फार्मूला-भर होता है।

वस्तुत: देखना, दृश्य वस्तु अथवा घटना का हमारी आँखों में केवल प्रतिबिम्बन-मात्र नहीं है। दृष्टिकोण के लिहाज से देखने की क्रिया का रिश्ता हमारे बोध से है और बोध का दिमाग से। मानव शरीर में इस कदर स्वतन्त्र अस्तित्व और कोई अंग नहीं रखता जिस कदर दिमाग। शरीर के अन्य सभी अंगों से उसका लगाव उस तरह नहीं होता जैसा कि शरीर के परस्पर दूसरे अंगों का होता है। परन्तु, हमारे शरीर का अन्य कोई अंग इतने त्वरित और सजग ढंग से संवेदन और निर्देश ग्रहण और संचरित नहीं करता, जितनी तेजी से मस्तिष्क। अत: यह कहना उचित होगा कि गति और संवेदन का केन्द्र दिमाग ही है। मनुष्य को संज्ञान (कॉग्निजेंस), विवेक और कल्पना, ये तीन शक्तियाँ मिली हैं। एक रचनाकर के लिए इन तीनों के क्रियाशील उपयोग और सृजनशील प्रयोग का अभिकर्ता दिमाग ही होता है। संज्ञान से तात्पर्य यहाँ सूचनाओं, तथ्यों, जानकारियों आदि का ग्रहण है तो विवेक का काम इन सूचनाओं, तथ्यों का निरीक्षण-परीक्षण तथा समय-समाज के संवेगों-आवेगों के साथ तुलना करते हुए, उसकी नब्ज को उस सटीक जगह से पकड़ना है, जहाँ से धड़कनें महसूस की जा सकें। तत्त्व-व्यवस्था को आत्मसात करने और उसको उपयोगी व क्रियाशील बनाने का काम विवेक के द्वारा होता है। रचना के फंक्शनिंग में लेखक की भूमिका को दृष्टिकोणपरक विवेक ही सम्भव करता है। कल्पना विवेक को तीक्ष्ण और संवेदी बनाती है। कल्पना-शक्ति के जरिए वह अपने विचारों को नये-नये तरीकों, युक्तियों, प्रयोगों, दृष्टियों के सहारे रचना में सम्भव करता है। मैक्सिम गोर्की ने रचना-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में लिखते हुए एक प्राचीन यूनानी दार्शनिक जेनोफेंस के हवाले से लिखा है कि ''यदि पशुओं में सृजनात्मक कल्पनाशक्ति होती तो सिंह यह सोचते कि भगवान एक बहुत बड़ा और अजेय सिंह है, चूहे उसका चित्रण चूहे के रूप में करते। मच्छरों का भगवान शायद एक मच्छर होता और रोग के कीड़े का भगवान एक किटाणु होता। मनुष्य ने अपने भगवान को सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान तथा

सर्वोत्पादक बना दिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो उसने अपनी सर्वोत्तम आकांक्षाएँ उसमें मूर्तिमान कर दी हैं। भगवान मानव की एक कल्पना-मात्र है, जिसे जीवन की नीरसता और दरिद्रता तथा जीवन को अधिक समृद्ध, सुविधाजनक, अधिक न्यायसंगत तथा सुन्दर बनाने की मानव की अस्पष्ट प्रेरणा ने जन्म दिया है।''

दरअस्ल 'दृष्टिकोण' रचनाकार के लिए केवल जानकारी सम्प्रेषित करने का तरीका ढूँढ़ना नहीं है, बल्कि सही तरीके से यह बताने में सक्षम होना है कि आप कथा में जो घटना, चरित्र या दुनिया रच रहे हैं, वह दुनिया अधिक से अधिक समझने योग्य और विश्वसनीय है या नहीं। इसको समझने के लिए 'परम्परा' को रचने और बरतने सम्बन्धी प्रेमचन्द और प्रसाद के दृष्टिकोण को देखना उचित होगा। मसलन, प्रेमचन्द के यहाँ परम्परा का उपयोग एक अलग दृष्टिकोण से आता है, वह जयशंकर की तरह सांस्कृतिक-रिक्थ के रूप में उतना नहीं आता जितना समकालीन वस्तुपरकता के परिप्रेक्ष्य को सही ढंग से रखने के विरोधी सहवर्ती तत्त्व के रूप में। मतलब यह कि प्रसाद के यहाँ इतिहास व परम्परा महानता और गौरव के अनुकरणीय प्रयोजनीयता के 'अतीत पाठ' के रूप में आता है, जबकि प्रेमचन्द के यहाँ इतिहास और परम्परा, आलोचित होकर 'वर्तमान पाठ' के रूप में समकाल को गति देने के अर्थ में आता है। इसलिए, उनके यहाँ इतिहास व परम्परा के टूटने, ढहने की आवाजें हैं, जबकि प्रसाद के यहाँ वर्तमान दशा की कराहें अधिक हैं। 'शिकारी राजकुमार', 'डिक्री के रुपये' या 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी प्रेमचन्द की कहानियों में इसे सुना पढ़ा जा सकता है। 'डिक्री के रुपये' और 'शतरंज के खिलाड़ी' ऐतिहासिक वातावरण के बावजूद वर्तमान की रचना करती हैं। इसके अलावा प्रसाद की कहानियों में ऐतिहासिक वातवरण के साथ जो रोमानियत है, उसमें वर्तमान और भावी जीवन-संघर्षों के प्रति कोई प्रेरक दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि कहा जाए कि एक गहन अवसाद (मेलेनकोलिया) है तो अनुचित नहीं होगा। 'अशोक', 'जहाँनारा', 'पुरस्कार', 'आकाशदीप' आदि कहानियों में इस मेलेनकोलिया के चित्र देखे जा सकते हैं। जबकि प्रेमचन्द की ऐतिहासिक वातावरण-सम्बन्धी कहानियों में यह अवसादी वातावरण कहीं आया भी है तो किसी चिन्ता या मोहग्रस्तता के साथ नहीं, बल्कि पतन के कारणों की शिनाख्त करते हुए उसकी आलोचना के रूप में आता है, जिसमें परिवर्तन का स्वर मिलता है। ऊपर इसे ही दृष्टिकोण का फर्क कहा गया है। 'डिक्री के रुपए' कहानी को ही लें, यह कहानी औपनिवेशिक गुलामी के बीच देशी रियासतों और राजे-रजवाड़ों के आत्याचारों, अन्याय और अँग्रेजी नकल को चित्रित करती है, वह नवजागरणकालीन चेतना के अनुकूल है। इसी तरह से 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी इतिहास, राजनीति, पतनशील सामन्तवाद, विलासिता, पराजय और पलायन को जिस दृष्टिकोण से आलोचित करती है वह आजादी के संघर्ष की तात्कालिक वातावरण की बड़ी कहानी बन जाती है। पर, कहानी अपने कथानक में बारीकी से एक और बहस की रचना करते हुए साहित्य की सोद्देश्यता के पक्ष में अपना दृष्टिकोण साफ करती है। रामविलास शर्मा ने इस बात को रेखांकित करते हुए लिखा है– ''शतरंज के खिलाड़ी में वह 'कला कला के लिए' का खूब मजाक उड़ाते हैं। मिर्जा और मीर उन लोगों में हैं जिनके लिए अपना मनोरंजन ही सबकुछ है, देश भाड़ में जाए, उन्हें इससे मतलब नहीं है। इसीलिए इस कहानी का व्यंग्य इतना तीखा है।'' एक बात और, अगर कोई रचना किसी मत, धारणा या विचारधारा को जाने-अनजाने अभिव्यक्त करती है तो उसे केवल 'प्रोपेगेंडा राइटिंग' मान कर खारिज कर देना उचित नहीं है। क्योंकि यह जरूरी नहीं कि उक्त रचना का रचयिता उस मत, धारणा या विचार विशेष को प्रतिपादित करने का संकल्प लेकर ही लिखता है, वरन इसलिए भी लिखता कि वास्तविक जीवन के जिन पहलुओं और वस्तु-सत्यों की ओर उसका ध्यान गया, उन पहलुओं उन तथ्य-सत्यों से वह दृष्टिकोण प्रकट होता हो। प्रेमचन्द और यशपाल के लेखन के बीच का फर्क इस बिन्दु से किया जा सकता है।

अब आखिर में एक बात और जो जरूरी है और जो पाठकों की ओर से बहस के लिए लायी जा सकती है। वह यह कि सभी पाठक एक ही दृष्टिकोण से किसी रचना को देखें-पढ़ें, यह जरूरी नहीं। यह बिल्कुल सम्भव है कि अलग-अलग पाठकों में 'दृष्टिकोण' की समझ अलग-अलग बिन्दु और कोणों से हो। पर कोई न कोई एक बिन्दु या कोण ऐसा अवश्य ही होगा जहाँ किसी कृति के ख्यालीय दृष्टिकोण पर सर्वमान्य न सही पर बहुमान्य सहमति हो वर्ना रचना की 'केन्द्रिकता' अर्थहीन हो जाएगी। इस उत्तर-आधुनिक 'पोस्ट ट्रुथ' वाले समय में इसकी गुंजाइश अधिक हो जाती है। दरअस्ल, दृष्टिकोण लेखकीय सृजन के नैतिक संघर्ष का आईना और उसकी चेतना व विचारों का हस्ताक्षर होता है। दृष्टिकोण कहने पर किसी न किसी रूप में विचारधारा की छूत का भान होता है। एक हद तक यह सच भी है, किन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि दृष्टिकोण अपने परिवेश और वस्तु के सही परिप्रेक्ष्य की समझदारी है। कभी-कभी यह भी तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि देखने के कई नजरिये हो सकते हैं और इस तरह से सत्य

के भी कई कोण हो सकते हैं, या सत्य भी एक नहीं अनेक हो सकते हैं। सामान्यत: यह तर्क ठीक लग सकता है। परन्तु, इस तर्क में वैयक्तिकतावाद का समर्थन किया जाता है। मसलन, दृष्टिकोण तो 'फासीवाद' के पक्ष में भी एक खास लक्ष्य और उद्‌देश्य के तहत दिया ही गया है, दिया ही जाता है और जनता के भीतर इसके पक्ष में, कभी नस्ल के नाम पर, कभी उसके स्वाभिमान के नाम पर, कभी सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के नाम पर, तो कभी राष्ट्रवाद के नाम पर, कभी परिवर्तन और सुधार के अनुशासन के नाम पर, समर्थन जुटाया ही जाता रहा है। पर क्या 'फासीवादी' दृष्टिकोण व्यापक और प्रगतिशील समाज-निर्माण और मानवीय गरिमा के लिए स्वास्थ्यकर माना जा सकता है? अत: देखने के नजरिये अलग हो सकते हैं, पर वस्तु की मूल प्रकृति और अर्थ को अगर नकार कर उसे केवल इस तर्क पर कि नहीं यह भी सत्य हो सकता है, दरअसल, सत्य के वास्तविक रूप और अर्थ को सत्यासत्य के भ्रम में डालकर सही दृष्टिकोण को विलयित करना होगा। मोमबत्ती को देखते ही सबसे पहले आपके मन-मस्तिष्क पर जो बिम्ब उभरता है वह प्रकाश का होगा। बन्दूक को देखकर मानस पर जो चित्र बनेगा वह खेत जोतने का नहीं बनेगा। डाकखाना के बॉक्स को देखकर चिट्ठियों का ख्याल पैदा होता है। अत: मूल में इन सबका सत्य उनके इस आद्य-बिम्ब से ही जुड़ा हुआ है। किन्तु इनका उपयोग किस प्रयोजन हेतु किया जाता है, दृष्टिकोण इस प्रयोजनीयता से परिभाषित होगा। यह प्रयोजनीयता ही सृजनात्मकता का मूल हेतु है। दृष्टिकोण, इस प्रयोजनीयता के प्रति लेखक की चेतना का वह मानक बिन्दु होता है जिससे मानवता के हित और प्रगतिशील मूल्यों के विकास की उसकी समझ का आकलन किया जाता है। किसी रचना में दृष्टिकोण जितना ही स्पष्ट होगा, उस रचना में विषयगत संकेन्द्रण उतना ही गँठा हुआ और वस्तु-संयोजन विरोधाभासों से रहित होगा। कथा के शिल्प में दृष्टिकोण की स्पष्टता, कथा-कोण के हर सूत्र को कथा के मूल वृन्त से जोड़े रखता है, उसे अन्विति प्रदान करता है।

अब एक दूसरे ढंग के सवाल को लिया जाए– एक ही उपन्यास में एक से अधिक दृष्टिकोण हो सकते हैं, फिर रचना में दृष्टिकोण के पहलू से 'केन्द्रिकता' का मतलब क्या है? बेशक, यह सम्भव है कि एक ही कथा में अलग-अलग प्रकार के एक से अधिक दृष्टिकोण हो सकते हैं। मिखाइल बाख्तीन उपन्यासों के बहुवचनात्मक संरचना के सम्बन्ध में इसे 'कार्निवाल' के रूपक के सहारे में व्याख्यायित भी करते हैं। परन्तु, वास्तव में ये अलग-अलग-से प्रतीत होने वाले दृष्टिकोण एक-दूसरे से भिन्न नहीं होते बल्कि दूसरे को समृद्ध करते हैं। केन्द्रिकता (फोकलाइजेशन) के सिद्धान्त में इस पर विचार किया गया है। वास्तव में, एक ख्यालीय दृष्टिकोण के ये अलग-अलग छोटे-छोटे केन्द्रक (फोकलाइजर) होते हैं, जिसमें एक फोकलाइजर किसी स्थान या प्रसंग या सन्दर्भ से दूसरे फोकलाइजर को रास्ता दिखा सकता है, दृष्टि प्रदान कर सकता है। ये सभी मिलकर रचना की केन्द्रीयता को सुदृढ़ और स्पष्ट करते हैं। कथोपकथन वाली किस्त में, कथा-उपकथा के सम्बन्धों पर बात करते हुए इस पर विस्तार से विचार किया गया है। कई बार एक या कुछ पात्रों के कथोपकथन के सहारे दृष्टिकोणपरक दोहराव कहानी के थीम और बुनावट को आपस में जोड़ने के नये तरीकों को प्रोत्साहित करता है, जिससे दर्शकों को एक साथ यह पता चलता है कि कहानी क्या सन्दर्भित करती है और यह कैसे सन्दर्भित करती है। नोबेल सम्मान से सम्मानित तुर्की उपन्यासकार ओरहान पामुक 'दृष्टिकोण' के लिए जो शब्द उपयोग में लाते हैं, वह 'केन्द्र' ही है। उनका कहना है कि ''जब हम केन्द्र की प्रकृति पर चर्चा करते हैं, तो हम जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण पर चर्चा कर रहे होते हैं।'' फिर से हमें, श्रीमती हम्प्टी वार्ड को लिखे हेनरी जेम्स के उस पत्र को याद कर लेना चाहिए, जिसमें जेम्स ने कहा है, ''कहानी कहने के पाँच मिलियन तरीके हो सकते हैं, पर प्रत्येक कहानी को तभी उचित ठहराया जा सकता है, जब कहानी में कोई न कोई 'केन्द्र' प्रस्तुत किया गया हो, जो लेखक के दृष्टिकोण की पहचान कराता हो।'' अत: यह केन्द्र ही 'दृष्टिकोण' के लिए पहचान बिन्दु का काम करता है। पर, इन सबके बावजूद यह एक पहलू किसी भी रचना के लिए हमेशा ही बना रह सकता है कि जिस तरह से पुन:पाठ अथवा किसी भावी पाठक द्वारा, कुछ नये सवालों, नये सन्दर्भों के साथ लेखकीय समझ और दृष्टिकोण को नये आयामों में नया अर्थ-विस्तार दिया जाए और वहीं दूसरी तरफ लेखक की यह शिकायत जीवन-भर बनी रह सकती है कि :

उसने मिरी निगाह के सारे सुखन समझ लिये
फिर भी मिरी निगाह में इक सवाल नया है। **(अतहर नफीस)**

फिर-फिर... पूरी तरह न समझे जाने का दर्द बना रह सकता है। और सच पूछिए तो न समझे जाने का यह दर्द ही है, जो बार-बार किसी नयी रचना के रूप में व्यक्त होने के लिए रचनाकार को प्रेरित करता है।

(लेख का उनवान मीर के एक शे'र का मिसरा-ए-सानी है, शे'र का मिसरा-ए-ऊला (पहली पंक्ति) ये रहा : ये दो ही सूरतें हैं या मन् कस है आलम)

मो. 9560236569

गुडबुक

कौन देस को वासी : सूर्यबाला

वेणुओं का देस-परदेस

चन्द्रकला त्रिपाठी

''**यह** महादेश शहसवारों के लिए है...''

''सुखी रहने नहीं, सुखपूर्वक रहने के सारे कारण इस देश में मौजूद हैं। इसलिए मैं सुखी होऊँगा ही...''

यह कथन, यह संवाद वेणु का है। सूर्यबाला के इस उपन्यास का एक नाम वेणु की डायरी भी है।

और है यह 'कौन देस को वासी'!

यह शीर्षक इस उपन्यास की बड़ी कठिन-सी टेक-सरीखा लगता है। किसी उदास गीत की आखिरी पंक्तियाँ अपनी गूँज में जैसे बची रहती हैं, ऐसा है यह।

तब हम उपन्यास के जिस लिखे पर अटकते हैं, वह ये है कि ''बहुत दूर आ गया है तुम्हारा वेणु, अब वापसी थकान-भरी होगी उसके लिए। अलंघ्य दूरियाँ हैं।''

और यह भी है कि यह तो वेणुओं की डायरी है। सात द्वीप नौ खंड की तरह इस उपन्यास में नौ खंड हैं। वेणु के एमआईजी क्वार्टर की तीसरी गली से हजारों लाखों सुविधाओं से पटे पड़े देश अमेरिका में बस जाने की कहानी है यह। उपन्यास के आरम्भिक पन्ने पर ही लेखिका ने थॉर्न पक्षी को याद किया है। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में किसी कँटीली डाल पर बैठी जैसे अपनी ही मृत्यु का गाना गाती है। काँटा चुभता जाता है, गीत गाती जाती है और धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है...

नौ खंडों में नौ रस भी हैं। खुशी है, चुहल है, जिन्दा पारिवारिकता है और देश-दुनिया के बसे हुए बिम्ब हैं। मगर सबसे बुनियादी राग एक असमाप्त उदासी का है। एक आयरनी है जो उधड़ती चली गयी है।

इस उपन्यास पर कई समीक्षात्मक पाठ आ चुके हैं। उपन्यास की संवेदना पर, विषयवस्तु पर और उनके औपन्यासिक कल्प पर उसकी विशिष्टता रेखांकित करने के नजरिये के साथ काफी कुछ प्रकाशित हुआ है। हमारे समय की व्यापक पाठकीय पहुँच वाली लेखिका हैं सूर्यबाला। उनके कथा-संसार में यथार्थ के सूक्ष्म और स्थूल की बड़ी गहरी-सी जुगलबन्दी मिलती है। कहते हैं कि सार्थक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसमें समाहित उस मूल्यचेतना का संघर्ष है जिसमें जीवन की व्याप्ति है तो गहराई भी है। सूर्यबाला के कथा-संसार में साहित्य का यह बड़ा आन्तरिक-सा काम है। जीवन-प्रसंगों को मानवीय कसौटी पर परखते हुए दर्ज करने में वे चूकती नहीं हैं, बल्कि यथार्थ के सारे सम-विषम को जिस धुरी पर सँभालती हैं, उसमें हर बार करुणा का गहन स्पर्शी भाव है। इस भाव का आलोक उपन्यासों का सबसे सँभला हुआ परिप्रेक्ष्य है।

इस उपन्यास में क्रमशः नया होता हुआ भारत है और फोकस में है भारतीय मध्यवर्ग जिसके पास सक्षम होने की सबसे बड़ी पूँजी, ज्ञान है। वह उत्तरोत्तर इस ज्ञान के उत्पादन और पुनरुत्पादन के क्षेत्र में भागीदारी बढ़ाता दिखाई देता है। उसे अपनी अभावग्रस्तता से उबरने का संसाधन यहीं मिलने वाला है।

वेणु की बुद्धि, श्रम और उद्यम ऐसे हैं कि अमेरिका उसे चुन लेता है। पढ़ने के लिए अमेरिका जाता है और वहाँ बसता चला जाता है। अमेरिका उसके जीने और कमाने का ऐसा जरिया बन जाता है कि वहाँ से भारत कहीं अधिक वास्तविक और साफ दिखाई देने लगता है। यही हमें वेणु को पकड़कर अपने-अपने जीवन में उच्च स्तर चाहने वाले अपनों और सम्बन्धियों का असली रूप भी दिखाई देता है जो उसे विरक्त ही नहीं करता बल्कि अमेरिका के और अनुकूल होने की भावनात्मक वैधता भी देता दिखाई देता है।

इस उपन्यास में लेखिका जीवन को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में परखना तय करती हैं। भारतीय मध्यवर्ग की पारिवारिकता से लेकर वैश्विक सम्बन्धों में रूपायित होते भारत का नव्यतम समय इस उपन्यास में मौजूद है। जाहिर है कि यह समय क्रमशः उत्तर-आधुनिक होते भारत का तेजी पकड़ता समय है। इस इस तेजी का सबब आर्थिक उदारीकरण है जिसका अर्थ बहुराष्ट्रीय पूँजी का विस्तार है। पूँजी की क्षमता अब सबसे बढ़ कर है। इस बढ़ी हुई क्षमता ने कई व्याकरण और समीकरण बदले हैं जिसका असर समाज पर भरपूर पड़ा।

अपने पुराने कबाड़ के साथ नयी भारतीय गृहस्थियाँ सम्बन्धों के नये प्रकार में दिखाई देती हैं। भारतीय समाज का आभ्यन्तर इस असर से भरपूर हिल गया है। सूर्यबाला इस आभ्यन्तर संसार के सूक्ष्मतम को समझ कर उजागर करने वाली लेखिका हैं। 'कौन देस को वासी' में भी यह ऐसे उभर कर आया है कि यथार्थ का सूक्ष्मतम और सरलतम एक दूसरे की शक्ति बन कर प्रकट होता दिखाई देता। व्यक्ति, समाज और देश के जटिल-सरल का जोड़ और बिखराव पूरा उद्घाटित हुआ है।

वैश्विक परिदृश्य के प्रति लेखिका का नजरिया बहुत साफ है। यह लगभग एक सटीक इतिहासबोध के ढंग का है जिसका आलोचनात्मक विवेक द्वन्द्वात्मक है। यह अच्छाइयों-बुराइयों को बराबरी पर सलटाने वाली सपाटता में नहीं है। इस कथा में निरायास-सी गहरी तफसीलों में अमेरिका में प्रवासन संस्थापन का जो सन्दर्भ आया है, वह बहुत जहीन और वास्तविक हस्तक्षेप के साथ है। अमेरिका ऐसा महादेश है जिसे एक डिजाइंड स्वरूप में बनने और विकसित होने का खुला हुआ मौका मिला है। ऐसा मौका योरोपीय देशों के पास नहीं हुआ था। इंग्लैंड के पास भी नहीं हुआ। औपनिवेशिक विस्तार से बनते अमेरिकी साम्राज्य में इन सबके हिस्से हुए। यह केवल इतिहास का सन्दर्भ नहीं था, बल्कि उस संस्कृति का भी सन्दर्भ था जिसकी जातीय जड़ें अमेरिका की जमीन पर नहीं थीं, फिर भी वहाँ आये इंग्लैंड और योरोपीय जन विस्थापित होने की दुर्बल भावना में नहीं थे। विजेता थे। यह अतिरिक्त दर्प उनकी अतिरिक्त पूँजी, संसाधन-सम्पन्नता में पूरी चमक के साथ आरम्भ से ही नुमायाँ होता रहा। जिनके श्रम का दोहन करके उन्होंने अपना साम्राज्य खड़ा किया, उन रेड इंडियंस और अफ्रीकी श्रमिकों को अन्य बनाकर रखने में इस विशाल लोकतन्त्र को पूरी तरह से लज्जा आज तक नहीं आई है। ह्वाइट सुप्रीमेसी का जोर भारी है। अमेरिकी गुमान का यह रंग उनकी सर्वोपरिता वाली प्रवृतियों के मूल में ऐसे भरा हुआ है कि यथार्थ के हर हिस्से में इसका असर है। वेणु और वेणुओं को इस अमेरिका का सामना करना पड़ता है मगर डॉलर के प्रलोभन उन पर भारी पड़ते रहे हैं। कुछ इस तरह कि अमेरिका में एक भारत है और भारत में भी यही अमेरिका फैल रहा है। लेखिका के पास ऐसे अमेरिका का नजरिया, भारतीय युवाओं की प्रतिभा के दोहन और हाशियाकरण वाली उनकी कार्यशैली तथा वहाँ से उभरती जटिलताओं के सूक्ष्मतम ब्यौरे मौजूद हैं जो कथा के ताने-बाने में सूक्ष्म आलोचनात्मकता बनाये रखने के साथ-साथ उस जमीन के यथार्थ को उसकी जैविकी में रच देते हैं। जिसे तत्त्वदर्शी दृष्टि कहते हैं, उसका सामर्थ्य है यह। इसलिए यह उपन्यास उनके अपने कथा-संसार का महत्त्वपूर्ण विस्तार है।

इस उपन्यास में आया अमेरिका नये भारत का फैलाव है। यह वह विदेश है जो अब भारतीयों का गरब-गुरूर बन चुका है। पढ़ने और नौकरी करने की काबिलियत अर्जित कर लेने पर लगे हुए युवा अधिकतर निम्न-मध्यवर्गीय हैं। अभावों से भरे जीवन में यहाँ-वहाँ थिगलियों में बँधकर लटके सपनों में से एक बड़ा सपना है अमेरिका जाकर सम्पन्न हो जाना। इस यथार्थ का बड़ा रोमान डॉलर है जो रुपये की बनिस्पत बहुत भारी है। वेणु के रिश्तेदार हर बार डॉलर को रुपये से बदल कर वेणु पर अपनी आजमाइश जैसे बढ़ाते चले जाते हैं, उसमें इस वर्ग का लोभ-लालच और स्वार्थ में समूचा उघड़कर आया है। इन हिस्सों को लिखते हुए सूर्यबाला उस त्रास को उजागर करती हैं जिसको जज्ब करते हुए वेणु अपनों से निर्वासित हुआ है और जिसका एक छोर उसकी माँ के कलेजे में फँसा हुआ है।

कथा में वेणु और उसका परिवार अपने सम्बन्धों-सहित जिस आयरनी का ठिकाना है, उसी का विस्तार दुनिया में छिन्नमूलता के संकट के रूप में दिखाई देता है। सूर्यबाला द्वारा रचे हुए जीवन-प्रसंग इस आयरनी के भीतर एक लम्बी यात्रा करते हैं और परिवार में जारी टूट-फूट फैलकर देश-विदेश में जारी विघटन के रूप में दिखाई देती है। कहना न होगा कि नये समय में जीवन-मूल्यों के अप्रासंगिक होते जाने की थाह लेने का लेखिका का अपना यह सजग ढंग है। उपन्यास में आये कई ऐसे प्रसंग हैं जो परिवार के घरेलू किस्म के घटित के भीतर इस प्रवृत्ति को जैसे जाँचते हुए-से प्रस्तुत करते हैं, उसी उत्कटता से वे देशों की मुनाफा उगाही को उजागर करते हैं। कह सकते हैं कि बूँद से समुद्र तक लालच जारी है और सूर्यबाला इसे ओर-छोर-सहित उद्घाटित कर रही हैं। उपन्यास में आया विदेश, डॉलरों वाला देश अमेरिका है। वेणु वहाँ फेलोशिप जुटाकर पढ़ने के लिए गया है। मेधावी वेणु को बुद्धि के अतिरिक्त फीस भी जुटानी है जिसकी राशि इस परिवार के बूते के लिए असम्भव किस्म की जरूर है, मगर वह जुटा ली जाती है। सूर्यबाला ने इस उपन्यास में भी गहरी पारिवारिक प्रीति वाला घर लिखा है। वेणु के योगक्षेम को सबसे ऊपर रखने वाले इस घर में बहुत लगाव है।

वेणु को भी लेखिका ने गहरे भावनात्मक पकड़ में पले हुए लगभग विपन्न परिवार से लिया है जिसके चारों तरफ सम्बन्धों से खचाखच भरा हुआ वह परिवेश है जो उसके गरीब दिनों में बेगानापन बताने पर आमादा था और अब सगा हुआ उमड़ता

चला आया है। इसी के भीतर अभावों के, वंचित स्थितियों के भी गढ़ने, पुख्ता करने वाले रूप हैं तो हिला जाने वाले, नये ढंग का अलगाव रचने वाली प्रवृत्तियाँ भी हैं। इन्हीं के भीतर वेणु की माँ है, बहन है और खुद वेणु भी तो है जिसके अन्तर्द्वन्द्व और उदासी के जरिए सूर्यबाला मनुष्यता का पक्ष रचती हैं।

वहाँ विदेश में तरह-तरह के वेणु-जैसे ही युवा हैं। उनके सम्बन्धों के लगाव अलगाव हैं। भावनात्मक निकटताएँ और दूरियों का भी संसार है, मगर अमेरिका उन सबको एक ही तरीके से हाँकता है। उसके लिए तो ये सभी अन्य हैं।

इस वेणु से तो पाठक मिलते ही जा रहे हैं। जिससे मिल रहा है, उसी के भीतर अटक गया है वह।

पूरा नाम हुआ वेणु माधव शुक्ला। घर का जहीन बेटा। उधड़ी मलिन दीवारों वाले घर में सपनों की चमक के साथ हुआ वह जैसे माँ-बाप, भाई-बहन और रिश्तेदारों तक के लिए सुविधा-सम्पन्नता जुटाने वाली गाड़ी का इंजन हो उठता है। तमाम अभावों के बीच किसी तरह जुटी लिक्विड मनी ने अमेरिका उड़कर जाने के लिए उसके पंख जुटा तो दिये मगर रुपये और डॉलर की खींचातानी ने उस बोझ से खाली नहीं किया जो पैरों के नीचे सख्त थी। उधर सर्द निस्संग अमेरिकी रवैया था। यह त्रास बेरहम था। अमेरिका के साथ अमेरिका-जैसी चतुराई के लिए पारंगत होना चाहने वाले अखिल भारतीय युवाओं की पूरी जमात है यहाँ। गुजराती, पंजाबी, दक्षिण भारतीय सभी। उसी में आती है वेणु की पत्नी मेधा, जिसने वेणु से ज्यादा अमेरिका से शादी की थी। मेधा वेणु की माँ का ठोस विपर्यय है। उसे वेणु के डॉलरों में उसके परिवार के खर्चों की सेंध बर्दाश्त नहीं है।

और बेटू है, वेणु का बेटा जो अमेरिका को अपना देश समझता है। भारतीयों के लिए अमेरिकियों से अधिक घृणा में है वह।

इस उपन्यास में न पछतावे इकहरे हैं और न ही यातनाएँ सरल हैं। यह इमीग्रेटेड भारतीयों के स्वप्नभंग, छलावे और नियति का एक संघर्ष भी है जिसमें सुख के रंग उड़े हुए हैं और दुख के रंग सजे हुए। इस तरह बड़ी सहजता के साथ लेखिका ने कारपोरेट पूँजी के विस्तार की अन्त:कथा लिख दी है।

उपन्यास की शुरुआत में दर्ज वेणु के घर-परिवार का आरम्भिक उल्लेख जैसे इस चरित्र की स्थिति के साथ-साथ नियति का भी पूर्व-रंग है। यह घर भारत के किसी शहर का कोई मामूली-सा मुहल्ला है और जहाँ सम्बन्धों में रमे हुए से लोगों को वेणु से बड़ी उम्मीदें हैं। यह मामूली भले है मगर वो जीवन-संस्कृति तथा व्यवहार में अपनापे की खासियत वाला परिवार था यह। इस परिवार में त्याग है, विश्वास-भरी आपसदारी है और अभावों के बावजूद सहज प्रसन्नता-भरा नेह-मोह का माहौल है। अपनी इस खास निजता में आत्माभिमानी-सा यह घर हमारे देश का बहुत जाना गया निम्न-मध्यवर्गीय परिवार है जिसकी सारी जुगत में सबसे ऊपर उस सामाजिकता की रक्षा है जिसमें अपने कठिन अभाव की थिगलियों को बहुत छुपाकर रखना है। सम्बन्धों, सम्बन्धियों, पड़ोसियों और मित्रों से भरे और खाली से इस औसत निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के पास वेणु-जैसी जहीन सन्तान माँ-बाप के पुण्य-सरीखी जनमी है, बढ़ी है और उन पर कोई भार डाले बिना सफलताओं की बड़ी खुली हुई राह चल पड़ी है। इसलिए खास होते गये इस परिवार की बदलती हुई स्थिति क्रमश: एक प्रत्याशित नियति के सामने निहत्थी खड़ी दिखाई देती है। भाव, अभावों का कठोर विपर्यय बन कर जीवन को दूसरी परिभाषाओं की तरफ ठेलते चले जाते हैं। सम्पन्नता पहले उघड़ी हुई चीजों को ढँकने के लिहाज में थी मगर वहीं से जमाने-भर का और और उघड़ता यथार्थ दिखाई देने लगता है। यहीं फिर हिसाब-किताब का दूसरा खाता भी खुल जाता है। लेन-देन में चौकसी का अतिरिक्त जो जारी हुआ है तो वे दो लोग अपनी-अपनी चुप्पियों में अबोले रुक जाते हैं। कथा में जिन्दगी के गहन और असम्भव के दो छोर हैं ये जो उस सांसारिकता से बिद्ध हैं अथवा निर्वासित हैं। तो स्थिति और नियति में भरी निस्संगता के सामने जो सबसे अधिक अकेले और निर्वासित हुए दिखाई दिये, वे हैं वेणु और उसकी माँ। इन दोनों ने सबसे ज्यादा एक-दूसरे की चुप्पियों को सुना है। उपन्यास में मौजूद कथा को हम इन चुप्पियों में रुक कर थाहते हैं।

कथा की ओर चलें तो देखते हैं कि वेणु की कामयाबियों ने इस परिवार के दिन फेर दिये थे। उपन्यास में इस तरह सबकुछ यहाँ दिन बहुरने वाले अन्दाज में ही बदलता हुआ दिखाई दिया है। और फिर धीरे-धीरे वेणु पूरा बदल जाता है। उसके भीतर की नमी बचाये रखने के लिए बाहर की दुनिया में कुछ नहीं है। पहले वह अपनी पत्नी मेधा की निपट प्रकट सांसारिकता और स्वार्थ से आहत हुआ करता था, मगर धीरे-धीरे उसे खुद के सामान में बदलते जाने का अहसास हुआ। माँ की चुप्पी में बन्द हाहाकार भी बहुत दूरी पर ठहर चुके थे।

अमेरिका निगल चुका था वेणु को।

माँ की चुप्पी में अवरुद्ध संवादों को टटोलती है लेखिका। बहुत कुछ बीत चुका है और कुछ भी सीधी रेखा में नहीं बीता है। यादों की रंग-रेखाएँ जैसे रबर से घिस-घिस कर मिटाई जा रही हैं।

नयी सभ्यताएँ शोर और रौशनी के

विस्फोट से भरी वे, उन्हें किसी मानवीय कोमलता की दरकार नहीं। उधर वेणुओं की जिन्दगी में भी तमाम उतार हैं, अकेलेपन हैं, निस्सहायताएँ हैं। वेणु बार-बार माँ से मुखातिब है कि गलती कहाँ हो गयी! सभ्यता-समीक्षाओं को मनुष्य के लिए कुछ तो बचा लेने की खातिर किस तरफ देखना चाहिए आखिर!

सूर्यबाला हमारे लिए यह सवाल छोड़ देती हैं।

केदारनाथ सिंह की एक कविता में आया है कि– 'हर काम के लिए... अतल अनन्त देर हो चुकी है।'

कहना यही है कि हमारे समय के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और दार्शनिकों को भारी टूट-फूट से जूझना है। कम लोग हैं जो उस टूट को बुनियाद से देखना शुरू करते हैं। सूर्यबाला उन कम लोगों में हैं। उनके लिए मनुष्य और मनुष्यता को सँभालने वाली कोमलताएँ सम्बन्धों में हैं। परिवार, समाज, देश और दुनिया में टिकने का सहारा यहीं है।

उपन्यास में ढेर सारी कविताएँ हैं। कविताओं की तरह से नहीं बल्कि भाषा में नरमी सँभालने के लिए हैं ये। उत्तर आधुनिक विश्व में ज्ञान संसाधन है और बुद्धि बड़ी कीमतों के निशाने पर है। हर चीज पर बिकने का टैग है। महँगी चीजें आध्यात्मिक मयार रखने लगी हैं। इस सारे विपर्यय और विरोधाभास से जूझ लेती है उनकी भाषा। चित्रण में भीतर का अर्थ पूरा उजागर होता है। आवृत्तियाँ हैं कई। स्मृतियों की बड़ी भूमिका है उपन्यास में। उनकी गति आन्तरिक है। सारे विस्तार में निजी स्पर्शों की ऊष्मा बोलती मिलेगी।

माँ और वेणु सम्बन्ध का सघनतम कोमल पक्ष है। इनके जरिए ही जैसे समय, देश और घटित का टुकड़ा-टुकड़ा जुड़कर बड़ा कोलाज बन गया है। ❑

गुडबुक

गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : अलका सरावगी

प्रीति की आध्यात्मिकता

श्रीकृष्ण नीरज

समय निरन्तर गतिशील है, जो अपने पीछे एक अतीत छोड़ता है। कुछ कहानियाँ सामने आती हैं तो कुछ अतीत में दब जाती हैं। अलका सरावगी उन्हीं दबी कहानियों की शिनाख्त करती हैं। वे इतिहास की तह में जाकर कल्पना के सहारे ऐसे मर्म का उद्घाटन करती हैं, जहाँ तत्कालीन समय अपनी सम्पूर्णता में प्रतिबिम्बित होता है। इनके कथा-साहित्य में वर्तमान के साथ अतीत और अतीत के साथ वर्तमान आवाजाही करता है, जिनके पात्र समय की मुठभेड़ में अपना वजूद तलाश रहे होते हैं। अलका सरावगी का स्त्री-विमर्श किसी गुट में शामिल होने की बजाय स्त्रियों की वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण करता है। सूचना क्रान्ति का दौर जहाँ मनुष्य मात्र एक उपभोक्ता है, राजनीति का भीषण दौर जहाँ मनुष्य मात्र एक वोट है, राजनीतिक लाभ के जरिये इतिहास को बदलने की साजिश चल रही हो, सोशल इंजीनियरिंग का टर्म जब इस्तेमाल होने लगा हो, उसी दौर का यथार्थ इनके कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। नये कथ्य के साथ नये शिल्प में कथा कहना उनकी विशेषता रही है और शोधपरक छानबीन को साहित्यिक प्रवाह में बहा ले जाना उनका शौक। समय के यथार्थ पहलुओं का उद्घाटन करके नया मुहावरा गढ़ना उनकी विशेषता है।

गाँधी और सरलादेवी चौधरानी की मुलाकात, पनपते प्रीत और समय की ऊहापोह को उद्घाटित करता उपन्यास 'गाँधी और सरलादेवी चौधरानी बारह अध्याय' में अलका सरावगी दोनों के बीच हुए पत्र-व्यवहार के सहारे अफवाहों के बीच सच की पड़ताल करती हैं। अलका सरावगी इस उपन्यास में पत्रों और कल्पना के सहारे ऐसी कथा रचती हैं, जिसमें औपनिवेशिक दौर की स्थितियाँ, राष्ट्रीय आन्दोलन, एक स्त्री का वजूद और उसकी उड़ान भरने की कथा हैं। इस बारहमासी प्रेमकथा की शुरुआत गाँधी के लाहौर पहुँचने से होती है। सरलादेवी के पति रामभजदत्त जेल में होते हैं। सरलादेवी जिन्हें इतिहास के पन्नों से गुम रखा गया, गाँधी ने अपनी आत्मकथा में जिनका सिर्फ एक बार जिक्र किया, जो कि वन्दे मातरम की धुन बनाई, उन्हीं की कहानी उन्हीं की जुबानी बयाँ होती है।

सरला देवी रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाँजी थीं, 'भारत स्त्री महामंडल' की स्थापना की थी। उनकी संघर्ष-यात्रा और रामभजदत्त से शादी होना, फिर गाँधी से मिलना, स्वदेशी आन्दोलन का नेता बनना, गाँधी के साथ सम्बन्धों में होना एवं उनके कदम से कदम मिलाकर चलने की कहानी अलका सरावगी तथ्यों के सहारे करती हैं जिनको इतिहास ने अब तक दर्ज नहीं किया।

इस प्रेम कहानी में गाँधी सरला देवी के रचनात्मक व्यक्तित्व, बौद्धिकता, कला-साहित्य के प्रति रुझान, सुलझी हुई राजनीतिक समझ, गीत-संगीत, अस्मिता बोध, मेहमाननवाजी, देशसेवा जैसी अनेक खूबियों के प्रति आकर्षित होते हैं। सबकुछ जान लेने के बाद गाँधी उन्हें अपने अनुरूप ढालने का प्रयास करते हैं। वे सरला देवी को अपने से भी बेहतर इंसान बनाने की इच्छा रखते थे। वे चाहते थे कि सरला देवी स्त्रियों की अगुआ बने, स्त्रियाँ राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बोध इनके माध्यम से प्राप्त करें। सरला देवी, गाँधी से प्रभावित होकर न ही अपना व्यक्तित्व बदलती हैं बल्कि अपनी विचारधारा को भी बदल देती हैं। फिर भी इन महान लोगों का प्रेम अतिलघु प्रेम की तरह हिलोरें मारने लगता है। गाँधी द्वारा अतिशीघ्र बदलने की आशा, शीघ्र समर्पण की आकांक्षाएँ, अति-आलोचनात्मक रवैया सरला देवी के लिए असहनीय वेदना के कारण बनते हैं, यही रवैया प्रेम कहानी के अन्त होने की वजह बनता है।

अलका सरावगी प्रेम के बहाने गाँधी दर्शन को भी उद्घाटित करती हैं। गाँधी के सत्य-अहिंसा, ब्रह्मचर्य को समाहित करते हुए लिखती हैं– ''किसी को चोट न पहुँचाकर खुद तकलीफ सह लेना सच्ची अहिंसा है।'' गाँधी अपने पत्रों से हमेशा अपने विचारों को प्रसारित करते हैं। आजादी की जंग में गाँधी के विचार भारतीयों की नसों में दौड़ते थे और एक मिसाल की तरह दिखाई देते, 'असहयोग' ऐसा ही था। कहीं लोग उसका समर्थन कर रहे थे तो कहीं विरोध। एक तरफ कांग्रेस में इसे लेकर मतभेद चल रहा था तो दूसरी तरफ पर रवीन्द्रनाथ टैगोर इसे झगड़ालू राष्ट्रवाद कह रहे थे। उपन्यासकार दिखाती हैं कि कैसे असहयोग को लेकर सरला देवी हमेशा द्वन्द्व में थीं। वे एनी बेसेंट के हवाले लिखती हैं– ''गाँधी के डाक बन्द कर देने चाहिए और रेलगाड़ी की टिकट भी नहीं देनी चाहिए।'' इसी उपन्यास में पनपते प्रेम के बीच 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और स्वदेशी आन्दोलन अपना विराट रूप फैला रहा था। सम्भ्रान्त परिवार में पली-बढ़ी सरला देवी गाँधी के प्रभाव में आकर स्वदेशी आन्दोलन से जुड़ी और ब्रांड अम्बेसडर कहलायीं।

भारत ऐसा देश है जहाँ युद्ध से सत्ताएँ बनायी जाती थीं, स्त्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए भी युद्ध लड़े जाते रहे हैं। इसी देश में स्त्रियों को देवी माना गया, स्त्रियों पर विमर्श चले, बहुत से धर्म ग्रन्थों में उन्हें दोयम दर्जे पर रखा गया। उपन्यासकार ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर की स्त्रियों की स्थिति को दिखाया है साथ-साथ गाँधी की नजर में स्त्रियों को भी अपनी कथा में पिरोया है। वे दिखाती हैं कि उस समय किस तरह स्त्रियों के हँसने पर भी या तो रोका जाता था या फिर निगाहों से टोका जाता। स्त्रियों की शिक्षा भी इस उपन्यास में देखने को मिलती है– ''वह साइंस एसोसिएशन में पढ़ने वाली एकमात्र लड़की थी।''

शादी के बाद स्त्रियों की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ नये सिरे से जन्म लेती हैं जो स्त्रियों के लिए चुनौतीपूर्ण होता है। ''एक औरत को एक संस्कृति से निकाल कर शादी रचा कर दूसरी जगह कहीं दूर भेज देना वैसा ही है जैसे एक फलते-फूलते पेड़ को कहीं और रोप देना।'' उपन्यासकार ऐसे स्त्री-पात्र को रचती हैं जो उस दौर की पुरुष मानसिकता से लोहा लेती हैं, वह है सरला देवी चौधरानी जिन्होंने गीत, संगीत, राजनीति, समाजसेवा से देशवासियों का दिल जीता, जिनकी 'अहिताग्निका' कविता इस बात का प्रमाण है। इन्होंने 'भारत स्त्री महामंडल' की शुरुआत की जिसका उद्देश्य मनुवादी सोच से स्त्रियों को मुक्त कराना था। स्वराज्य एवं आजादी के सम्बन्ध में बहुत से सवाल सरला के मन को मथते रहते थे। ''स्वराज क्या सिर्फ पुरुषों को मिलेगा? चरखा कातने वाली अशिक्षित औरतों की स्वराज में हिस्सेदारी होगी?'' वहीं वोट सम्बन्धी मामलों में कहती हैं– ''औरतों को वोट का अधिकार मिलने से पहले उनकी शिक्षा की व्यवस्था हो। भला एक अनपढ़ औरत को क्या पता कि किसे वोट डालना चाहिए?''

उपन्यासकार गाँधी की स्त्री-विषयक दृष्टि को सूक्ष्मता से दिखाने का प्रयास करती हैं। एक तरफ गाँधी रामराज्य की परिकल्पना करते हैं, वहीं दूसरे तरफ स्त्री के अधिकार, शिक्षा, राजनीतिक हिस्सेदारी में चुप्पी साध लेते हैं। ''गाँधी औरत को उन्हीं पुराने ढाँचों में बन्द कर रखना चाहते हैं। हाँ औरतों की भावुकता और सहनशीलता उनके काम की है।'' वहीं आदर्शों से जकड़े गाँधी पूर्ण स्त्री की परिकल्पना करते हैं। वे सरला देवी से कहते हैं– ''तुम महान हो, नेक हो, लेकिन जब तक तुममें घरेलू कामकाज करने की क्षमता नहीं आती, तब तक तुम एक पूर्ण स्त्री नहीं हो सकती।'' उपन्यासकार पूर्ण स्त्री-सम्बन्धी परिकल्पना पर सरला के विरोध को दिखाती हैं– ''तो उनसे पूछना होगा कि क्या 'पूर्ण से कम स्त्री' बनने से देश-सेवा नहीं हो सकेगी?'' अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं– ''सच ही है कोई पुरुष स्त्री को अपने बराबर खड़ा हुआ नहीं देख सकता, गाँधी कोई अपवाद नहीं हैं।''

अपने शब्दों के जादू से प्रेम की मूर्ति बनाने वाली अलका सरावगी ऐसे प्रेम को दिग्दर्शित करती हैं जो बच्चों के समान कोमल है तो वहीं विचारों से भरा हुआ और कहीं-कहीं आत्मनिष्ठ तो कहीं

कल्याणकारी। यह गाँधी और अहितागि्नका की रचयिता सरला देवी का प्रेम है। सरला देवी उस दौर की स्त्री हैं जहाँ शादियाँ वर-वधू को देखे बगैर होती थीं। वह अपनी एक कहानी में लिखती हैं, ''विवाह तो कर दोगे किन्तु प्रेम गायब हो गया तो बचेगा क्या?'' ऐसे ही विचारों से सरला देवी का विकास होता है। गाँधी के साथ सरला देवी का कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना गाँधी के मन में स्नेह की ज्योति जगाता है, एक सभा में गाँधी बोलते हैं– ''प्रेम हृदय का गुण है। बिना स्वधर्म का परित्याग किये एक दूसरे के सुखों और दु:खों में सम्मिलित होकर प्रेम किया जा सकता है।'' उपन्यासकार गाँधी की तन्हाई का चित्रण करती हैं– ''सुबह की सैर में पाँच बजे पश्चिम में दिखते पूर्ण चाँद को देखने के आनन्द को सरला के साथ महसूस करना चाहते हैं।'' उपन्यासकार ने सरला के मन में पति और प्रेमी के चिन्तन को दिखाया है। वह दिखाने का प्रयास करती हैं कि पति-पत्नी के बीच शरीर का सम्बन्ध ज्यादा है और आत्मा का कम, वहाँ छोटी-छोटी जरूरतों के सम्बन्धों का जाल है। ''आत्मा का राग समाज सिखा सकता है? आत्मा का राग तो अन्तस के गर्भ से स्वत: फूटा हुआ संगीत है।'' वे आगे गाँधी के ऐसे संवादों को रचती हैं जहाँ गाँधी सरला के साथ पूर्वजन्मों के सम्बन्धों का कारण बताते हैं। यहाँ गाँधी के ऐसे विचारों को दिखाया गया हैं जहाँ गाँधी का बहुत कुछ वैयक्तिक है। अलका कहीं न कहीं गाँधी के ऐसे निजी विचारों को सामने लाती हैं जो इतिहास के पन्नों में कहीं दर्ज ही नहीं हुआ। प्रेम के इस बयार में गाँधी इतने बहते हैं कि वे कविताएँ तक लिखते हैं– ''मेरे प्रिय! मेरी वफा सदा रहेगी/तुम न कभी फिसलना गिरना/सच मानो, मेरा प्रेम दिव्य है/तुम्हारा ना बदले प्रिय! वादा करो, न बदलेगा।'' सत्य और अहिंसा के पुजारी गाँधी जहाँ भाषणों में स्त्री स्वतन्त्रता की बात करते हैं तो निजी जीवन में स्त्री को अपने आदेशानुसार चलाने की कोशिश करते हैं। सरला क्या पहनेगी, क्या खाएगी, कहाँ जाएगी यह सब गाँधी तय कर रहे होते हैं। वे सरला के सामने अपनी कल्पना की देवी की व्याख्या करते हैं जिसमें वे उसे ब्रह्मचारिणी बनाने की कोशिश करते हैं। ''मेरी कल्पना की देवी प्रेमपूर्ण है मनुष्यता के लिए उसके लिए कोई काम भार नहीं, देश के लिए कोई सेवा छोटी नहीं, पवित्रता के लिए कोई त्याग अकरणीय नहीं। मेरी कल्पना की देवी विवाहित है पर ब्रह्मचारिणी है।'' सरला अपने आप को बदलते हुए गाँधी से जुड़ जाती हैं। कभी गाँधी की अनुपस्थिति में बेचैन होती हैं तो कहीं उनका मन नहीं लगता। प्रेम की भावनाओं में हर व्यक्ति सुध-बुध भूल जाता है, कुछ दिनों के लिए सरला के साथ भी हुआ। अमूमन प्रेम में कुछ ही दिनों में थोपे जाने की बू आने लगती है, यह घटना इन महान लोगों के जीवन में भी घटित होती है। सरला सोचती हैं– ''कहाँ गयी बंकिमचन्द्र की देवी चौधरानी? कहाँ गयी उसकी दृढ़ता? उसका खुद पर विश्वास? चित्त में संशय ही संशय हैं। दुविधा ही दुविधा। मन एक तरफ खींचा जाता है, पर क्या वहाँ भी विश्रान्ति है या रोज अपने को प्रमाणित करने का भार?'' इस प्रेम कहानी का अन्त सरला के जीवन, प्रेम, मोह-माया से विदा करने से होता है। वह हिमालय पर चली जाना चाहती हैं।

उपन्यासकर गाँधी की नजर में छात्र धर्म दिखाने का प्रयास करती हैं, गाँधी जैसे रामराज्य की कल्पना करते हैं वैसे ही उनका छात्र धर्म गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा-दीक्षा की परिकल्पना था। वह कहते हैं– ''एक बार शिक्षक चुन लिया तो बच्चे की शिक्षा उसी पर छोड़ देनी चाहिए।'' गाँधी जहाँ ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं वहीं उनके अल्पाहार सम्बन्धी विचार को अलका ने शूक्ष्मता से कथा में रचा है, साथ-साथ गाँधी के ईश्वर सम्बन्धित विचारों को कथा में पिरोया है। उनका ईश्वर सम्बन्धित दर्शन कहता है– ''ईश्वर के राज्य में निरीह सबसे आगे होता है और ताकतवर सबसे पीछे।'' उपन्यासकार ने गाँधी के हिन्दी (भाषा) प्रेम को दिखाने का प्रयास किया है। हिन्दी को हृदय की भाषा मानने वाले गाँधी सरला को हिन्दी में पत्र-व्यवहार करने की राय देते हैं।

उपन्यासकार न सिर्फ गाँधी-सरला के प्रेम पर कलम चलाती हैं बल्कि कस्तूरबा के व्यक्तित्व को भी दिखाती चलती हैं। उनकी कलम रामभजदत्त चौधरी के देश-सेवा, त्याग, समर्पण, राजनैतिक समझदारी और धैर्यता को दिखाती चलती है। इसके साथ गाँधी के राजनीतिक सलाहकार राजगोपालाचारी की झाँकी प्रस्तुत हुई है। वे सरला को गाँधी के भटकाव का मुख्य कारण मानते हैं।

अलका ने इस उपन्यास को एक नवीन शैली में रचा है, इसमें कुछ पत्रों के तथ्यों के सहारे कल्पना का सन्तुलन बनाकर कई चरित्रों और प्रेम का विकास किया है। भाषा में इतनी सहजता कि पढ़ते हुए हम समय के इतिहास में आवाजाही करते हैं। कहीं-कहीं काव्यात्मकता दिखाई देती है तो कहीं सपाट बयानी। वे उपन्यास के उपसंहार के रूप में सरला की अभिराम यात्रा को दिखाकर उपन्यास की शोध-दृष्टि को मजबूत करती हैं।

776।, मालवीय नगर,
प्रयागराज-211003 (उ.प्र.)
मो. 8081476550

❑

लन्दन के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में होंगे सम्मानित

संतोष चौबे को वातायन यू.के. अन्तरराष्ट्रीय शिखर सम्मान

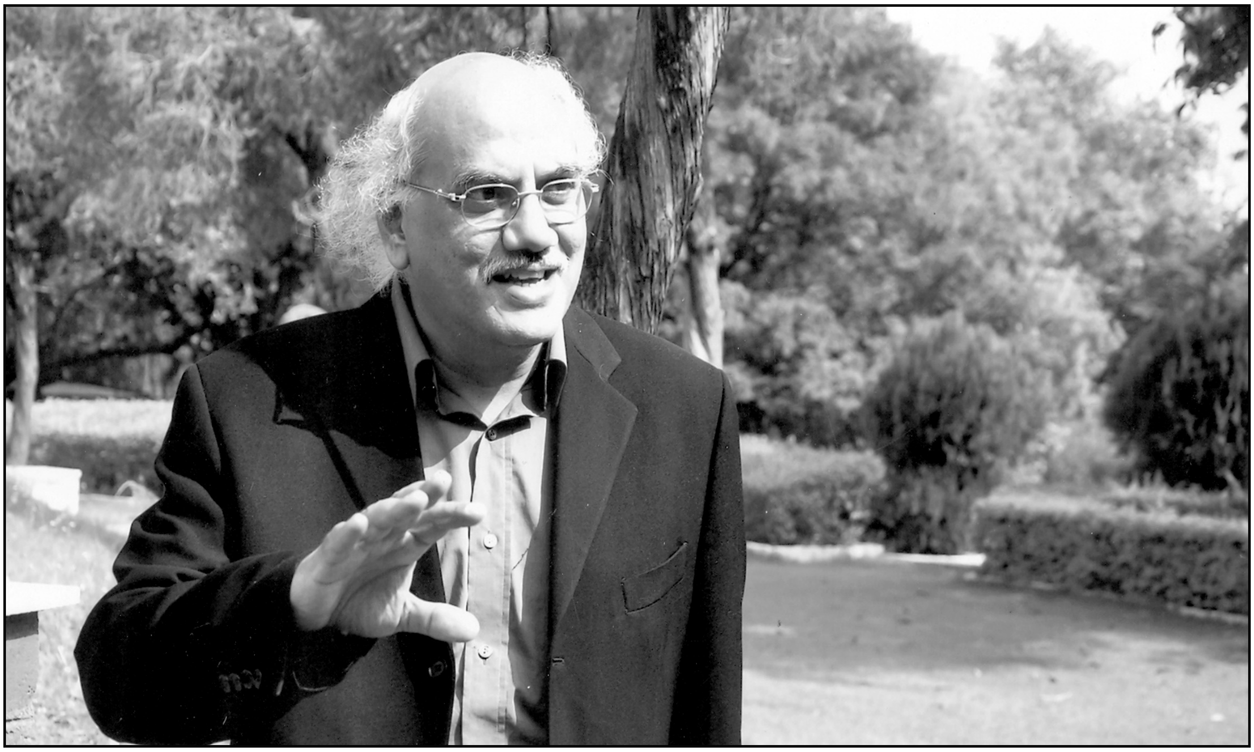

साहित्य, संस्कृति, शिक्षा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पाँच दशकों से सक्रिय संतोष चौबे हाउस ऑफ लॉर्ड्स लन्दन में, लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित होंगे। उनका चयन वातायन-यू.के. अन्तरराष्ट्रीय शिखर सम्मान-2023 के लिये किया गया है। श्री चौबे को यह अलंकरण इंडो यूरोपीय हिन्दी महोत्सव के दौरान आगामी 13 अक्टूबर को लंदन में प्रदान किया जाएगा।

अवार्ड की चयन समिति ने अनुशंसा में कहा है कि संतोष चौबे हिन्दी साहित्य तथा भाषा को बढ़ावा देने के लिए लेखन के साथ-साथ विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से से राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सतर पर सतत् सक्रिय हैं।

संतोष चौबे का बहुआयामी रचनाकर्म कवि, कथाकार, उपन्यासकार संपादक और अनुवादक संतोष चौबे उन विरल साहित्यकारों में से हैं जो अपने अभिनव रचनात्मक प्रकल्पों और नवाचारों के लिए वैश्विक पहचान रखते हैं। उनके कथा संग्रह, बीच प्रेम में गाँधी, मगर शेक्सपियर को याद रखना तथा प्रतिनिधि कहानियाँ, चार उपन्यासः राग केदार, क्या पता कॉमरेड मोहन, जलतरंग और सपनों की दुनिया में ब्लैक होल, चार कविता संग्रहः कहीं और सच होंगे सपने, कोना धरती का, इस अ-कवि समय में तथा घर-बाहर प्रकाशित और चर्चित हुए

हैं। टेरी इगल्टन, फ्रेडरिक जेमसन, वॉल्टर बेंजामिन, ओडिसस इलाइटिस एवं ई.एफ. शूमाकर के उनके अनुवाद: लेखक और प्रतिबद्धता, मॉस्को डायरी तथा भ्रमित आदमी के लिए एक किताब के नाम से प्रकाशित हैं जो व्यापक रूप से पढ़े वे सराहे गये हैं। उन्होंने कथाकार वनमाली पर केन्द्रित दो खंडों में वनमाली समग्र का तथा कथा एवं उपन्यास पर केन्द्रित वैचारिक गद्य की तीन पुस्तकों आख्यान का आन्तरिक संकट, उपन्यास की नयी परम्परा एवं कहानी: स्वप्न और यथार्थ का सम्पादन भी किया है। इसी के साथ उनकी दो आलोचना पुस्तकें कला की संगत एवं और अपने समय में भी प्रकाशित हुई हैं।

उन्हें कविता (कहीं और सच होंगे सपने) के लिए मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का दुष्यन्त कुमार पुरस्कार, आलोचना (कला की संगत) के लिए स्पन्दन आलोचना सम्मान, अनुवाद (मास्को डायरी) के लिए मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का पुरस्कार एवं उपन्यास (जलतरंग) के लिए शैलेश मटियानी तथा अन्तरराष्ट्रीय वैली ऑफ वर्ड्स पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। समग्र साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें राष्ट्रीय दुष्यन्त एवं शिवमंगल सिंह सुमन अलंकरण भी प्राप्त हुए हैं।

वातायन यूके अन्तरराष्ट्रीय शिखर सम्मान के लिए संतोष चौबे को विश्व रंग टैगोर अन्तरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव, वनमाली सृजनपीठ, टैगोर विश्व कला संस्कृति केन्द्र, रबीन्द्रनाथ टैगोर विवि, स्कोप ग्लोबल स्किल्स विवि, डॉ. सीवी रामन विवि, बिलासपुर, खंडवा, वैशाली, आईसेक्ट विवि, हजारीबाग, आईसेक्ट पब्लिकेशन, समस्त वनमाली सृजन केन्द्रों तथा साहित्य, कला संस्कृति की सहयोगी संस्थाओं ने बधाई दी है।

वरिष्ठ कवि अरुण कमल को निराला सम्मान

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के परिवार की ओर से (संस्था: 'निराला के निमित्त') दिया जाने वाला 'निराला सम्मान' इस वर्ष कवि अरुण कमल को दिया जायेगा। यह घोषणा संस्था के सचिव कवि विवेक निराला की ओर से की गई है। पहला सम्मान कवि राजेश जोशी को और दूसरा कथाकार चित्रा मुद्गल को मिला है। इस शृंखला में यह तीसरा सम्मान है। यह सम्मान निराला जी के 63वें स्मृति-दिवस पर 15 अक्टूबर 2023 को इलाहाबाद में दिया जायेगा।

वरिष्ठ कवि राजेश जोशी को मिलेगा परिवार पुरस्कार

कला, संस्कृति एवं साहित्य की प्रतिनिधि संस्था 'परिवार' द्वारा हिन्दी कविता में विशिष्ट योगदान के लिए प्रतिवर्ष दिया जानेवाला 'परिवार पुरस्कार' इस वार प्रतिष्ठित कवि राजेश जोशी को प्रदान किया जाएगा। शनिवार, 7 अक्टूबर को इंडियन मर्चेंट्स चेम्बर सभागृह में आयोजित एक समारोह में उन्हें शॉल, श्रीफल और स्मृति चिह्न के साथ दो लाख रुपये की धनराशि भेंट की जाएगी।

निर्णायक मंडल का मत कि राजेश जोशी की कविताओं में अपने समय और समाज की जीवन्त छवियाँ तो हैं ही, जीवन में जो मूल्यवान है, उसे बचाने की ललक भी है। राजेश जोशी की कविता, कहानी, आलोचना और नाटक आदि साहित्यिक विधाओं में अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'एक दिन वोलेंगे पेड़', 'मिट्टी का चेहरा', 'नेपथ्य में हँसी', 'दो पंक्तियों के वीच', 'चाँद की वर्तनी' बहुचर्चित हैं। उन्हें केन्द्रीय साहित्य सम्मान, पहल सम्मान और शमशेर सम्मान आदि से नवाजा जा चुका है। 'परिवार पुरस्कार' अव तक भारत भूषण, रमानाथ अवस्थी, नागार्जुन, नीरज, पं. प्रदीप माहेश्वर तिवारी, सूर्यभानु गुप्त, विष्णु खरे, ऋतुराज, विनोद कुमार शुक्ल, चंद्रकांत देवताले, केदारनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, अशोक वाजपेयी, मंगलेश डबराल, नरेश सक्सेना आदि शीर्ष रचनाकारों को दिया जा चुका है ।

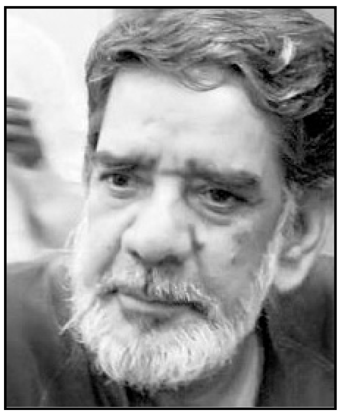

नीलेश रघुवंशी को वैली ऑफ वर्ड्स सम्मान

हिन्दी साहित्य एवं इंग्लिश लिटरेचर की उत्कृष्ट कृतियों का उत्सव मनाने वाले वैली ऑफ वर्ड्स। शब्दावली द्वारा इसकी सभी आठ श्रेणियों में बुक अवार्ड्स की घोषणा की गई। भारत में सबसे व्यापक स्वतंत्र साहित्यिक पुरस्कार कार्यक्रम के रूप में बुक अवार्ड्स 2023 वर्तमान में अपने सातवें संस्करण में है। 2023 में देश भर के 70 प्रकाशन संस्थानों द्वारा 600 से अधिक पुस्तकें नामांकित की गई थी। प्रत्येक श्रेणी में समीक्षकों द्वारा प्रशंसित दस पुस्तकों की लॉन्गलिस्ट में से अंतिम पाँच को शॉर्टलिस्ट में शामिल किया गया। अंतिम विजेताओं का चयन इस वर्ष अगस्त में शुरू हुआ, जिसमें सभी आठ श्रेणियों के लिए सचिवालय और प्रतिष्ठित जूरी संयुक्त रूप से काम कर रहे थे।

वैली ऑफ वर्ड्स में हिन्दी फिक्शन का अवार्ड सुप्रसिद्ध साहित्यकार नीलेश रघुवंशी को उनके उपन्यास 'शहर से दस किलोमीटर दूर' को दिया गया। उषाकिरण खान को हिन्दी नॉन फिक्शन में 'दिनांक के बिना' को दिया गया।

इंग्लिश फिक्शन: 'नो वे आउट' उदयन मुखर्जी, इंग्लिश नॉन-फिक्शन: 'दी जर्नी ऑफ हिन्दी लैंग्वेज जर्नलिस्म इन इंडिया' मृणाल पांडे, राइटिंग्स फॉर यंग ऐडल्ट्स: 'चिल्ड्रन ऑफ दी हिडन लैंड' मंदिरा शाह, राइटिंग्स/पिक्चर बुक्स फॉर चिल्ड्रन: 'झुपलीस् हनी बॉक्स' अचिंत्यरूप रे, हिन्दी अनुवाद: 'भागा हुआ लड़का' अमृता बेरा द्वारा अनूदित, अँग्रेजी अनुवाद: 'दी ब्राइड: दी मैथिली क्लासिक कन्यादान' ललित कुमार द्वारा अनूदित।

वैली ऑफ वर्ड्स समुदाय की ओर से इस वर्ष के सभी विजेताओं को हार्दिक बधाई! वेली ऑफ वर्ड्स द्वारा आगामी 16 एवं 17 दिसम्बर को आयोजित कार्यक्रम में सभी सम्मानितों को अवार्ड दिया जायेगा।

आईसेक्ट पब्लिकेशन

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित

सपनों की दुनिया में ब्लैक होल

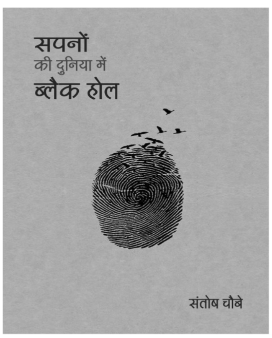

संतोष चौबे

मूल्य ₹ 200/-

तुम जिस दिन गये, उस रात मैंने एक सपना देखा। मैंने देखा कि एक विशालकाय मशीन है, जो धमन-भट्ठी की तरह है जिसमें एक ओर से बहुत से मनुष्य डाले जा रहे हैं, छोटे शहरों के, गाँवों के, हमारे केन्द्रों की तरह के युवा और दूसरी ओर से पूँजी निकल रही है– सतत प्रवाह के रूप में, जो पता नहीं किन अदृश्य हाथों में जाकर गुम हो जाती है। मेरे देखते ही देखते वह मशीन एक ऑटोमेटन में बदल गयी जिसमें पूरे देश के देश डाले जा रहे थे, उनकी पूँजी, उनका कच्चा माल, उनके आदमी और वे सब उस ऑटोमेटन में खींचे जाकर गुम होते जा रहे थे। इधर से हँसते-खेलते मनुष्य, हँसते-खेलते देश उस मशीन में डाले जाते और उधर से बंजर भूमि, सूखे, रसहीन मनुष्य और पूँजी का ढेर निकलता। एक ब्लैकहोल-जैसा कुछ था जो उन्हें सोख रहा था। अन्ततः वह विशालकाय मशीन एक ब्लैकहोल में ही परिवर्तित हो गयी और उसके दूसरी ओर क्या हो रहा है, ये दिखना बन्द हो गया...

हृषीकेश सुलभ को अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान

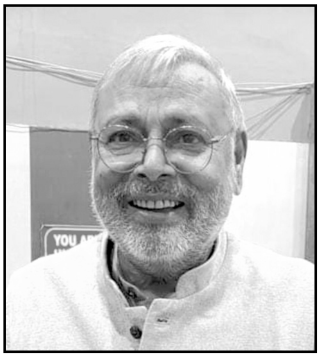

हिन्दी रचनाकारों की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'शब्द' ने वर्ष 2023 के लिए 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान' तथा दक्षिण भारत शब्द हिन्दी सेवी सम्मान' के विजेताओं की आज घोषणा की। एक लाख रुपए का 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान' हिन्दी के कथाकार हृषीकेश सुलभ को उनके उपन्यास 'दाता पीर' के लिए प्रदान किया जाएगा तथा इक्कीस हजार रुपए का 'दक्षिण भारत शब्द हिंदी सेवी सम्मान' कर्मठ हिन्दी सेवी एवं कर्णाटक महिला हिन्दी सेवा समिति की प्रमुख वयोवृद्ध सुश्री शान्ता बाई को दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के संवर्द्धन में उल्लेखनीय अवदान के लिए दिया जाएगा। उक्त घोषणा करते हुए 'शब्द' के अध्यक्ष डॉ. श्रीनारायण समीर ने बताया कि दोनों पुरस्कार विजेताओं को आगामी 10 दिसम्बर को बेंगलूरु में आयोजित एक सारस्वत समारोह में पुरस्कार राशि के साथ पारमपरिक मैसूर पेटा, स्मृति चिह्न और अंगवस्त्रम् भेंट कर सम्मानित किया जाएगा।

निर्णायक मंडल ने 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान' के लिए अपनी संस्तुति में कहा है कि ''हृषीकेश सुलभ समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक यथार्थ एवं विडम्बना के मर्मस्पर्शी चितेरे हैं। उनका 'दाता पीर' भाषा में देशज ठाठ रचते हुए मुस्लिम जीवन के राग-विराग और अनछूए पहलुओं के रूपायन के द्वारा हिन्दी साहित्य के कथा-परिसर को समृद्ध करता उपन्यास है।

'दक्षिण भारत शब्द हिन्दी सेवी सम्मान' के लिए कर्णाटक महिला हिन्दी सेवा समिति की यशस्वी प्रमुख वयोवृद्ध सुश्री शान्ता बाई के नाम की संस्तुति में निर्णायक मंडल ने कहा है कि ''सुश्री शान्ता बाई ने अपनी दीर्घ चर्या और शिक्षण से कर्नाटक के युवा-युवतियों के मन और मस्तिष्क में हिन्दी भाषा के प्रति अनुराग की जो लौ जलायी, उसकी रोशनी पूरे दक्षिण भारत में फैली है। उन्होंने अपने आचरण और व्यवहार से कन्नड़-हिन्दी-मैत्री के विकास और संवर्द्धन के जरिए राष्ट्र की भाव धारा को सशक्त करने का अन्यतम कार्य किया है।''

चन्दन पांडेय को स्वयं प्रकाश स्मृति सम्मान

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत संस्थान 'स्वयं प्रकाश स्मृति न्यास' ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वयं प्रकाश की स्मृति में दिए जाने वाले वार्षिक सम्मान की घोषणा कर दी है। न्यास द्वारा जारी विज्ञप्ति में डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने बताया कि राष्ट्रीय स्तर के इस सम्मान में इस बार उपन्यास विधा के लिए सुपरिचित कथाकार चन्दन पांडेय के उपन्यास कीर्तिगान को दिया जाएगा।

सम्मान के लिए तीन सदस्यी निर्णायक मंडल ने सर्वसम्मति से इस संग्रह को वर्ष 2023 के लिए चयनित करने की अनुशंसा की है। निर्णायक मंडल के वरिष्ठतम सदस्य काशीनाथ सिंह (वाराणसी) ने अपनी संस्तुति में कहा कि यह उपन्यास एक युवा कथाकार की बड़ी सम्भावनाओं को उजागर करता है। उन्होंने कहा कि उनका लेखन हमारे देशकाल के जटिल और मनुष्यविरोधी यथार्थ का सम्यक उद्घाटन करता है। निर्णायक मंडल के दूसरे सदस्य कवि-कथाकार राजेश जोशी (भोपाल) ने संस्तुति में कहा कि चन्दन पांडेय का गद्य लेखन स्वयं प्रकाश के सरोकारों और संकल्पों की याद दिलाता है। उन्होंने कहा कि कहानी के बाद अपने दो उपन्यासों से चन्दन ने अपने लेखन की प्रतिबद्धता दर्शाई है। तीसरे निर्णायक कवि-गद्यकार प्रियदर्शन (दिल्ली) ने चन्दन पांडेय के उपन्यास कीर्तिगान की अनुशंसा में कहा कि हमारे समकालीन मुद्दों और विडम्बनाओं को यह उपन्यास सम्बोधित करता है।

डॉ. अग्रवाल ने बताया कि जनवरी में आयोजित समारोह में उपन्यासकार चन्दन पांडेय को सम्मान में ग्यारह हजार रुपये, प्रशस्ति पत्र और शॉल भेंट किये जाएँगे।

दूत्वाक्यम् का नाट्य मंचन

नाट्यशास्त्र, विश्व रंगमंच और एम.पी.ए. के विद्यार्थियों ने किया अविस्मरणीय अभिनय महाकवि भास द्वारा रचित नाट्य 'दूतवाक्यम्' की प्रस्तुति को देश के विभिन्न प्रान्तों से आए विद्यार्थियों ने मात्र सात दिवसीय नाट्य कार्यशाला में दिनरात परिश्रम कर अपने जीवन्त अभिनय से अविस्मरणीय बना दिया।

उल्लेखनीय है कि 'दूतवाक्यम्' में भगवान श्रीकृष्ण के पात्र को तीन कलाकारों ने निभाया और दुर्योधन तथा सुदर्शन चक्र के पात्रों को चार-चार कलाकारों ने निभाया। सभी ने अपने अभिनय से पात्रों को मंच पर जीवन्तता प्रदान करते हुए दर्शकों को अन्त तक बाँधे रखा।

इस अवसर पर वरिष्ठ कवि-कथाकार, निदेशक विश्वरंग एवं रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे ने कहा कि 'दूतवाक्यम्' एक कठिन नाटक है। इसकी प्रस्तुति अपने आप में बहुत चुनौती भरा कार्य है। यह बहुत खुशी का अवसर है कि इस चुनौती को स्वीकारते हुए नाट्यशास्त्र के विद्यार्थियों ने यह अद्वितीय प्रस्तुति दी।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, संस्कृत, प्राच्यभाषा शिक्षण एवं भारतीय ज्ञान परम्परा केन्द्र के सलाहकार डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा कि मैंने संस्कृत के बहुत से नाटकों की प्रस्तुतियाँ देखी है लेकिन 'दूतवाक्यम्' की इस तरह की प्रस्तुति के विषय में मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वास्तव में यह अविस्मरणीय प्रस्तुति हुई है। एक पात्र को एक ही समय में चार-चार कलाकारों द्वारा अभिनित करने का यह प्रयोग नाट्य प्रस्तुतियों की दिशा में स्वागत योग्य अभिनव पहल है।

रमाकांत श्रीवास्तव पर केन्द्रित दो दिवसीय आयोजन

छत्तीसगढ़ साहित्य अकादमी और साईंस कालेज दुर्ग हिन्दी विभाग द्वारा वरिष्ठ कथाकार रमाकांत श्रीवास्तव पर केन्द्रित दो दिवसीय साहित्यिक आयोजन के दूसरे दिन कथाकार के विविध पक्षों पर वरिष्ठ साहित्यकारों, उनके समकालीन रचनाकारों और सजग पाठकों ने गम्भीरता से चर्चा की।

रमाकांत श्रीवास्तव का कथा संसार और किशोर मन का यथार्थ पर विषय प्रवर्तन करते हुए उषा आठले ने कहा कि रमाकांत ने संवेदनाओं के साथ मनुष्य और प्रकृति के रिष्ते को महीनता से चित्रात्मक शैली में उभारा है। उनके पास अद्भुत कल्पना शक्ति है। बच्चू चाचा के किस्से और चाचा का कुत्ता संकलन में हम पीछे छूट गयी संस्कृति को देखते है।

चर्चा को आगे बढ़ाते हुये राजेन्द्र शर्मा ने कहा कि एक लेखक को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि वह क्यों लिख रहा है और किसके लिए लिख रहा है। किशोरों पर केन्द्रित रमाकांत की किताबे लम्बी संस्मरणात्मक किताबें है, जिनके माध्यम से लेखक ने सांस्कृतिक बदलाव का जिक्र किया है। रमाकांत की संस्मरणों से हमें कभी-कभी अपने से छुट गयी दुनिया को और उसके पास तक जाकर उसे पहचानने का सुख

मिलता है। राजीव कुमार शुक्ल ने कहा कि सत्तायें हमें क्या पढ़ने को प्रेरित कर रही है यह हमें सोचना चाहिये।

जीवन में एक बेहतर मनुष्य बनने की प्रक्रिया बच्चों में किशोर साहित्य से ही मिलती है। उन्होंने आज के युवाओं को किस तरह पढ़ना और सोचना चाहिये इस पर प्रकाश डाला। अच्छा साहित्य एक दोस्त की तरह होता है। उन्होंने कहा कि रमाकांत की भाषा हमें प्रसन्न करती है। उनकी शैली जीवन से लगाव की, उम्मीद की, आशा की और आश्वस्ति की शैली है। आयोजन में छत्तीसगढ़ साहित्य अकादमी के अध्यक्ष ईश्वर सिंह दोस्त सहित भोपाल, दुर्ग, भिलाई, छत्तीसगढ़ एवं देशभर के विभिन्न शहरों, कस्बों से आये साहित्यकार, रचनाकार एवं पाठकगण उपस्थित रहें।

श्रीकान्त वर्मा के साहित्य पर हुई चर्चा, कहानी, कविता पाठ

श्रीकान्त वर्मा पीठ का 'स्मरण श्रीकान्त वर्मा 2023' में जुटे प्रतिष्ठित साहित्यकार, कवि श्रीकान्त वर्मा पीठ द्वारा 'स्मरण श्रीकान्त वर्मा 2023' के दो दिवसीय कार्यक्रम के दूसरे और अन्तिम दिन व्याख्यान, कहानी, कविता पाठ व नाटक का मंचन किया गया।

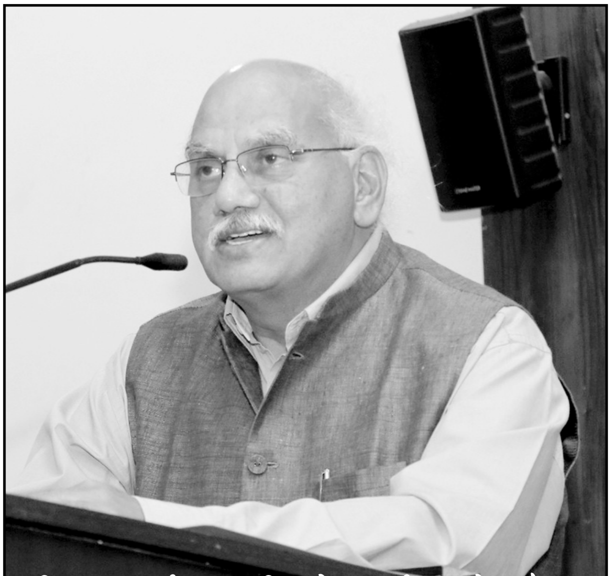
श्रीकान्त वर्मा सृजनपीठ के कार्यक्रम के दौरान अपना वक्तव्य रखते हुए संतोष चौबे

पहले सत्र में 'मैं सदियों के अन्तराल में: श्रीकान्त वर्मा का साहित्यिक अवदान' विषय पर संतोष चौबे ने वक्तव्य देते हुए कहा कि श्रीकान्त वर्मा भारत चीन युद्ध के बाद उभरते हैं। उनकी रचनाएं समाजवाद के विघटन से उपजती हैं। उनकी रचनाओं में झुंझलाहट, निराशा की अभिव्यक्ति शिला के नए प्रयोगों में नई लय के मुक्त छन्द के साथ प्रस्फुटित होती हैं। उन्होंने श्रीकान्त वर्मा के रचनाकर्म के साथ तात्कालीन वैश्विक परिवेश पर चर्चा की। ओम थानवी ने सत्र की अध्यक्षता की।

पाँचवें सत्र कहानी समय में प्रभु नारायण वर्मा ने कहानी निसार नाज एवं श्रद्धा थवाईत का कहानी पाठ हुआ। छठवें सत्र कविता समय में संतोष चौबे ने सुई, थोड़ा दूर थोड़ा बाहर, जितना सम्भव था किया, सफलता आक्रान्त करती है, बैठक बाज कविताएँ सुनाई जिसे दर्शकों ने खूब सराहा। हेमन्त देवलेकर, केशव तिवारी, पथिक तारक, भास्कर चौधरी, गौरी त्रिपाठी, वीरू सोनकर, वियोगिनी ठाकुर एवं विश्वेश ठाकरे ने भी अपनी कविताएँ पढ़ीं। नाट्य मंचन को मिली सराहना: कार्यक्रम के अन्तिम सत्र में श्रीकान्त वर्मा की कहानियों 'दुपहर' और संकर की नाट्य प्रस्तुति हुई। विहान ड्रामा वर्क्स भोपाल द्वारा प्रस्तुत नाटक को दर्शकों ने खूब सराहा। नाटकों की परिकल्पना और निर्देशन सौरभ अनन्त ने किया है। दुपहर कहानी में श्रीकान्त वर्मा ने दो बालकों के दुनिया को देखने की दृष्टि को समझाया है। बाल मन स्कूल के बाहर की दुनिया में क्या खोजना चाहता है, कैसे जीवन के जीना और देखना चाहता है इसे चित्रित किया यह नाटक का 16वाँ मंचन था। संगीत निर्देशन हेमन्त देवलेकर और निरंजन कार्तिक ने किया जो कि प्रभवोत्पादक था। संकर कहानी में रेलवे स्टेशन में एक डरे सहमे आदमी के परिवार को दिलहय गया जो कि समाज का चेहरा प्रस्तुत करता है। यह नाटक शान्ति से गरीब माध्यम वर्ग की चिन्ताओं को दर्शाता है। नाटक में कलाकार थे अंकित परोचे, श्वेता केतकर, शुभम कटियार, रुद्राक्ष भयरे ने अपने अभिनय कला से सबको नतमस्तक कर दिया।

प्रस्तुति : ज्योति रघुवंशी

अपने शहर-कस्बे की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों की सचित्र (जेपीईजी फॉरमेट में) रिपोर्टें प्रकाशनार्थ भेजें। ईमेल करें– vanmali@aisect.org, सब्जेक्ट में 'देशकाल के लिए' अवश्य लिखें।

लिखापढ़ी

कुणाल सिंह

सितम्बर के अन्तिम दिन को विश्व अनुवाद दिवस के रूप में मनाया जाता है। अनुवाद साहित्य का एक ऐसा प्रकल्प है, जिसके महत्त्व को शुरू से ही कम करके आँका गया है। साहित्य की दुनिया में इसे सदैव दोयम दर्जे का नागरिक माना गया, जबकि इसमें मौलिक सृजन से कम श्रमयोग नहीं नियोजित करना नहीं होता। इसके कारणों की पड़ताल करते हुए जब आप हिन्दी में अनुवाद के वर्तमान परिदृश्य पर गौर करेंगे तो पायेंगे कि इस आम समझ की निर्मिति में स्वयं अनुवादकों का भी कम योग नहीं रहा। आज कई अनुवादक ऐसे सक्रिय हैं जो पहले से अनूदित सामग्री को ही पुनः अनूदित करते चलते हैं। पूछा जा सकता है कि जब यह सामग्री पहले से ही हिन्दी में उपलब्ध है, तो फिर उसी रचना के अनुवाद की क्या आवश्यकता हो गयी! हाँ, यदि पहले के अनुवादक ने मूल रचना के साथ न्याय नहीं किया हुआ हो, तो इस श्रम का कोई अर्थ व औचित्य है। इसी के समानान्तर कई अनुवादक ऐसे हैं जो मूल रचना को अनुवाद की भाषा में ढालने की दिशा में पर्याप्त मेहनत नहीं करते। ऐसे कई वरिष्ठ अनुवादकों के नाम लिये जा सकते हैं जिनका अनुवाद अत्यन्त लद्धड़ है। न वाक्य-विन्यास हिन्दी के अनुरूप है और न शब्द-चयन के मामले में साहित्यिक समझ दिखाई पड़ती है।

पिछले दिनों हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार और अनुवादक ओमा शर्मा से बात हो रही थी तो उन्होंने एक बड़े मार्के की बात कही कि 'अनुवाद वस्तुतः मूल लेखक को दी जाने वाली रचनात्मक सलामी है'। हमें इसका ध्यान रखना चाहिए कि यह कार्य पूरी निष्ठा और मनोयोग से हो, वर्ना न हो। यह बैठे-ठाले की दिल्लगी नहीं, एक बड़ा काम है और इसे करते हुए हमें स्वयं अपनी पात्रता का मूल्यांकन करते रहना चाहिए।

अनुवाद दो भाषाओं को ही नहीं, वरन् दो संस्कृतियों का भी मेल कराता है। एक अच्छा अनुवादक महज तर्जुमा या उल्था नहीं करता चलता, बल्कि उसका प्रयास होता है कि वह सन्धान के वैकल्पिक रास्ते तलाशे। बांग्ला में 'घोड़ार डिम' एक प्रचलित मुहावरा है, जिसका हिन्दी में महज शब्दानुवाद किया जाए तो होगा 'घोड़े का अंडा'। हमारे यहाँ दुर्भाग्य से ऐसे ही अनुवादकों का आधिक्य है जो शब्दानुवाद करते जाते हैं। ऐसे भी अनुवादक हैं जो शब्दानुवाद के विपरीत जाते हुए भावानुवाद में एकदम दूसरे ध्रुव का स्पर्श कर लेते हैं। मेरे ख्याल से एक आदर्श अनुवादक मूल लेखक के शब्दों से निर्मित लीक को पूरी तरह न छोड़ते हुए अपनी यात्रा में बहुत दूर तक नहीं निकल जाता। उसके अनुवाद में शब्दानुवाद और भावानुवाद के बीच एक सन्तुलन वांछित है।

हिन्दी में अनुवाद के अनुवाद की जिस परम्परा का जिक्र किया गया, उसी का नतीजा है कि हिन्दी से बाहर के कुछ लेखकों की रचनाओं के तो खूब अनुवाद मिलते हैं, जबकि उसी के समकालीन दूसरे रचनाकारों की रचनाओं का कोई अनुवाद नहीं मिलता। उदाहरण के लिए आप देखें कि लातिनी अमेरिकी साहित्य में मार्केस की रचनाओं के जितने हिन्दी अनुवाद आपको मिल जाएँगे, उतने उनके समय के किसी दूसरे रचनााकार के नहीं। इसका एक दूसरा प्रभाव ये पड़ा कि जब-जब हम लातिनी अमेरिकी साहित्य की बातें करते हैं, बोर्खेज और मार्केस के आगे नहीं बढ़ पाते, जबकि इनके बाद की तीसरी पीढ़ी आज वहाँ लेखन में सक्रिय है। इसी प्रकार रशियन साहित्य में तोलस्तोय, चेखव, गोर्की, तुर्गनेव से होते हुए अधिकतम बोरिस पास्तरनाक की बातें होती हैं और उसके बाद सन्नाटा छा जाता है। विक्टर पेलेविन, ल्यूडमिला उलित्स्काया, स्वेतलाना अलेक्सियेविच जैसे शानदार लेखकों के काम से विशुद्ध हिन्दी का पाठक अभी तक अपरिचित है। स्वेतलाना को वर्ष 2015 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है, लेकिन मेरे जानते हिन्दी में उनकी अब तक एक ही कहानी चन्दन पांडेय के अनुवाद में उपलब्ध हो सकी है। 'जानकीपुल' पर प्रभात रंजन व चारुमतिदास के व्यक्तिगत प्रयासों से समकालीन रशियन साहित्य की सीमित झलकियाँ उपस्थित हैं, लेकिन बड़े स्तर पर काम होना अभी बाकी है। इसी प्रकार ऑस्ट्रेलिया-जैसे एक बड़े महाद्वीप में कोई लेखक भी है, इसकी कोई जानकारी नहीं। ले-देकर एक कैथरीन मेन्सफील्ड का नाम आता है जो कि न्यूजीलैंड की थीं। ऑस्ट्रेलियन लेखकों में आज से कई साल पहले पीटर कैरी की किसी कहानी का अनुवाद हुआ था, और सम्भवतः किसी एक अन्य रचनाकार की कहानी का अनुवाद जितेन्द्र भाटिया ने किया है। जबकि वहाँ डेविड मलूफ और पैट्रिक ह्वाइट जैसे लेखक हैं। पैट्रिक को तो साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार तक मिल चुका

है, लेकिन उनकी रचनाओं से हिन्दी में अनूदित साहित्य का पाठक सर्वथा अपरिचित है। यही हाल अफ्रीकी साहित्य का भी है, वहाँ ले-देकर दो-एक नाम प्रचलन में हैं जिनमें चिनुआ अचीबी से लेकर बेन ओकरी तक के कामों से हिन्दी-जगत परिचय रखता है। इधर जितेन्द्र भाटिया जैसे प्रतिबद्ध रचनाकार-अनुवादकों की मार्फत नाइजीरिया के कुछ अद्‌भुत रचनाकारों का हिन्दी में अनुवाद सम्भव हो सका है जिनमें चिमामान्दा न्गोची अदीची का नाम सर्वोपरि है।

अनुवाद के बारे में एक दिलचस्प तथ्य है कि वह भाषा की धौंस को तोड़ता है। यह धौंस या कि ठसक भाषा की संरचना में अन्तर्गुम्फित रहती है, अनुवाद उसे एक अलहदा संरचना में रूपान्तरित करते हुए सबसे पहला काम करता है कि उसकी दादागिरी को खत्म कर देता है। अँग्रेजी के पाठ का अनुवाद यदि हिन्दी में हो तो यह महज पाठानुवाद ही तो होगा, लेकिन मूल अँग्रेजी में पढ़ते हुए उसकी जिस ठसक को हमने महसूस किया होगा, उसी को हिन्दी में पढ़ते हुए वह हमें अपनापे का अनुभव कराता है। 'रामचरितमानस' को यदि वाल्मीकि रामायण का अनुवाद माना जाए (हालाँकि ऐसा मानना तथ्यगत रूप से गलत होगा, क्योंकि तुलसी जितना वाल्मीकि रामायण को आधार बनाते हैं, उससे कहीं ज्यादा अध्यात्म रामायण और अन्य रामकथाओं को), तो यह उनका क्रान्तिकारी कदम इसलिए माना जाता है कि तुलसी की रामकथा अवधी में थी। पूर्ववर्ती रामकथाएँ संस्कृत में हुआ करती थीं। ऐसी भाषा जिस पर पढ़े-लिखे लोगों का, युगीन सन्दर्भों में ब्राह्मणों का, कब्जा था। इन कथाओं को आम जनमानस ब्राह्मणों के मुख से सुन तो सकता था, लेकिन संस्कृत लिखने-पढ़ने में अक्षम होने के कारण इस कथा पर उसका कॉपीराइट नहीं था। तुलसी ने इसे जनभाषा में लिखा। पहली बार रामचन्द्र के मुख से अवधी में डब किये गये संवादों को सुनकर जनमानस को लगा कि वे महज ब्राह्मणों के नहीं हैं। वे उनके भी हैं, उनसे उन्हीं की भाषा में कह रहे हैं– ज्यौं अनीति कछु भाषौ भाई, त्यौं मोहिं बरजो भय बिसराई। राजा से ज्यादा डर राजभाषा से लगता है। अँग्रेजों से ज्यादा दहशत अँग्रेजी सुनकर होती है। तो पहली बार राजा, राजभाषा का परित्याग करते हुए लोकभाषा में उन्हें 'भाई' कहकर सम्बोधित कर रहा था। यह जो संस्कृत में ज्ञान की जमाखोरी चल रही थी, ज्ञान पर सिर्फ पंडितों का कब्जा था, तुलसी ने अपने अनुवाद (या पुनःसृजन, जो कहें) की मार्फत इस मोनोपोली को ध्वस्त किया। पहले एकलव्यों का प्रवेश गुरुकुल में वर्जित था। अगर किसी एकलव्य ने डिस्टैंट लर्निंग ऐप से धनुर्विद्या सीख भी ली तो उसका अँगूठा काटकर जिन्दगी-भर के लिए उसे अँगूठा-छाप बना दिया जाता था। यह टूटा। अनुवाद मानिये, या पुनर्रचना ने इसे सम्भव किया।

'वनमाली कथा' में हमने शुरू से ही अनुवाद के लिए सम्माननीय स्थान आरक्षित कर रखा है। पहले साल-भर तक तो हम प्रत्येक अंक में एक विदेशी और एक भारतीय भाषाओं से अनूदित कुल दो कहानियाँ देते रहे, फिर बाद में प्रकाशनार्थ आईं मौलिक कहानियों के आधिक्य के कारण हमें इस नीति में किंचित् बदलाव करते हुए एक अंक में विदेशी कहानी के अनुवाद तथा दूसरे अंक में भारतीय भाषाओं की कहानी के अनुवाद का प्रकाशन शुरू करना पड़ा। यह करते हुए भी हम अपनी उस जिद पर अब भी कायम हैं कि हम उन्हीं कहानियों के अनुवाद को प्रकाशित करेंगे जिनका पहले से कोई अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित न हो। हमारी कोशिश होगी कि हमारा यह संकल्प तभी टूटे जब पूर्ववर्ती अनूदित कहानी में कोई कोर-कसर रह गयी दिखती हो। साथ ही हमारा यह भी प्रयास रहता है कि हम ज्यादा से ज्यादा ऐसे लेखकों की रचनाओं को हिन्दी के पाठकों के समक्ष उपस्थित करें जिन्हें हिन्दी में पढ़ने का सुयोग उन्हें प्राप्त न हुआ हो। हमें यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि महज दो वर्षों के दरम्यान हमने बीस से ज्यादा ऐसे रचनाकारों को हिन्दी में अनूदित किया जिनकी आज तक किसी रचना का हिन्दी में अनुवाद ही न हुआ था।

हमें प्रसन्नता है कि 'वनमाली कथा' में प्रकाशित मौलिक रचनाओं पर जितनी पाठकीय प्रतिक्रियाएँ हमें प्राप्त होती रही हैं, लगभग उतनी ही अनूदित रचनाओं पर भी। पाठकों की इस फीडबैक को देखते हुए ही हमने आगामी दो अंकों को 'अनुवाद विशेषांक' के रूप में संयुक्त रूप से प्रकाशित करने की सोची है। हमारा प्रयास होगा कि हम इस संयुक्तांक की मार्फत विश्व साहित्य से चुनिन्दा पचीस कहानियों और पचास कविताओं को प्रकाशित करें। मूल रचनाकार विश्व-साहित्य के दिग्गज तो हों ही, साथ ही उन रचनाओं के अनुवादक भी हिन्दी के प्रतिष्ठित रचनाकार हों। यह 'वनमाली कथा' परिवार की ओर से अपने पाठकों को दी जाने वाली सौगात की तरह हो, जिसे वर्षान्त में हम उन्हें भेंट कर सकें। इस अंक की बाबत विशेष जानकारी पत्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर अंकित है।

सी-3/304, फॉर्च्यून सौम्या हेरिटेज, आईपीएस के निकट,
होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल-462026
मो. 9875370979

❑

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS
FESTIVAL
विश्व रंग
BHOPAL (INDIA)

'विश्वरंग' के उपलक्ष्य में

वनमाली कथा

लोकतान्त्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

का **नवम्बर-दिसम्बर 2023** का संयुक्तांक

कथाविश्व के

25 मास्टर माइंड

● लियो तोलस्तोय (अनु. भीष्म साहनी) ● ऑस्कर वाइल्ड (अनु. धर्मवीर भारती) ● एडगर एलन पो (अनु. कमलेश्वर) ● फ्रांज काफ्का (अनु. राजेन्द्र यादव) ● अन्तोन चेखव (अनु. अमरकान्त) ● गाइ दे मोपासाँ (अनु. इलाचन्द्र जोशी) ● फ्योदोर दोस्तोव्यस्की (अनु. वल्लभ सिद्धार्थ) ● लू शुन (अनु. कर्णसिंह चौहान) ● अर्नेस्ट हेमिंग्वे (अनु. ब्रजेश कृष्ण) ● जिग्मन्द मोरित्स (अनु. भारतभूषण अग्रवाल) ● चिनुआ अचीबी (अनु. हरीश नारंग) ● स्टीफन स्वीग (अनु. ओमा शर्मा) ● नादिन गोर्डीमर (अनु. रमेश दवे) ● गैब्रियेल गार्सिया मार्केस (अनु. कुणाल सिंह) ● इतालो काल्विनो (अनु. चन्दन पांडेय) ● यासुनारी कावाबाता (अनु. विनोद दास) ● हेनरिक बोल (अनु. चन्दन पांडेय) ● मो यान (अनु. जितेन्द्र भाटिया) ● मिलान कुन्देरा (अनु. कुणाल सिंह) ● ओसामू दजाई (अनु. गंगाप्रसाद विमल) ● इसाबेल आयेन्दे (अनु. सुधा अरोड़ा) ● अहमद नदीम कासमी (अनु. खुर्शीद आलम) ● एलिस मनरो (अनु. गीत चतुर्वेदी) ● हारुकी मुराकामी (अनु. कैफी हाशमी) ●

और

प्रेमचन्द

पृष्ठ 250 (अनुमानित), मूल्य 150 रु.

(31 अक्तूबर 2023 से पूर्व के सभी वार्षिक-त्रैवार्षिक सदस्यों के लिए किसी प्रकार की अतिरिक्त राशि देय नहीं)

अपनी प्रति सुरक्षित करने के लिए 9893100979 पर व्हाट्सऐप करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली द्वारा
एक्सेलेंस इन बुक प्रोडक्शन के
6 पुरस्कारों से सम्मानित प्रकाशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा
कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं
अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

विशेष : शोध पर आधारित पुस्तकों के प्रकाशन में अग्रणी संस्थान
(विश्वविद्यालयों के फैकल्टी एवं छात्रों के लिये विशेष स्कीम)

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : मो.91+9826493844
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : मो.91+9425014166
  ई-7/22 अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन- 0755-4851056
- E-mail : jyoti.r@aisect.org, aisectpublications@aisect.org

www.rntu.ac.in

RNTU Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL

UNLOCKING POTENTIAL

#futureready

Your dependable partner in your career development.

For over a decade, we have been preparing our students to become the leaders of the future. We offer not only quality education and a holistic development but, a platform where one gets an NEP aligned curriculum with different skill courses while making them industry ready along with developing their communication and personality, to become **#futureready!**

National Education Policy (NEP) aligned
- NEP Aligned Curriculum
- Skill Courses
- Industry Ready
- Comm & Personality Dev

Featuring

- India's First Skill University
- 20 Centres of Excellence
- 52-Acre Green Campus; World-class Infrastructure
- International and Corporate Partnerships
- 56 Start-ups Incubated under AIC (NITI Aayog)
- Shiksha Mitra Scholarship on Merit

Courses Offered

Engineering & Technology | Humanities & Liberal Arts
Law | Management | Agriculture | Commerce | Science
Computer Science & IT | Nursing & Paramedical Science
Education | Bachelor of Vocational | Master of Vocational
Ph.D. in selected subjects through separate entrance tests

Integrated courses in association with

AISECT Future Skills Academy | NSDC National Skill Development Corporation | Red Hat | coursera For RNTU Students | Micro Focus | Hewlett Packard Enterprise | BOSCH | DAIKIN

Start-up Incubation Centre

AIC-RNTU
ATAL Incubation Centre, Rabindranath Tagore University
Supported by - ATAL Innovation Mission, NITI Aayog

Honoured for hard work

- Rank Band 101-150 in Universities nirf 2021
- Ranked 186 in Engineering nirf 2021
- 1st Ranked Private University 2021 in Bhopal INDIA TODAY
- 1st Ranked Private University in Madhya Pradesh 2021 Outlook
- ZEE Education Excellence Award 2020
- Best Physio Excellence University Award 2022
- World Education Award 2016 (Dubai)
- Madhya Pradesh Gaurav Samman 2019

More than 500 companies for placements and internships (Offering upto 15 LPA)

Paytm | IKUNI | hitech | IFFCO KISAN | Tech Mahindra | TATA Consultancy Services | Us | HCL | WIPRO | genpact | Netlink

Want to unlock your potential?

Rabindranath Tagore University: Bhopal– Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, Madhya Pradesh, India
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Opposite to Board Office, Link Road No. 1, Shivaji Nagar, Bhopal– 462016 | **Email: info@rntu.ac.in**

Call us:
+91-755-2700400, 2700413
+91-755-4289606

ADMISSIONS OPEN